श्रीमद्रुद्रकविविरचितम्

नवाबखानखानाचरितम्

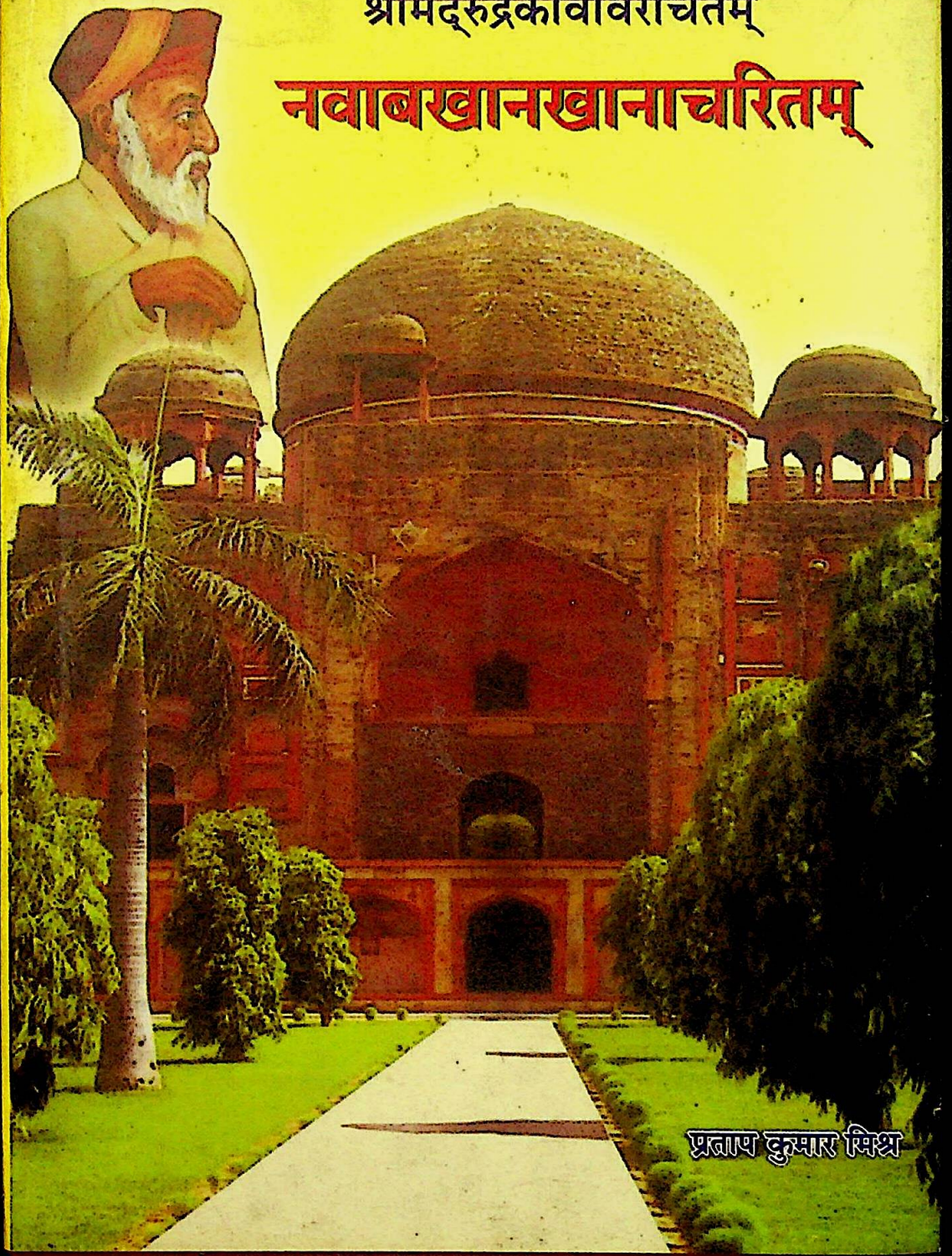

प्रताप कुमार मिश्र

नवाबखानखानाचरितम्

अज्ञात एवं दुर्लभ कृति प्रकाशन-माला, संख्या-१

नवाबखानखानाचरितम्

सम्पादन एवं अनुवाद

प्रताप कुमार मिश्र

प्रकाशक

अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान

बी. ३०/२२९, नगवाँ लंका, वाराणसी

ISBN 978-81-906145-1-1

नवाबखानखानाचरितम्

अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान
प्रथम संस्करण २००७ ई.

© प्रताप कुमार मिश्र

मूल्य - १२०/-

TITLE :
NAWABKHANKHANACHARITAM

TRANSLATOR :
Pratap Kumar Mishra

cover designed by Arena maltimidia co. vns., & printed by Mahaveer press, vns.

समर्पण

प्राच्य-विद्या के महान् अनुरागी,
अद्भुत साहित्यकार,
संपादक-प्रवर
अन्वेषक,
खोजी
दम्पति

डॉ. यतीन्द्र विमल चौधरी

एवं

डॉ. रमा चौधरी

को

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय		
भूमिका	:	१-९७
खानखानाचरितम् की प्रस्तुत प्रति	:	४
पाण्डुलिपि परिचय	:	५-७
खानखानाचरितम् : सफल चम्पू-काव्य	:	७-१२
चम्पूकार श्री रुद्रकवि	:	१२-१५
खानखानाचरितम् का रचना-उद्देश्य	:	१५-१६
ऐतिहासिक महत्त्व	:	१६-१७
बागुलान (मुल्हेर) राज्य	:	१८-१९
बागुला-राठौरों का परिचय	:	२०-२१
नारायण शाह एवं प्रताप शाह	:	२१-३०
रहीम एवं प्रताप शाह	:	३०-४३
नवाब अब्दुर्रहीम खां खानखाना	:	४३-४६
ऐतिहासिक जीवन परिचय	:	४६-५५
खानखाना : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	:	५५-८४
वीरता एवं अपूर्व सेनापतित्व	:	५८-६२
साहित्य-प्रेम एवं साहित्यकारों को संरक्षण	:	६३-८३
रहीम का रचना-संसार	:	८४
रुद्रकवि की काव्य-शैली	:	८५-९७
नवाबखानखानाचरितम् (मूल-प्रति)	:	१-३९
नामानुक्रमणिका	:	४१-४४
संदर्भ-ग्रन्थ-सूची	:	४५-४८

प्रकाशकीय

संस्कृत, हिन्दी एवं फारसी-साहित्य के सुधी पाठकों, शोधियों सहित मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अधिकारी विद्वानों के समक्ष 'नवाबखानखाना-चरितम्' को प्रकाशित संस्करण के रूप में प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत चरित-काव्य 'चम्पू'-विधा की रचना है और इसका चरित-नायक मध्यकालीन भारतीय इतिहास के कतिपय उद्धरणीय शासकों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। महाकवि कल्हण के बाद उत्तर-मध्यकालीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक संस्कृत-सन्दर्भ ग्रन्थों में जोनराज, श्रीवर, शुक, प्राज्यभट्ट, महेश ठक्कुर आदि ग्रन्थकारों की कृतियां यद्यपि उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं किन्तु ऐसे ग्रन्थकारों की यह संख्या बहुत ही कम है जबकि इस काल के भारतीय इतिहास एवं इसे प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक पुरुषों से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाली कृतियों की संख्या उतनी कम नहीं। काल के कुचक्रों में फंस जाने के कारण ऐसी अनेक कृतियां अनुपलब्ध हो गईं तो कुछ उपलब्ध होकर भी अनुपलब्ध ही हैं। वर्तमान साहित्य एवं इतिहास-समाज सहित स्वयं ऐतिहासिक अनुसन्धान की मुख्य धारा का इनके प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी इनकी अनुपलब्धता के प्रति कम उत्तरदायी नहीं।

'नवाबखानखानाचरितम्' इसी प्रकार का एक दुर्लभ ऐतिहासिक चम्पूकाव्य है जिसकी रचना १६ वीं शती के अन्तिम वर्षों में की गई थी। 'खानखाना' मुगल-शासकों द्वारा दी जाने वाली एक गौरवपूर्ण उपाधि है जिसके मायने 'राजाधिराज' से है। वैसे तो मुगल-साम्राज्य में यह उपाधि अनेक व्यक्तियों को दी गई किन्तु जिस व्यक्ति के साथ सम्बद्ध होकर स्वयं यह उपाधि गौरवान्वित एवं अभिभूषित हुई वह 'खानखाना' मध्यकालीन भारत की महान् विभूति; अब्दुर्रहीम खां 'रहीम' हैं। रहीम अपने राजनैतिक एवं प्रशासकीय जीवन में ही केवल राजाधिराज नहीं थे अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह राजाधिराज ही थे और यह बात उनकी बाबत साधारण जानकारी रखने वाले लोग भी भलीभांति जानते हैं। १७ वर्ष की अवस्था से ७२ वर्ष की अवस्था तक अजेय योद्धा, असाधारण सेनापति एवं दुर्दान्त पराक्रमी रहीम विकट युद्धों के भी 'राजाधिराज' ही थे। अरबी-फारसी-तुर्की के अनेकानेक प्रकारों सहित यूरोप की अंग्रेजी-फ्रेंच एवं भारतीय भाषाओं में संस्कृत-हिन्दी-अवधी-व्रज-

मराठी आदि एवं अन्यान्य भाषा-उपभाषाओं के विलक्षण ज्ञाता होने के कारण वह अपने युग के 'मैसीनेस' माने जाते थे अर्थात् भाषावैज्ञानिकों के भी राजाधिराज।

दो-एक को छोड़ उपर्युक्त भाषाओं में उनकी जो कालकवलित रचनाएं उपलब्ध हैं उनकी समीक्षा कर वर्तमान काव्यशास्त्रियों ने उन्हें 'मलिकुल् शोअरा' के पद पर प्रतिष्ठित किया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ने ससम्मान इस व्यक्ति को आज साढ़े तीन सौ वर्षों से 'कविराज' 'महाकवि' जैसे गौरवपूर्ण उपाधि से अलंकृत कर रखा है। असाधारण कृष्ण-भक्ति, विलक्षण धर्म-सहिष्णुता, लोकोत्तर साहित्य-साहित्यकार एवं कला-संरक्षण, अद्भुत दान, परोपकारिता आदि जीवन के कई क्षेत्र हैं जिनकी चर्चा यहाँ असंगत है किन्तु जीवन के इन क्षेत्रों में रहीम निश्चय ही उन समस्त क्षेत्रों के राजाधिराज ही हैं।

रहीम के राजनैतिक, ऐतिहासिक, प्रशासकीय एवं वैयक्तिक जीवन के साथ ही उनके विलक्षण भाषा-ज्ञान, लोकोत्तर काव्य-प्रतिभा, साहित्य एवं साहित्यकार संरक्षण, धर्मसहिष्णुता, संस्कृत-प्रेम, संस्कृत-लेखन आदि को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने वाले कई समकालीन एवं आधुनिक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध हैं। स्वयं उनके आश्रित इतिहासकार अब्दुल बाकी नहाबन्दी ने फारसी में 'मआसिर-ए-रहीमी' नामक लगभग २५०० पृष्ठों के एक स्वतंत्र ऐतिहासिक-ग्रन्थ की रचना की थी। 'चगत्तावंशपरम्परा, 'आइन-ए-अकबरी, 'अकबरनामा, 'मुन्तखाब् उत तवारीख, 'जहाँगीरनामा' आदि समकालीन एवं 'मआसिरुल् उमरा, 'अकबरी-दरबार' आदि उत्तरवर्ती फारसी इतिहास के ग्रन्थ उपर्युक्त तथ्यों को विस्तार से प्रस्तुत करते हैं। दो से ढ़ाई सौ वर्ष प्राचीन हिन्दी-भाषा में लिखित कतिपय इतिहास के ग्रन्थ, यथा 'वंशभाष्कर' तथा 'तारीख-ए-चगत्ता' से भी रहीम के विलक्षण व्यक्तित्व पर सविस्तार प्रकाश पड़ता है। किन्तु उपर्युक्त ऐतिहासिक ग्रन्थों में 'मआसिर-ए-रहीमी' ही एकमात्र ग्रन्थ है जिसकी रचना केवल वैयक्तिक रूप से रहीम के लिए की गई है। इसके बाद अन्य किसी भाषा में रहीम के वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित कोई ऐतिहासिक तथा समकालीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है।

इसे संस्कृत-साहित्य का सौभाग्य समझना चाहिए कि अमरवाणी के इस वरदपुत्र के स्तुत्य जीवन को काव्यीय भाषा में प्रस्तुत करते हुए समकालीन एक दक्षिण-भारतीय संस्कृत-कवि ने इस लघुकाय चम्पूकाव्य की रचना की और हमारे सौभाग्य से यह चम्पूकाव्य अन्य साहित्य-ग्रन्थों की तरह विलुप्त होने से बच भी गया। 'नवाबखानखानाचरितम्' की ऐतिहासिक महत्ता का एक अन्य पक्ष भी है और निश्चय ही यह पक्ष अधुना पर्यन्त मध्यकालीन भारतीय इतिहास के सन्दर्भों

में अविवेचित एवं अव्याख्यात ही रहा है। यह है सुदूर दक्षिण के एक राठौर-वंशीय बागुलान-राज्य के राजा प्रताप शाह एवं उसके राज्य के साथ मुगल-साम्राज्य के सम्बन्ध। कालान्तर में इन सम्बन्धों में आई खटास, जहाँगीर द्वारा प्रताप शाह के ऊपर आक्रमण, प्रताप शाह द्वारा इस आक्रमण से बचने हेतु पूर्व-परिचय के आधार पर रहीम से प्रार्थना। अकबर एवं जहाँगीर कालीन भारतीय इतिहास को सविस्तार प्रस्तुत करने वाली समकालीन एवं आधुनिक इतिहास की पुस्तकों में भी प्रायः इतिहास के इस पक्ष को अनदेखा किया गया है जिसके कारण रहीम के साथ ही प्रताप शाह से सम्बन्धित इन अज्ञात तथ्यों के लिए 'नवाबखानखानाचरितम्' अपनी विशेष महत्ता रखता है।

उपर्युक्त चम्पूकाव्य की इन्हीं कतिपय विशेषताओं की ओर आकृष्ट होकर संस्थान इसकी खोज में विगत कई वर्षों से प्रयासरत रहा। 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' नामक शोध-ग्रन्थ के लेखन के समय इसकी एक प्रकाशित प्रति प्रस्तुत अनुवादक को उपलब्ध हुई जिसे उपर्युक्त शोध-ग्रन्थ के परिशिष्ट में सम्पादित कर प्रकाशित किया जाना था। किन्तु कालान्तर में इसके हिन्दी-अनुवाद के साथ स्वतंत्र प्रकाशन की योजना पर ध्यान दिया गया तो यह संस्थान के उद्देश्यों (अज्ञात एवं दुर्लभ-कृति प्रकाशन माला) के पूर्णतः अनुरूप सिद्ध हुआ। प्राच्य-विद्या के अनुरागियों को संस्थान का यह प्रयास निश्चय ही आनन्दित करेगा और उनके आशीष, दिशा-निर्देश से हमारा यह उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करेगा; बस इसी बलवती आशा के साथ यह प्रथम-पुष्प आपके हाथों समर्पित है।

निदेशिका

डॉ. शुचिस्मिता पाण्डेय

भूमिका

संस्कृत-साहित्य की अगाध परम्परा और उसके विशाल इतिहास के गौरवपूर्ण महत्त्व से विद्वत्-समाज परिचित है। हम यहाँ संस्कृत-वाङ्मय की चर्चा न कर; मात्र उसके साहित्य की चर्चा कर रहे हैं। विशुद्ध साहित्य; जिसे बहुधा काव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। संस्कृत-काव्यों की परम्परा और उसके इतिहास के विशाल स्वरूप की चर्चा, अपने सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर; मैं इस परम्परा की अगाधता या उसकी विशालता का कलेवर अपनी छोटी बुद्धि के कारण छोटा नहीं करना चाहता। महाभारत की विशालता के कारण उसका एक अन्वर्थ अभिधान 'विश्वकोश' के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस भारतीय आदि ऐतिहासिक महाकाव्य की विशालता से सम्बन्धित एक सूक्ति स्वयं इसी में निम्नवत् प्राप्त होती है — **''यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्''** अर्थात् जिसका प्रतिपादन यहाँ (महाभारत में) किया गया वही संसार में उपलब्ध है और जिसका उल्लेख इसमें नहीं वह संसार भर में है ही नहीं। मुझे नहीं पता संसार में कितने प्रतिपाद्य हैं और उनके कितने रूप हैं और यह भी नहीं पता कि महाभारत के कितने प्रतिपाद्य हैं और संसार में वह हैं भी या नहीं। पुण्य श्लोक बाबा (पण्डित वासुदेव द्विवेदी शास्त्री) जब जीवित थे तो प्रायः जब मैं इस पंक्ति पर उनसे चर्चा करता तो वे इसका खण्डन कर देते और प्रमाण के तौर पर अनेकानेक विषयों को गिना देते जिनका उल्लेख; उनके अनुसार महाभारत में नहीं है या इनकी कोई चर्चा महाभारत में की ही नहीं गई है। एक तो समग्र महाभारत का अध्ययन नहीं, दूसरे संसार भर में प्रचलित और उपयोगी विषयों का पूर्ण ज्ञान नहीं; इसलिए बाबा की इन बातों से उन दिनों निश्चय ही यह बाल-मन और चञ्चल हृदय प्रायः ऊब जाता था। मेरा व्यक्तिगत कोई आक्षेप इस सूक्ति पर नहीं होता किन्तु इस सूक्ति का विनियोग मैं महाभारत की अपेक्षा संस्कृत-साहित्य के लिए करने का विशेष आग्रही था। मेरे इस आग्रह पर साधारण जन या विद्यार्थी तो नहीं परन्तु संस्कृत-साहित्य की विशालता का कुछ भी ज्ञान रखने वाले और विद्वान् यदि रत्ती मात्र भी ध्यान दें तो उन्हें बेहिचक इस तथ्य से सहमत होना ही पड़ेगा कि उपलब्ध विश्व-साहित्य में जो स्थान, महत्त्व, गौरव एवं विशालता; संस्कृत-साहित्य का है; निश्चय ही वह अन्य किसी भाषा-साहित्य का नहीं और इसे जानने हेतु संस्कृत-साहित्य के ज्ञात और अज्ञात इतिहास के विषय का ज्ञान रखना आवश्यक है।

अनेकानेक भागों और उपविभागों में विभक्त संस्कृत का विपुलकाय साहित्य और उन पर उपलब्ध लाखों की संख्या में वे महनीय गौरव ग्रन्थ, निश्चय ही विश्व-साहित्य पटल पर हम भारतीयों का शिर सम्मान से ऊंचा कर देते हैं। वर्तमान संस्कृत-साहित्य में काव्य-ग्रन्थों की किसी निश्चित संख्या को निर्धारित नहीं किया जा सकता और हम लाख कोशिश करके भी यह नहीं जान सकते कि संस्कृत-साहित्य में काव्य की अनेकानेक विधाओं पर उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या क्या है। इसमें भी प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त अप्रकाशित और ज्ञात ग्रन्थों के अतिरिक्त अज्ञात ग्रन्थ; जो कि पाण्डुलिपियों के रूप में नित्य ही प्राप्त हुआ करते हैं; की -अभी कोई चर्चा भी नहीं है। इस प्रकार हम देखें तो संस्कृत-साहित्य की जिस अगाधता या विशालता की चर्चा साधारण जनता में व्याप्त है वस्तुतः वह अगाधता या विशालता, इस चर्चा या अनुमान से भी कहीं बाहर की वस्तु सिद्ध हो जाती है। इस प्रसङ्ग में 'कैटोलोगस् कैटोलोगोरम्' या संस्कृत-साहित्य के कोश-ग्रन्थों जिनमें इन पाण्डुलिपियों या अज्ञात ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है; की चर्चा कर दूं तो आज तक ऑफ्रेक्ट, पीटर्सन, तथा डॉ. वी. राघवन् द्वारा सम्पादित 'कैटोलॉगस् कैटोलोगोरम्' के कितने ही भाग तथा खण्ड एवं इनके संस्करण प्रकाशित हो चुके किन्तु निश्चय ही ये समस्त संस्करण संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध अज्ञात ग्रन्थों की सम्पूर्णता को प्रस्तुत नहीं कर पाए और ये ही नहीं; इस प्रकार का कोई भी प्रयास सदा असफल ही रहेगा।

अस्तु, अज्ञात और अनुपलब्ध ग्रन्थों की इस परिचर्चा के प्रसङ्ग में ही हम विवेच्य काव्य ग्रन्थ; 'नवाबखानखानाचरितम्' की चर्चा भी कर लें तो उचित होगा। 'नवाबखानखानाचरितम्' संस्कृत-साहित्य का एक विलक्षण एवं अद्वितीय चम्पूकाव्य है जिसकी रचना १६ वीं शती के उस मध्यकाल में की गई थी, जिसे भारतीय इतिहास में मुगलकाल कहते हैं। बागुलान (मुल्हेर) जो कि वर्तमान में नागपुर जिले के अन्तर्गत आता है और उस समय दक्षिण-भारत के राज्यों में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था; -के तत्कालीन राठौर-नरेश प्रताप शाह के आदेश पर महान् मुगल सम्राट् अकबर बादशाह के परम सहयोगी, मित्र, सम्बन्धी, मुगल-शासक और मुगल-सेना के महान् सेनापति नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रशंसा और उसकी स्तुति में दक्षिण के ही एक रससिद्ध महाकवि जिनका अभिधान श्रीरुद्रकवि है, -ने इस चम्पूकाव्य का प्रणयन अपने संरक्षक राजा प्रताप शाह की कतिपय राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने हेतु किया था। प्रस्तुत चरितप्रधान चम्पूकाव्य के चरित-नायक नवाब खानखाना, महान् मुगल सम्राट् अकबर के

विश्वस्त सेनापतियों अथवा मुगल शासकों में ही नहीं स्वयं अकबरी-दरबार के नव रत्नों में से भी एक थे। समूचा भारत आपको रहीम के नाम से जानता ही नहीं, अपनी जबान पर भी रखता है। जी हाँ शायद ही कोई भारतीय व्यक्ति हो जिसने रहीम के अत्यन्त ललित तथा नीतिपरक दो-चार दोहे न पढ़े हों। विगत साढ़े तीन सौ वर्षों का हिन्दी और संस्कृत-साहित्य का इतिहास अपने इस सुविख्यात लेखक और कवि की कीर्ति को सुरक्षित रखे हुए है। हिन्दी के रीतिकाल के अन्तर्गत जिन दो-चार महान् कवियों की गणना की जाती है, रहीम उनमें अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। नायिकाभेद-परक रीति-ग्रन्थों के लेखन का श्रीगणेश; जिसके कारण इस काल को ही 'रीति-काल' का अभिधान प्राप्त हुआ; -बहुधा रहीम के नाम के साथ ही होता है। संस्कृत में उनके रचे दो ग्रन्थ, एक अष्टक जो कि भगवती गङ्गा को समर्पित है, भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत तथा रसपिच्छिल आठ मनोरम पद्य और एक संस्कृत-हिन्दी मिश्रित रचना जिसे 'मदनाष्टक' के अभिधान से जाना जाता है, प्राप्य हैं। फारसी में उनके द्वारा अनूदित 'तुजुक-ए-बाबरी' जो कि तुर्की गद्य-साहित्य के गिने-चुने गौरव ग्रन्थों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है; का अनुवाद 'बाकेआत बाबरी, 'फारसी-दीवान' जिसे उनकी गजलों का संग्रह कहा जा सकता है; के अतिरिक्त छिटपुट कई फारसी कविताएं भी उपलब्ध हैं। इसी प्रकार उनके द्वारा लिखित अरबी का भी एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण साहित्य प्राप्त होता है जिसे हम आजकल पत्र-साहित्य के रूप में जानते हैं। इस प्रकार रहीम तत्कालीन युग के केवल एक योग्य शासक या सेनापति ही नहीं, एक अद्वितीय ग्रन्थकार, भाषावैज्ञानिक, सिद्ध कवि और विद्याव्यसनी भी थे। इतिहास आपको विद्याजीवियों और पण्डितों के एक महान् आश्रयदाता किञ्च संरक्षक के रूप में आज भी गौरव के साथ उपस्थित करता है जिसने अरबी-फारसी-संस्कृत तथा हिन्दी-कवियों को प्रभूत संरक्षण दिया।

नवाबखानखानाचरितम्; जैसा कि मैं ऊपर चर्चा कर आया हूँ, संस्कृत-साहित्य का एक अज्ञात और अप्राप्य ग्रन्थ है। यद्यपि इसका प्रकाशन आज से पचास या बावन वर्ष पूर्व कलकत्ता के विश्वविश्रुत विद्वान् और अनुसन्धान प्रेमी यतीन्द्र विमल चौधरी के सम्पादन में उन्हीं के प्रकाशन से हो चुका है परन्तु कई कारणों से यह आज भी उसी प्रकार अज्ञात, अप्राप्य और दुर्लभ है जैसा कि प्रकाशन से पूर्व यह इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी, लन्दन के पुस्तकालय में हस्तलेख के रूप में दुर्लभ था। यहीं यह भी सूचित कर देना उचित होगा कि यद्यपि इसकी एक हस्तलिखित प्रति भारत (नागपुर विद्यापीठ) में भी उपलब्ध है किन्तु आज तक उसका प्रकाशन नहीं हो सका है। "संस्कृत और मुसलमान" शीर्षक अपने एक

दीर्घकालीन विशाल अनुसन्धान कार्य के अन्तर्गत जब मैं "खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत" शीर्षक पुस्तक के लेखन-कार्य में व्यापृत था तब कई वर्षों के परिश्रम के बाद इसकी एक प्रकाशित प्रति मुझे उपलब्ध हो सकी थी। इसके उपलब्ध होने के बाद प्रस्तुत चम्पूकाव्य के ऐतिहासिक महत्त्व को देखते हुए किञ्च रहीम पर उपलब्ध फारसी, अंग्रेजी व हिन्दी-भाषाओं के इतिहास-ग्रन्थों के समानान्तर इस संस्कृत-काव्य ग्रन्थ को भी रखकर इसके उपयोग हेतु यह इच्छा प्रबल हो उठी कि क्यों न इस ग्रन्थ-रत्न को राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनूदित कर साहित्य-प्रेमी समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाए और इस प्रकार यह विलुप्तप्राय ग्रन्थ टूटी-फूटी हिन्दी में अनूदित हो आपके समक्ष प्रस्तुत है। निश्चय ही अनुवाद के सिद्धान्तों के कारण जो विसङ्गतियाँ अनूदित साहित्य में प्राप्य हुआ करतीं हैं वे इसमें भी मिलेंगी किन्तु इस प्रसङ्ग में मैं सिद्धान्ततः क्षमा का पात्र बन सकूंगा। हाँ जहाँ इस प्रकार की क्षमा मिलने की आशा मुझे नहीं है उन काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों और संस्कृत के व्याकरणिक पक्षों के कारण हुई अशुद्धियों के प्रसङ्ग में विद्वत्समुदाय के समक्ष नतेन मूर्ध्ना केवल यही विनती करूंगा कि यह बाल-चापल्य; मात्र उनके दुर्लभ दिशा-निर्देश से ही अपनी उस प्रौढि को प्राप्त हो सकता है अतः इस प्रकार के अविस्मरणीय निर्देशों की ओर आकृष्ट कर हमें कृतार्थ करें।

खानखानाचरितम् की प्रस्तुत प्रति :

'नवाबखानखानाचरितम्' को इतिहास के पृष्ठों एवं बन्द आलमारियों, बस्तों तथा प्राचीन पुस्तकों की गठरियों से बाहर निकालकर, साधारण जनता और संस्कृत-समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय श्री विनायक वामन करंबेलकर को है, जिन्होंने इसकी एक दुर्लभ पाण्डुलिपि के आधार पर इससे सम्बन्धित सभी आवश्यक ज्ञातव्य तथ्यों, ग्रन्थ, ग्रन्थकार तथा विषयवस्तु आदि को अत्यन्त संक्षेप में नागरीप्रचारिणी पत्रिका (केशव स्मृति अङ्क, संवत् २००८, पृष्ठ : २९६-२९७) में प्रकाशित किया। इसके बाद यतीन्द्र विमल चौधरी ने बहुत ही परिश्रम-पूर्वक और अनुसन्धान के धरातल पर इस ग्रन्थ से सम्बन्धित आवश्यक विवरणों को अपनी पुस्तक Contributions of Muslims to Sanskrit learning, part.2 जिसमें कि केवल रहीम के संस्कृत-ज्ञान और रहीम की संस्कृत-कृतियों को प्रस्तुत किया गया है; मूल 'नवाबखानखानाचरितम्' का प्रकाशन किया। प्रस्तुत अनुवाद में मैंने 'नवाबखानखानाचरितम्' से सम्बन्धित विवरणों को डॉ. करंबेलकर के उपर्युक्त शोधलेख से ही प्रस्तुत किया है क्योंकि इस लेख में सम्बन्धित विवरणों को विस्तार से तथा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है।

पाण्डुलिपि परिचय :

'नवाबखानखानाचरितम्' की पाण्डुलिपि नागपुर विद्यापीठ में सुरक्षित है। करंबेलकर की सूचना के अनुसार 'नागपुर विद्यापीठ' ने यह ग्रन्थ नासिक से सन् १९४६ में अपने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थागार के लिए खरीदा था। विद्यापीठ में इस पाण्डुलिपि की स्थिति इस प्रकार है —

''नागपुर-विद्यापीठ, प्राचीन-हस्तलिखित ग्रन्थ-क्रमाङ्क : ५८२, आकार : १०×४.५, पृष्ठ : ३-२२, आधार : देशी कागज, अवस्था : प्राचीन, लिपि : नागरी (अव्यवस्थित) स्थिति : अपूर्ण (प्रथम पृष्ठ अप्राप्य)''

बाद में इसी ग्रन्थ की दूसरी प्रति यशवन्त-खुशाल देशपांडे (यवतमाल, विदर्भ) की सहायता से प्राप्त हुई और देशपाण्डे ने यह प्रति (पाण्डुलिपि) पूना से प्राप्त की थी। इन दोनों प्रतियों के आधार पर यह ग्रन्थ पूर्ण होता है। आफ्रेक्ट ने 'कैटोलोगस कैटोलोगोरम्' जिल्द-एक, पृष्ठ-५२८ पर जिस 'बाबचरितम्' की सूचना दी है, करंबेलकर उसे 'नवाबखानखानाचरितम्' ही मानते हैं।

यहाँ हम डॉ. चौधरी द्वारा सम्पादित संस्करण से सम्बधित विवरणों तथा सूचनाओं को भी विस्तार से प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं। डॉ. यतीन्द्र विमल चौधरी ने इसका प्रकाशन जिस हस्तलिखित ग्रन्थ के आधार पर किया है उसका विवरण भी उन्होंने यथास्थान प्रस्तुत कर दिया है और यह आश्चर्य के साथ ही प्रसन्नता की बात भी है कि चौधरी साहब ने अपने प्रकाशन हेतु नागपुर विद्यापीठ की उपर्युक्त पाण्डुलिपि की सहायता न लेकर एक सर्वथा अज्ञात पाण्डुलिपि की सहायता ली है; जो कि 'इंडिया-ऑफिस-लायब्रेरी, लंदन' में सुरक्षित थी और इस प्रति के सम्पादन-क्रम में उन्होंने एक बार भी इस बात की चर्चा नहीं की है कि वे नागपुर विद्यापीठ में सुरक्षित 'नवाबखानखानाचरितम्' की उस पाण्डुलिपि से परिचित भी थे या नहीं जिसका विवरण डॉ. करंबेलकर ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में दिया है। डॉ. चौधरी द्वारा प्रस्तुत इस पाण्डुलिपि का विवरण हम अपने पाठकों की सुविधा हेतु संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं[१] :

Apart from the very interesting work partly described above, there is another complete work on the life of Nawab Khan Khana called Nawab Khan-Khana-Charita by Rudra Kavi. Unfortunately only one Ms. of this very fascinating work is available. It is now preserved in the Common Wealth Relations office Library, London, Mss. No. 7304, Buhler 70 B.

१. Contributions of Muslims to Sanskrit learning, part-2, pp.56-57.

We consider it necessary to record a description of the Ms. Here. The mss. is written on European paper; Size - 11 inch by 3/7.8 inch; Written in Devanagari script in the Nineteenth century; eight lines in a page.

डॉ. यतीन्द्रविमल चौधरी की प्रस्तुत प्रति के सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि लन्दन में उपलब्ध यह हस्तलिखित ग्रन्थ, प्रतिलिपि की दृष्टि से बहुत शुद्ध नहीं है और अशुद्ध प्रतिलिपि के कारण इसके पाठ को भी बहुत शुद्ध नहीं माना जा सकता। कई स्थानों पर अशुद्ध प्रतिलिपि के कारण अर्थ का अनुसन्धान तक करना कठिन है। चौधरी जी ने मूल पाठ के स्व-सम्मत पाठान्तर को नीचे पाद-टिप्पणी में प्रस्तुत कर अपने आदर्श और शुद्ध पाठ को ही प्रस्तुत किया है किन्तु पाद-टिप्पणी में प्रस्तुत पाठान्तर से भी अर्थावबोध में कोई विशेष सहायता नहीं प्राप्त होती। प्रस्तुत अनुवाद में मैंने चौधरी जी के स्वकल्पित आदर्श पाठ को यथावत् रख दिया है और उनके द्वारा पाद-टिप्पणी में प्रदत्त पाठान्तरों को उसी आदर्श पाठ के आगे () इस कोष्ठक में प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रकार जहाँ चौधरी जी के शुद्धपाठ और उनके द्वारा प्रदत्त पाठान्तर से भी अर्थावबोध नहीं हो सका या इसमें कोई परेशानी आई तो स्वविवेक से किन्तु काशी के सम्मानित पण्डितों द्वारा सम्मत तथा प्रदर्शित पाठ की सहायता से ही मैंने इस प्रति को यहाँ प्रस्तुत किया है। अन्य आवश्यक विवरण फुट्नोट् में रख दिए गए हैं।

प्रस्तुत अनुवाद के लिए मैंने डॉ. यतीन्द्रविमल चौधरी की सम्पादित प्रति का उपयोग किया है और आवश्यक विवरणों के लिए डॉ. करंबेलकर के शोधलेख से सहायता ग्रहण की है। यहाँ मैं स्पष्ट बता दूं कि अनुवाद से पूर्व मेरा यह कर्तव्य बनता था कि मैं नागपुर विद्यापीठ में सुरक्षित खानखानाचरितम् की पाण्डुलिपि का अध्ययन अवश्य कर लेता और इस पाण्डुलिपि की सहायता से ही खानखानाचरितम् के आदर्श पाठ को प्रस्तुत कर इसका अनुवाद करता। किन्तु इस सारस्वत एवं अनिवार्य कर्तव्य में मैंने जान-बूझकर जो आघात किया उसका कारण मेरी अरुचि या लापरवाही कथमपि नहीं जानना चाहिए। कारण कि किसी विश्वविद्यालय या हस्तलेख संग्रहालय में सुरक्षित पाण्डुलिपि को पढ़ने या उससे विवरण लेने में जो कठिनाइयाँ आती हैं उनसे विद्वत्समाज और विशेषकर अनुसन्धित्सु समाज अपरिचित नहीं है। लाख-कोशिश करने पर भी ऐसे हस्तलिखित ग्रन्थों के दर्शन दुर्लभ ही होते हैं। फिर यदि आपको किसी ग्रन्थ का सम्पादन या अनुवाद करना हो तो और भी विपत्तियां मुँह बाए खड़ी हो जाती हैं। यदि आप किसी प्रतिष्ठित पद पर या किसी अनुसन्धान संस्थान के निदेशक न हों तो इस प्रकार की पाण्डुलिपियाँ

आपको नहीं मिल सकतीं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि संस्कृत, हिन्दी आदि भाषा-साहित्य के लाखों शोधार्थी; विश्वविद्यालयों में तथा स्वतंत्र भी शोधकार्य किया करते हैं किन्तु इनमें एक प्रतिशत भी शोध, हस्तलेखों पर नहीं हुआ करते। इसी प्रकार प्रतिवर्ष अनुमानतः हजारों शोधलेख पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं और सङ्गोष्ठियों में प्रस्तुत किये जाते हैं किन्तु इनमें पाण्डुलिपियों से संबन्धित लेखों की संख्या नहीं के बराबर होती है। इसके अन्य भी कई कारण हैं। एक तो शोध-पत्रिकाएं बहुत ही कम; नाममात्र को छपतीं हैं परन्तु उनमें एक भी किसी पाण्डुलिपि से सम्बन्धित शोधलेख आपको ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा। सर गङ्गानाथ झा, महा-महोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज, प्रो. पी. के. गोडे, डॉ. हरदत्त शर्मा, डॉ. ताराचन्द, डॉ. सी. कु. राजा आदि के समकालीन एनल्स और पत्रिकाओं को देखें तो आपको दिखाई पड़ेगा कि किस प्रकार इन विद्वान् मनीषियों ने संस्कृत-साहित्य के अज्ञात साहित्य का उद्धार पाण्डुलिपियों के संशोधित संस्करणों पर लेख, विवरण, साक्ष्य आदि को लिख-लिख कर किया। किन्तु वह समय ही अब विलुप्त-प्राय हो चला है। विगत कई वर्षों से मैं इसी प्रकार की पाण्डुलिपियों की खोज में और उनके अध्ययन में लगा हूँ। स्वयं एक महान् अर्थव्यय का भार सहन कर मैंने लगभग ७०० से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह भी किया है। किन्तु पुस्तकालयों और हस्तलेख-संग्रहालयों में ऐसे ग्रन्थों को देखने के जो कठिन और भयावह नियम हैं उनके कारण अब कभी-कभी वह स्फूर्ति ही नहीं आ पाती कि किसी हस्तलेख को देखने के लिए किसी पुस्तकालय का महीनों चक्कर काटा जाये।

'नवाबखानखानाचरितम्' के मूल हस्तलेख पर मेरा ध्यान तब से लगा हुआ है जब मैं 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' नामक एक शोधग्रन्थ के लेखन में व्यापृत था। उसी दौरान मैंने 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित इसके सन्दर्भ में डॉ. करंबेलकर का लेख पढ़ा किन्तु अनेक बार नागपुर विद्यापीठ से पत्राचार के बाद भी जब जवाब तक नहीं आया तो मैंने डॉ. यतीन्द्रविमल चौधरी द्वारा सम्पादित प्रति को ही अपना आधार बनाकर अपने शोध-ग्रन्थ में उसे डाल दिया। कालान्तर में इसके हिन्दी-अनुवाद के साथ इसके स्वतंत्र प्रकाशन का भी एक सत्-सङ्कल्प आया तो इस सम्पादित प्रति को ही आधार बनाकर उसका अनुवाद प्रस्तुत कर दिया जो कि विद्वानों और साहित्य-प्रेमी सहृदय पाठकों के हाथों आज उपलब्ध है।

नवाबखानखानाचरितम् : सफल चम्पूकाव्य -

ऊपर हम चर्चा कर आये हैं कि काव्य-विधा के आधार पर यदि प्रस्तुत

काव्य-ग्रन्थ 'नवाबखानखानाचरितम्' का अनुशीलन किया जाए तो हम इसे चम्पू-काव्य की कोटि में रचित पाते हैं। गद्य एवं पद्य के एकत्रित अथवा एक ही काव्य में समकालीन मिश्रण से उपजने वाली इस काव्यविधा को आचार्यों ने चम्पू कहकर पुकारा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहास के साथ ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास की परम्परा में भी चम्पू के इतिहास को ईसवी सन् ९०० से अधिक प्राचीन स्वीकार करने में प्रमाणों तथा ऐसे चम्पू-काव्यों का अभाव प्रदर्शित किया गया है जो इस काल से पूर्व रचे गए हों।[१] किन्तु इसका आशय इस रूप में कभी नहीं ग्रहण करना चाहिए कि चम्पू-काव्यों की रचना इसी समय से प्रारम्भ हुई क्योंकि ऐसा मानना चम्पू-काव्यों के इतिहास की बाबत उपलब्ध प्रामाणिक तथ्यों की अवहेलना मात्र होगा। चम्पू-काव्यों की सर्वप्रथम उपलब्ध चर्चा दण्डी के काव्यादर्श[२] में है और आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार दण्डी का काल बाणभट्ट, भर्तृहरि तथा माघ के बाद सातवीं शती का उत्तरार्द्ध है।[३] अतः दण्डी द्वारा चम्पू के रूप में गद्यपद्य-मिश्रित काव्यभेद की चर्चा तथा चम्पू-लक्षण एवं परिभाषा से यह सिद्ध है कि ईसा की सातवीं शताब्दी तथा उससे पूर्व भी चम्पू-काव्यों की रचना की ओर संस्कृत-कवियों का काफी रुझान था और निश्चय ही उस समय तक अनेकानेक चम्पू-काव्य रचे गए होंगे। हाँ यह अवश्य ही विचारणीय तथा अनुसंधेय तथ्य है कि इस काल की चम्पू-रचनाएं आज उपलब्ध नहीं हो पातीं। उपलब्ध चम्पू-काव्यों में सबसे प्रथम ज्ञात, आदि चम्पू-ग्रन्थ है त्रिविक्रमभट्ट द्वारा रचित 'नलचम्पू' जिसका रचना-काल दशम शती का पूर्वार्द्ध, लगभग ई. सन् ९१५ से ९२५ है। यद्यपि यह ज्ञात चम्पू-साहित्य का आदि ग्रन्थ है किन्तु इसका कथाक्रम, प्रवाह, धारावाहिकता, रचना-शैली, भाषा तथा काव्य-शैली आदि की प्रौढ़ता को देखकर चम्पू-काव्यों के उत्कर्ष का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। यद्यपि संस्कृत-साहित्य के किसी इतिहास अथवा समीक्षा-ग्रन्थ में इस प्रकार की कोई चर्चा नहीं की गई है कि नलचम्पू के लेखक के सामने किसी प्रकार का कोई चम्पू-ग्रन्थ; आदर्श के रूप में विद्यमान था जिससे प्रभावित होकर त्रिविक्रम भट्ट ने इस प्रकार के प्रौढ़ एवं पाण्डित्य-पूर्ण चम्पू की रचना में सफलता प्राप्त की, किन्तु एकबारगी इस तथ्य को उसी प्रकार स्वीकार करने में अविश्वास अधिक होता है। किसी भी

१. देखिए : संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.४१२-४१३. तथा 'हिन्दी विश्वकोष, भाग-४, पृष्ठ : १४८-१४९.

२. **मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।**
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते।। १/३१

३. विशेष विवरण हेतु देखिए : संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पृष्ठ : १९२-१९३.

प्रकार की रचना पर उसके पूर्ववर्ती रचना या रचनाकार का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। फिर नलचम्पू जैसी रचना बिना किसी प्रभाव के पूर्ण हो गई और पूर्ण क्या हुई हजारों वर्षों से साहित्य-समाज के लिए एक आदर्श और प्रमाण-ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सहसा इस तथ्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता और अविश्वास की इस स्थिति में नलचम्पू के किसी आधार की ओर एक शोधदृष्टि स्वयं ही आकृष्ट हो जाया करती है। किन्तु दुर्भाग्य कि इस दृष्टि के समक्ष आज तक इस प्रकार का कोई आधार चम्पू-ग्रन्थ प्रस्तुत नहीं हो सका। अस्तु, नलचम्पू के प्रौढ, प्राञ्जल एंवं पाण्डित्य-पूर्ण स्वरूप किञ्च साहित्य-समाज में इसकी लोकप्रियता ने संस्कृत-रचना-धर्मियों को बहुतायत से अपनी ओर आकृष्ट किया और बहुत जल्द इस प्रकार की चम्पू-रचनाओं से संस्कृत-साहित्य का आकाश जगमगा उठा। काव्य की इस विधा के विकास के इतिहास से विद्वान् और समीक्षक वर्ग पूर्ण परिचित है अतः इस प्रसङ्ग को अधिक बढ़ाना उचित नहीं प्रतीत होता।

गद्य-पद्यमिश्रित काव्य के रूप में चम्पू का जो काव्यीय भेद पृथक् किया गया उस पर भी समीक्षकों तथा आलोचकों का भिन्न-भिन्न मत है। संस्कृत के पारम्परिक आचार्य गद्य-काव्य को; अर्थगौरव तथा विलक्षण वर्णन-क्षमता के कारण महत्त्व देते हैं तो पद्य-काव्य को उसकी छन्दोबद्धता के कारण और उसके माध्यम से होने वाली लय-सम्पत्ति की समृद्धि के कारण। और इन दोनों के सम्मिश्रण; चम्पू-काव्य को वे एक नूतन चमत्कार का, एक अद्भुत कमनीयता का सर्जक मानते हैं।[१] किन्तु आधुनिक हिन्दी-साहित्य समीक्षक तथा आलोचक-विद्वानों ने गद्य-पद्य-मिश्रित काव्यभेद चम्पू के इस सम्मिश्रण पर कुछ अलग ही विचार प्रस्तुत किये है जो कि समकालीन काव्य-आस्वाद और काव्य-भेद के वैज्ञानिक विश्लेषण की भावभूमि पर नितान्त औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। इसके अनुसार —

"इस मिश्रण का उचित विभाजन यह प्रतीत होता है कि भावात्मक विषयों का वर्णन पद्य के द्वारा तथा वर्णनात्मक विषयों का वर्णन गद्य के द्वारा प्रस्तुत किया जाए। परन्तु चम्पू-रचयिताओं ने इस मनोवैज्ञानिक वैशिष्ट्य पर विशेष ध्यान न देकर दोनों के सम्मिश्रण में अपनी स्वतंत्र इच्छा तथा वैयक्तिक अभिरुचि को ही महत्त्व दिया है।"[२]

प्रस्तुत ग्रन्थ 'नवाबखानखानाचरितम्' की प्रकृति या कलेवर या उसके काव्यीय भेद की चर्चा करते हुए डॉ. करंबेलकर ने स्पष्टतः प्रस्तुत काव्य-कृति को

---

१. देखिए : संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ : ४१२.

२. हिन्दी विश्वकोश, (नागरीप्रचारिणी सभा, काशी) भाग-४, पृष्ठ : १४८.

चम्पू-काव्य के रूप में निरूपित किया है। इसके अनुसार नवाबखानखानाचरितम्; गद्य-पद्य-मिश्रित चम्पू विधा की रचना है। करंबेलकर के अनुसार[१] —

"सूक्ष्मरूप से विचार करने पर 'खानखानाचरितम्' को न तो कथा कहा जा सकता है न आख्यायिका। इसके खण्ड, उच्छ्वास न कहे जाकर उल्लास कहे गए हैं। इसमें आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र नहीं हैं केवल लम्बे छन्द ही हैं जो कथा एवं आख्यायिका; दोनों में पाए जाते हैं। ...रुद्रकवि ने इसमें पाञ्चाली-रीति का अनुसरण किया है। इसमें शब्द और अर्थालङ्कारों की प्रचुरता एवं श्लेष की प्रधानता है। पद-पद पर मधुर लयबद्ध ध्वनि की मधुर झङ्कार सुनाई पड़ती है। श्लेष और अनुप्रास के अतिरिक्त जो कि रुद्रकवि के प्रधान अस्त्र हैं; विरोध, निदर्शना, सहोक्ति आदि का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है।"

करंबेलकर के उपर्युक्त विवरण के अनुसार उन्होंने प्रस्तुत काव्य-ग्रन्थ की प्रकृति को चम्पू-काव्य की कोटि में प्रतिष्ठित किया है। वस्तुतः यदि गद्य और पद्य-काव्यों के प्रचलित भेदों और उनकी विधाओं के समक्ष नवाबखानखानाचरितम् को रखकर देखा जाये तो करंबेलकर का अनुमान गलत प्रतीत नहीं होता। रुद्रकवि की यह लघुकाय रचना संस्कृत के विविध छन्दों एवं गद्य में रचित है और गद्य-पद्य के इस समकालीन काव्यीय सम्मिश्रण को आलङ्कारिक आचार्यों ने चम्पू के अभिधान से अभिहित किया है, जैसा कि आचार्य दण्डी के एतत्सम्बन्धी **"गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते"** मत की चर्चा के आलोक में चम्पू-काव्य पर हम विस्तार से विवरण दे आए हैं। किन्तु यहाँ हम खानखानाचरितम् को चम्पूकाव्य के भी एक विभेद-विशेष के अन्तर्गत रखने से सम्बन्धित अपने दुराग्रह को विद्वानों के समक्ष अवश्य रखेंगे और इस प्रसङ्ग में हम प्रकृत काव्य को चम्पू-काव्यों के 'चरित-प्रधान' भेद के अन्तर्गत अन्तर्निहित करेंगे। इस प्रकार 'नवाबखानखानाचरितम्' चरितप्रधान चम्पू-काव्य-विधा का एक गौरव-ग्रन्थ कहलाने का पूर्ण अधिकारी है।

अस्तु, यहाँ हम अपने पाठकों के समक्ष नवाबखानखानाचरितम् की ग्रन्थ-प्रकृति को उसके मूलरूप के साथ, संक्षिप्तरूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे रहीम के संस्कृत-ज्ञान एवं संस्कृत-प्रेम का भी परम्परया ज्ञान हो जाता है। इस चम्पू-ग्रन्थ के प्रथम-उल्लास का प्रारम्भ खानखाना के वर्णनपरक इस पद्य से होता है —

मन्ये विश्वकृता दिशामधिपता त्वय्येव संस्थापिता
यस्माज्जिष्णुरसि प्रभो शुचिरसि त्वं धर्मराजोऽप्यसि।

---

१. संदर्भ लें : नागरीप्रचारिणी पत्रिका, केशवस्मृति अङ्क, पृ. २९६-२९७.

राजन्पुण्यजनोऽसि विश्वजनताधारप्रचेता जगत्
प्राणास्त्वं धनदो महेश्वर इह श्रीखानखान प्रभो ।।

इसके बाद खानखाना के वर्णनातिरेक प्रारम्भ होते हैं जो एकबारगी बाणभट्ट की कादम्बरी के प्रारम्भिक गद्यों की स्मृति दिलाते हैं। उदाहरणतः —

"द्वितीयः कलङ्कविकलः कुमुदिनीकान्त इब, स्वतंत्रस्तृतीयो नासत्य इव, जलाभिभवनस्तुरीयः पावक इव, निरस्तभुजङ्गमकरः पञ्चमो रत्नाकर इव, अकल्पितवितरणनिपुणः षष्ठः कल्पद्रुम इव, अपरिमितसत्त्वः सप्तमः शक्र इव, सर्वत्र सर्वसमयगेयो मूर्तिमानष्टमः स्वर इव, समक्षः स्वैराचारी नवमः कुलाचल इव, सकलजननयनानन्दननिदानं पराधीनो दशमः निधिरिव.... ।"

इस उल्लास में कतिपय गद्य जो कि खानखाना के शौर्य, प्रताप, वीरता, आदि के निदर्शक हैं; बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं और संस्कृत-गद्य के गौरव को अच्छी तरह प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। उदाहरणतः —

यस्य च मनसि धर्मेण, तोषे धनदेन, रोषे कृतान्तेन, प्रतापे तपनेन, रूपे मदनेन, करे दिव्यद्रुमेण, वदने सरस्वतीप्रसादेन, बले मरुतेन.....

यत्र च राजनि राजनीतिचतुरे चतुरर्णवमेखलमेदिनीमण्डलमखण्डं शासति, विवादः षड्दर्शनेषु, सर्वमिथ्यावादो वेदान्तेषु, भेदवादस्तर्केषु, अविद्याप्राधान्यं पूर्वमीमांसायां, स्फोटाविर्भावो व्याकरणेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, महापातकोपपातकश्रवणं धर्मशास्त्रेषु, नयनाश्रूणि हरिकथाश्रवणेषु.....

अपि च मदन इव नागरीभिः, तपन इव तपस्विभिः, दहन इव मनस्विभिः, शमन इव शत्रुभिः, पवन इव पथिकैः, स्वजन इव सुहृज्जनैः....

इसी प्रकार इस उल्लास में खानखाना के घोड़े के वर्णन का एक विस्तृत प्रसङ्ग आया है। इस उल्लास के अन्तिम आठ पद्य कवित्व की दृष्टि से बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं, इनमें से एक को हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं —

कलिः कृतयुगायते सुरपदायते मेदिनी
सहस्रकिरणायते भुजयुगप्रतापोदयः ।
यशो हिमकरायते गुणगणोऽपि तारायते
सहस्रनयनायते नृपनवाब वीराग्रणीः ।।

प्रस्तुत चम्पू-काव्य का अन्तिम उल्लास खानखाना-वर्णन परक इस पद्य से प्रारम्भ होता है —

विद्वन्मण्डलकल्पपादपवनं विद्योति वाग्देवता-
सङ्केतायतनं नितान्तकमलालीलाविलासायितम् ।
सर्वोर्वीपतिचक्रभाग्यसदनं भूमण्डलीमण्डनं
कीर्तेः केलिनिकेतनं विजयते श्रीखानखानानृपः ।।

चम्पूकार श्री रुद्रकवि :

प्रस्तुत चरितकाव्य के प्रणेता हैं रुद्रकवि । संस्कृत-साहित्य की इतिहास-परम्परा रुद्रकवि को 'राष्ट्रौढ़वंशमहाकाव्यम्' के रचयिता के रूप में जानती है, जो कि २० सर्गों का एक विपुलकाय महाकाव्य है और राठौर-वंश के नारायण शाह तथा प्रताप शाह की आज्ञा के अनुसार रचा गया था । रुद्रकवि इन्हीं दोनों राजाओं; नारायण शाह और प्रताप शाह के आश्रित कवि थे और 'राष्ट्रौढ़वंशमहाकाव्यम्' की रचना उन्होंने ईसवी सन् १५९६ में शालामयूराद्रि में की थी । इस महाकाव्य के सर्ग-२० एवं पद्य संख्या ९७ के अनुसार रुद्रकवि अनन्त के पुत्र तथा केशव के पौत्र थे । अपने उद्भट पाण्डित्य तथा अद्भुत कवित्व-शक्ति के कारण आप नारायण शाह और प्रताप शाह के सभा-पण्डित पद पर नियुक्त थे ।[१]

श्री रुद्रकवि का ऐतिहासिक जीवन-परिचय अथवा उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का कोई प्रामाणिक विवरण आज उपलब्ध नहीं होता । उपर्युक्त पद्य से केवल इतना ही ज्ञात हो पाता है कि वे केशव के पौत्र और अनन्त के पुत्र थे किन्तु वे कहाँ के निवासी थे और प्रताप या नारायण शाह से उनका सम्बन्ध कैसे हुआ इत्यादि प्रश्नों पर कोई प्रकाश 'नवाबखानखानाचरितम्' अथवा 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्' से नहीं पड़ता है । हाँ पूर्वोक्त महाकाव्य; जो कि बीस सर्गों में समाप्त होता है, -के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर श्री रुद्रकवि द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित पद्य के तीसरे चरण के प्रथमार्द्ध से यह अवश्य ज्ञात हो जाता है कि रुद्रकवि दक्षिण के ही रहने वाले थे । किन्तु दक्षिण में भी उनकी जन्मभूमि कहाँ थी इसका कोई अता पता नहीं —

१. **आसीत्कोऽपि महीमहेन्द्र-मुकुटालङ्कार-हीरावली-**
तेजःपुञ्ज-नितान्त-रञ्जितपदः श्रीकेशवाख्यो बुधः ।
विद्वन्मण्डलमण्डनं समभवत्तस्मादनन्ताभिधः
तत्पुत्रो जगदम्बिकांघ्रिकमल - द्वंद्वार्चनप्राप्तधीः ।।
.....पण्डितमण्डलाम्बुजरविः श्रीरुद्रनामा कविः ।।

श्रीमद्बागुलभूमिपालतिलकश्रीशाहनारायण-
स्फूर्जत्कीर्तिचरित्रचित्रितपदे राष्ट्रौढवंशाभिधे ।
भव्ये दक्षिणदिग्भवेन कविना रुद्रेण सृष्टे महा-
काव्येऽस्मिन्कृतवैरिवीरविजयः सर्गस्तु विंशोऽगमत् ।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य, २०/१०१)

डॉ. करंबेलकर ने रुद्रकवि के पूर्वजों तथा पूर्व-पुरुषों के सन्दर्भ में एक संक्षिप्त विवरण अपने लेख की पादटिप्पणी (पृ. २८९-२९०) में प्रस्तुत किया है और उसके अनुसार श्री रुद्रकवि के पूर्वजों में ही सूर्य पण्डित या सूर्य दैवज्ञ भी थे। पार्थनगर; जो कि गोदावरी के उत्तरी तीर पर विद्यमान था -के रहने वाले सूर्यपण्डित या सूर्य दैवज्ञ, श्री ज्ञानराज के पुत्र और अनेकानेक ग्रन्थों के कर्ता के रूप में संस्कृत साहित्य में प्रख्यात हैं। उनका 'प्रबोधसुधाकर' नामक वेदान्त-ग्रन्थ जो कि बीस-अध्यायों में निबद्ध छन्दोबद्ध रचना है, गीता पर 'परमार्थप्रपा' नामक टीका, 'रामकृष्णविलोमकाव्यम्' जो कि यमक और श्लेष-काव्य का अप्रतिम उदाहरण है और 'कूपिका' उनके रचना-संसार के कतिपय श्रेष्ठ मुक्तामणि हैं। इनके अलावा एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल की हस्तलिखित ग्रन्थ सूची (भाग-७, पृ. ३३३, रक्षित सं. ५४१८) में दैवज्ञ पण्डित सूर्य के नाम से एक 'नृसिंहचम्पू' नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इस नृसिंहचम्पू नामक ग्रन्थ का प्रकाशन भी हो चुका है जिसकी एक लीथोग्राफ प्रति जो कि ई. सन् १८७७ में काशी संस्कृत मुद्रा यन्त्रालय से मुद्रित है; प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के पास सुरक्षित है। इन सूर्यदैवज्ञ का समय ई. सन् १४००-१४५० के लगभग है। किन्तु श्री रुद्रकवि के, सूर्यदैवज्ञ के वंश में होने सम्बन्धित कोई प्रामाणिक साक्ष्य हमारे पास नहीं है। स्वयं रुद्रकवि ने भी अपनी किसी रचना में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि वे सूर्यदैवज्ञ के वंशज हैं।

कवि के जन्म-स्थान के विषय में भी प्रामाणिक साक्ष्य अनुपलब्ध हैं किन्तु अन्तःसाक्ष्यों से इतना स्पष्ट है कि श्री रुद्रकवि बागुलान (मुल्हेर) के आसपास के ही निवासी रहे होंगे जो कि वर्तमान में भी एक गांव के रूप में अस्तित्त्व में है और आधुनिक नासिक-जिले (महाराष्ट्र) के अन्तर्गत आता है। इस विषय में अभी और भी अनुसन्धान की आवश्यकता है।

अपनी विद्वत्ता, प्रौढ और अद्भुत पाण्डित्य के कारण ही श्री रुद्रकवि तत्कालीन मुल्हेर-राज्य के शासक नारायण शाह के संरक्षण में आये और नारायण शाह के बाद उनके उत्तराधिकारी व पुत्र प्रताप शाह के दरबार में भी उन्होंने

सम्मान, यश और प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनमें भी नारायण शाह के संरक्षण में रुद्रकवि ने अधिक दिन नहीं बिताये इस तथ्य के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं। प्रथम तो राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य में नारायण शाह की चर्चा के बाद पुनः अपने किसी ग्रन्थ में कवि के द्वारा उनकी चर्चा नहीं की गई है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार; जिनका विवरण हम आगे प्रस्तुत करेंगे -मुल्हेर-राज्य के शासक नारायण शाह के समय से ही मुल्हेर या बागुलान जो कि निश्चय ही एक छोटा सा राज्य था, का सम्बन्ध मुगल-शासक अकबर से हो चुका था और अकबर से सन्धि कर उसी के अधीन नारायण शाह ने अपने राज्य को सुरक्षित रखा था। इनमें प्रताप शाह का सम्बन्ध मुगल-बादशाह जहाँगीर के साथ और भी अच्छा था, जैसा कि जहाँगीर ने स्वयं अपनी आत्मकथा (तुजुक-ए-जहाँगीरी) में इसे स्वीकार करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि उसने प्रताप शाह को तीन अंगूठियां, याकूत, हीरा और लाल; उपहार-स्वरूप दिए थे। इस बात के अन्य साक्ष्य भी उपलब्ध होते हैं, यथा - प्रथम तो स्वयं 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' में; जो कि नारायण शाह की आज्ञा से लिखा गया था, -जहाँगीर की चर्चा बहुत ही कम है जबकि 'खानखानाचरितम्' के प्रत्येक उल्लास की समाप्ति पर यह सूचित किया गया है कि यह ग्रन्थ प्रताप शाह की आज्ञा से ही प्रणीत हुआ था, यथा : **१. महाराजप्रतापशाहोद्योजित....**, **२. श्रीमत्प्रताप-शाहोद्योजित....** तथा **३. शालामयूराद्रिपुरन्दरप्रतापशाहोद्योजित.....** आदि। इसी प्रकार नवाबखानखानाचरितम् की रचना के बाद जहाँगीर से मित्रता के कारण ही प्रताप शाह के आदेश पर रुद्रकवि ने 'जहाँगीरचरितग्' की रचना भी आरम्भ की थी जो कि कालान्तर में पूर्णता को प्राप्त हुई। उपर्युक्त प्रसङ्ग में यह ध्यातव्य है कि नारायण शाह एवं प्रताप शाह के सम्बन्ध चूंकि अकबर के समय से ही मुगल-साम्राज्य से घनिष्ट व मैत्रीपूर्ण थे अतः मुगल-सम्राटों के जीवन-चरित को संस्कृत में पद्य-बद्ध करने की प्रेरणा रुद्रकवि के लिए किसी आश्चर्य की बात न थी क्योंकि एक तो उसके आश्रय-दाताओं के सम्बन्ध मुगल-दरबार से अच्छे थे दूसरे अकबर तथा उनके सुयोग्य अमात्य रहीम के साथ ही स्वयं जहाँगीर भी संस्कृत के उदार संरक्षक व इस भाषा व साहित्य के महान् प्रेमी सिद्ध हुए थे।

विगत शताब्दी के पाँचवें दशक के बाद से संस्कृत-साहित्य के इतिहास में श्री रुद्रकवि को केवल राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्, नवाबखानखानाचरितम् या फिर जहाँगीरचरितम् के रचयिता के रूप में ही मात्र प्रसिद्धि नहीं मिली वरन् कालान्तर में उनके रचना-संसार में कतिपय अन्य ग्रन्थ-रत्नों को भी सम्मिलित किया गया। रुद्रकवि की ये कृतियाँ हस्तलेखों के रूप में भारत और भारतेतर देशों के विभिन्न

हस्तलेख संग्रहालयों में सुरक्षित पड़ी थीं। सौभाग्य से यतीन्द्र विमल चौधरी के स्तुत्य प्रयासों और उनकी शोधरुचि के कारण इनका प्रकाशन सम्भव हुआ। करंबेलकर के अनुसार रुद्रकवि की प्रथम रचना 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्, दूसरी रचना 'नवाबखानखानाचरितम्, तथा तीसरी रचना 'जहाँगीरचरितम्' थी। किन्तु यतीन्द्र विमल चौधरी ने उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त रुद्रकवि के निम्नलिखित कतिपय अन्य ग्रन्थों[१] की सूचना अपनी पुस्तक में दी है : **१. दानशाहचरितम्, २. कीर्ति-समुल्लास** और अपनी पुस्तक के अन्त में इन पाण्डुलिपियों का परिचय भी प्रस्तुत किया है, जिसे हम अपने पाठकों की सुविधा हेतु यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं —

Danshah-Charita; by Rudra Kavi. Only Manuscript available from India office Library, no. Buhler 70a {7089}. This work is nothing but a eulogy of Akbar Shah's son Danial.

Kirti-Smullas: by Rudra Kavi. Only Manuscript available from India office Library, no. 7303, Buhler 70c. This work is a panegyric of Sultan Khurram, son of Jahangir, written by the poet at the instance of Maharaja Pratapa of Mayura-shail.[२]

खानखानाचरितम् का रचना-उद्देश्य :

नवाबखानखानाचरितम् के परिचय प्रस्तोता श्री करंबेलकर यद्यपि प्राथमिक दृष्ट्या इस ग्रन्थ को किसी ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध नहीं मानते तथापि लेख के अन्त में उन्होंने कतिपय ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर अहमदनगर युद्ध, बरार-युद्ध आदि में प्रताप शाह द्वारा मुगल-साम्राज्य से सहायता प्राप्त करना तथा इसी व्याज से खानखाना की प्रशंसा' आदि को; इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य स्वीकार किया है। करंबेलकर के अनुसार प्रताप शाह, खानखाना से परिचित था और उसे स्वयं खानखाना की सहायता एवं उनका संरक्षण प्राप्त था। इस प्रसङ्ग में करंबेलकर के उद्धरण विवेच्य हैं —

"इस ग्रन्थ (नवाबखानखानाचरितम्) का वास्तविक उद्देश्य प्रताप शाह के लिए खानखाना का सहयोग और सैन्य-सहायता प्राप्त करना था किन्तु ग्रन्थकार

---

१. Rudra Kavi has to his cradit, besides the Danshah Caritam, Kirti-Samullas, Nawab Khankhana Caritam and Jahangir Caritam.

२. Contributions of Muslims to Sanskrit learning, part-2, p.-167. चौधरी जी ने यहीं यह भी सूचित किया है कि रुद्रकवि की समस्त उपर्युक्त रचनाएं उन्होंने प्राच्यवाणी कलकत्ते से अपने ही संपादन में प्रकाशित की हैं।

ने एक अपूर्व कवित्व-शक्ति के द्वारा इस लक्ष्य का गोपन कर, सुन्दर चम्पूकाव्य की रचना की अर्थात् उक्त उद्देश्य को काव्य के आवरण में प्रस्तुत किया। साहित्यिक दृष्टि से यह एक सुन्दर कृति तथा प्रौढ़ काव्य है।''

ऐतिहासिक महत्त्व :

किन्तु करंबेलकर साहब की उपर्युक्त प्राक्कल्पना मात्र कल्पना नहीं अपितु ग्रन्थ-रचना के प्रमुख प्रयोजनों में से अन्यतम है और यदि 'खानखानाचरितम्' के समस्त विवरणों को ऐतिहासिक सन्दर्भों के समक्ष रखकर पढ़ा जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रस्तुत चरितकाव्य में इसका रचनाकार निश्चय ही किसी विकट राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने की पुरजोर कोशिश कर रहा है। ऐतिहासिक सन्दर्भों एवं उनके साक्ष्यों की सहायता से हम ऊपर बता आये हैं कि रुद्रकवि, शालामयूराद्रि अथवा मुल्हेर जिसे बागुलान भी कहा जाता है; के शासक नारायण शाह और उनके बाद प्रताप शाह के राजकवि या प्रधान पण्डित थे। इस कारण यदि इस कवि को बिना किसी प्रयोजन अथवा बिना किसी विकट राजनैतिक समस्या के ही किसी चरित-काव्य की रचना करनी थी तो उत्तम यह होता कि वह 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' की तरह ही नारायण शाह और प्रताप शाह में से किसी एक या दोनों के ही जीवन-चरित को आधार बनाकर चम्पू-काव्य या पुनः किसी महाकाव्य की रचना करता। उसे खानखाना अब्दुर्रहीम खां रहीम के जीवन-चरित को विषय बनाने की क्या आवश्यकता थी ? न तो वह उनसे संरक्षित ही था और ना ही उनके सम्पर्क में; इसके बावजूद वह इस प्रकार के चरित-प्रधान प्रबन्ध-काव्यों की रचना से विमुख नहीं होता अपितु उत्तरोत्तर मुगल-वंश के शासकों और उनके वंशजों की प्रशंसा में, उन्हीं के जीवन को आधार बनाकर चरित-काव्यों की रचना की ओर और भी तीव्र वेग से प्रवृत्त होता है। 'खानखानाचरितम्' के बाद जहाँगीर के जीवन को विषय बनाकर 'जहाँगीरचरितम्' की रचना, जहाँगीर के बाद ही उसके भाई और अकबर के पुत्र दानियाल के जीवन-चरित को आधार बनाकर 'दानशाहचरितम्' की रचना, जहाँगीर के पुत्र खुर्रम जिसे बाद में शहंशाह शाहजहाँ के नाम से इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त हुई; के जीवन को आधार बनाकर 'कीर्तिसमुल्लास' की रचना किसी ऐसे कवि द्वारा किया जाना जिसका उपर्युक्त राजाओं से किसी प्रकार का कोई सम्पर्क नहीं, यह विचार करने को बाध्य कर देता है कि इस प्रकार की चरित-प्रधान रचनाओं के पीछे कवि का निश्चय ही कोई न कोई बहुत बड़ा प्रयोजन रहा होगा।

यहीं दूसरा ध्यातव्य विन्दु यह भी है कि इनमें से किसी भी चरितात्मक प्रबन्ध-काव्य की रचना उस कवि ने अपनी इच्छा से नहीं अपितु अपने ही

आश्रयदाता प्रताप के आदेश से की । खानखानाचरितम्, जहाँगीरचरितम्, दानशाहचरित और कीर्तिसमुल्लास इन सभी ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में प्रताप शाह द्वारा इन ग्रन्थों को लिखवाने का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है । इससे भी यह सिद्ध है कि रुद्रकवि की इन रचनाओं के पीछे प्रताप शाह का निश्चित ही कोई न कोई बहुत बड़ा प्रयोजन निहित रहा होगा, जिसकी पूर्ति के लिए उसने अपने दरबारी कवि से एक के बाद एक मुगल बादशाहों और राजकुमारों के जीवन-चरित पर प्रबन्ध-काव्यों की रचना कराई ।

इस प्रसङ्ग में तीसरा ध्यातव्य विन्दु 'खानखानाचरितम्' का प्रतिपाद्य या वर्ण्य-विषय है और वह है रहीम की शूरता, वीरता, पराक्रम, तेज, पौरुष, समग्र भारत पर उनका आधिपत्य, उनका विलक्षण वैदुष्य, अद्भुत दानशीलता, मुगल दरबार में उनके उनके सर्वोच्च सम्मान का प्रदर्शन एवं उनके अन्यान्य व्यक्तिगत गुणों का वर्णन । रुद्रकवि ने खानखाना के वर्णन में अपनी विलक्षण प्रतिभा का जो उपयोग किया है और जिस प्रकार अपनी प्रातिभ-कवित्वशक्ति का व्यय किया है वह निश्चय ही इस प्रसङ्ग में विचारणीय है कि आख़िर उन्हें ऐसे वर्णन की क्या आवश्यकता थी ? वह भी ऐसे व्यक्ति के जीवन-चरित को लिखने की जिसकी सुविदित कीर्ति, वैदुष्य और दानशील स्वभाव की कथाओं को छोड़; उन्होंने कभी रहीम का साक्षात्कार तक नहीं किया था । इन सभी बातों से यह सिद्ध होता है कि रुद्रकवि ने अपने आश्रयदाता प्रताप शाह की आज्ञा से किसी विकट राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने के निमित्त ही इस या इन जैसे अन्य ग्रन्थों का निर्माण किया होगा ।

अब प्रश्न यह है कि वह राजनैतिक गुत्थी थी कैसी और किस प्रकार की । प्रस्तुत चरित-काव्य में इससे सम्बन्धित कोई चर्चा नहीं की गई है और ना ही तत्सम्बन्धी कोई विवरण ही प्रस्तुत किया गया है । किन्तु अन्य ऐतिहासिक स्रोत इस विषय पर कुछ संक्षेप में प्रकाश डालते हैं और इन्हें समझने के लिये हमें तत्कालीन भारत की राजनैतिक-परिस्थितियों, मुगल-दरबार के अन्य राज्यों एवं राजाओं पर आधिपत्य, उनके साथ दरबार के सम्बन्ध, बागुलान या मुल्हेर राज्य का मुगल-दरबार के साथ सम्बन्ध, नारायण शाह एवं प्रताप शाह का परिचय एवं उनका अकबर एवं जहाँगीर से सम्बन्ध, राजनैतिक-गतिविधियां आदि बातों का प्रामाणिक ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा 'खानखानाचरितम्' की उस राजनैतिक समस्या से हम परिचित नहीं हो सकते । विभिन्न ऐतिहासिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों से प्रमाणित कतिपय ऐसे ही अत्यावश्यक विन्दुओं को निम्नवत् पढ़ा जा सकता है —

बागुलान (मुल्हेर) राज्य :

यह दक्षिण भारत के नासिक जिले में स्थित एक अत्यन्त प्राचीन राज्य है। नासिक गजेटियर के अनुसार मयूरगिरि का दूसरा विकृत नाम मुल्हेर है। महाभारत काल में मयूरगिरि के किले; राजा मयूरध्वज और ताम्रध्वज के अधिकार में थे जिससे ज्ञात होता है कि मुल्हेर में अत्यन्त प्राचीन काल से ही राजव्यस्था प्रतिष्ठित थी।[१] सताना में मुल्हेर किला मुल्हेर गांव से दो मील दूर एक पहाड़ पर २००० फुट की ऊंचाई पर है। यह मालेगांव से ४०० मील दूर उत्तर पश्चिम में मुसाम घाटी के मुख पर अवस्थित है। सालेर किला बारह मील और आगे पश्चिम की ओर है।[२] अन्यान्य ऐतिहासिक एवं कोश-ग्रन्थों में बागलान के सन्दर्भ में विवरण ढूंढ़ते समय मुझे 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, भाग-१८ में इससे सम्बन्धित कुछ संक्षिप्त विवरण प्राप्त हुआ था किन्तु उतने मात्र से हमारा कोई हित नहीं होता, हाँ उसका यह विवरण कि **प्राचीन काळीं हा प्रदेश राठोर घराण्याच्या ताब्यांत होता** अर्थात् 'प्राचीन काल में इस प्रदेश में राठौर-वंश का राज्य था' अवश्य ही नारायण शाह एवं प्रताप शाह की ओर कुछ सङ्केत करता है।[३] अन्य कोश-ग्रन्थों में जिसे मैं सबसे प्रामाणिक और विश्वसनीय मानता हूँ, सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव के 'मध्ययुगीन चरित्रकोश' में बागुलान, मुल्हेर, शाला-मयूर-गिरि, नारायण शाह, तथा प्रताप शाह के सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नहीं हो सका। इस प्रसङ्ग में नगेन्द्र नाथ बसु के 'हिन्दी विश्वकोश, भाग-१५ में जो बागुलान से सम्बन्धित विवरण दिया गया है वह अवश्य ध्यातव्य है[४] —

"**बागुलान :** बंबई के नासिक जिलान्तर्गत एक प्राचीन राज्य। इसके पूर्व में चन्दोर, पश्चिम में सूरत और समुद्र, उत्तर में सुलतानपुर तथा दक्षिण में नासिक और त्रिम्बक है। पहले यह राज्य ३४ परगनों में विभक्त था। यहाँ के नौ दुर्गों में से शालहीर और मूलहीर नामक दो पहाड़ दुर्ग दुर्भेद्य थे। दाक्षिणात्य की चढ़ाई करते समय औरंगजेब ने इस राज्य पर दांत गड़ा रखा था। तदनुसार उन्होंने १६३७ ई. में एक दल सेना वहाँ भेजी। मूलहीरपति ने आत्मरक्षा का कोई उपाय

१. राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य की भूमिका में दलाल साहब ने इस तथ्य को स्थानीय लोकमत से सम्मत बताया है : According to a local tradition the fort was held, In the times of Pandavas by two brothers Mayuradhvaja and Tamradhvaja. Vide page. 18.

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, केशवस्मृति-अङ्क, वर्ष-५६, अङ्क ३-४, पृष्ठ-२८९.

३. विशेष विवरण हेतु देखिए : 'महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश, भाग-१८, पृष्ठ-६९.

४. हिन्दी विश्वकोश, संपादक - डॉ. नगेन्द्र नाथ बसु, भाग-१५, पृष्ठ-२८९.

न देख, दुर्ग की ताली मुगलों के पास भेज दी। १८१४ ई. की तीसरी जुलाई को बागुलान राज्य खानदेश में मिलाया गया। इसके बाद यह नासिक जिले के अन्तर्भुक्त हुआ।''

मध्यकालीन प्रख्यात इतिहासविद् सर यदुनाथ सरकार ने अपनी एक पुस्तक History of Aourngjeb में 'बागुलान' पर विशेष टिप्पणी दी है और उनकी यह टिप्पणी; बहुत अंशों में 'आइन-ए-अकबरी' से ली हुई है। बागुलान' पर यह विशेष विवरण प्रस्तुत करता है[१] —

Between Khandesh and the Surat coast liese the district of Baglana. It is a small tract, stretching north and south for about 160 miles from the Tapti river to the 'Ghatmatha' hills of the Nasik district, and 100 miles east and weast across the Ghats. It contained only a thausand villages and nine forts, but no town of note. Small as was its area, its warted valleys and hill-slopes smiled with cornfieelds and gardens; all kinds of fruits grew here and many of them were famous throughout India for their excellence. The climate except in the rainy season, is cool and bracing. The state was further enriched by the fact that the main line of traffic between the Deccan and Gujrat had run through it for ages.

स्वयं जहाँगीर[२] इसके भौगोलिक स्थिति को निरूपित करते हुए अपनी आत्मकथा में कहता है —

''बगलाना प्रान्त गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण के बीच में स्थित है। इसमें दो दुर्ग हैं - साल्हेर तथा मुल्हेर। मुल्हेर बसे हुए प्रान्त के मध्य में है इसीलिए यह उसी में रहता है। बगलाने में सुंदर सोते तथा नदियाँ हैं। यहाँ के आम बड़े मीठे तथा बड़े-बड़े होते हैं। ये वर्ष में नौ महीने तक मिलते हैं, फल लगने के आरम्भ से अन्त तक। यहाँ अंगूर भी बहुत होते हैं पर अच्छी प्रकार के नहीं होते।''

जहाँगीर के उपर्युक्त विवरण में सूचित किया गया है कि मुल्हेर में दो किले थे साल्हेर का किला तथा मुल्हेर का किला किन्तु आइन-ए-अकबरी में बताया गया है कि बागुलान; पहाड़ और घनी आबादी वाला प्रदेश है। यहाँ सात किले थे जिनमें मुल्हेर और साल्हेर (मयूर और शाला) बहुत मजबूत थे। आगे हम बताएंगे कि इन्हीं किलों के कारण अकबर को बागुलान पर अधिकार करने में कई बाधाएं आईं।

१. History of Aurangjeb, by J. N. Sarkar, pp.23-25.

२. 'जहाँगीरनामा, बारहवां जलूसी वर्ष, पृष्ठ : ३७४-३७५.

बागुला-राठौरों का परिचय :

ऊपर हमने बागुलान का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ हम बागुलान-नरेशों का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत करते हैं जिनमें प्रस्तुत ग्रन्थ खानखानाचरितम् के प्रणेता रुद्रकवि के आश्रयदाताओं नारायण शाह एवं प्रताप शाह की गणना अत्यन्त सम्मान के साथ की जाती है। 'बागुलान' इस शब्द में बागुला एक स्वतंत्र मराठी पद है। इसके अर्थ एवं इसके देशवाची प्रयोग के कारण को दलाल साहब ने निम्नवत् प्रस्तुत किया है[१] —

The word Bagula in Marathi a fabulous animal of the cat-kind. Bagula Bove is still used in Marathi to frighten little children. It is stated in the present poem राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम् that Gopalchanera was called Bagula as his head was a wry so as to frighten people. The name Bagula seems to mean the country of the Bagulas.

ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं स्रोतों के अनुसार बागुलान के बागुला-राठौर उत्तर भारतीय कन्नौजिया राठौरों की ही एक शाखा के सदस्य थे जिनके गोत्र तथा प्रवर आदि समानरूप से एक थे। कन्नौजिया राठौरों की ही एक शाखा किसी समय दक्षिण-भारत में जाकर बस गई थी और धीरे-धीरे इन्होंने वहाँ अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। रुद्रकवि ने इन्हीं बागुला-राठौरों में एक परिवार का इतिहास अपने उपर्युक्त महाकाव्य में प्रस्तुत किया है जिसमें आगे चलकर नारायण शाह एवं उनके पुत्र प्रताप शाह का आगमन होता है और यही प्रस्तुत महाकाव्य के चरित-नायक भी होते हैं। बागुला राठौरों का एक संक्षिप्त विवरण दलाल साहब ने निम्नवत् प्रस्तुत किया है जिसे हम ऐतिहासिक महत्त्व के कारण प्रस्तुत कर देते हैं[२] —

The Bagulas a clan of the Rathods: The Bagulas of Mayurgiri, like the Rathods of northern India, claim themselves to have descenede from the Rathod kings of Kanauj. The gotra of the Rathods of Jodhpur and of the Bagulas too was the same viz., Gautam and there were also houses of Kanoujia Brahamanas on the Mulher fort. Rashtraudha is nothing but a sanskritized form of the word Rathod.

दलाल साहब की यह मान्यता अन्यान्य ऐतिहासिक स्रोतों से भी सिद्ध है और उसके अनुसार बागुला-राठौर उत्तर भारतीय कन्नौजिया-राठौरों की ही एक

१. Rashtraudha Vamsha Mahakavyam, Introduction, page-18.

२. Rashtraudha Vamsha Mahakavyam, Introduction, pp.13-14.

प्रधान शाखा थी जिसने कालान्तर में दक्षिण भारत में जाकर मुल्हेर एवं साल्हेर के आस-पास और धीरे-धीरे समग्र मयूरगिरि एवं शालागिरि पर्वत के आस-पास अपना राज्य स्थापित कर लिया था। प्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार की पुस्तक 'औरंगजेब' में बागुलान-राज्य एवं बागुला-राठौरों पर प्रसङ्ग-प्राप्त एक संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट विवरण उपलब्ध है[१] —

A Rathor family, claiming descent from the royal house of ancient Kanauj, has ruled this land in unbroken succession for fourteen centuries. The Rajas styled themselves Shah and used the distinctive title of Baharji. They coined money in their own names and enjoyed great power from the advantageous situation of their country and the impregnable strength of their hill-forts, two of which, Saler and Mulher were renown throughout India as unconquerable.

मुगलकालीन भारतीय इतिहास में शालामयूराद्रि पर; जिसे मुल्हेर या बागुलान कहा जा रहा है; अकबर और जहाँगीर के शासन काल में नारायण शाह और उसके बाद उसके पुत्र प्रताप शाह का राज्य था।

नारायण शाह एवं प्रताप शाह :

नारायण शाह एवं उनके पुत्र प्रताप शाह; उपर्युक्त इसी बागुला-राठौर वंश में उत्पन्न हुए थे। इस वंश से सम्बन्धित प्रामाणिक विवरण एवं उसका इतिहास रुद्रकवि ने अपने राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य में विस्तार से प्रस्तुत किया है और इसके अनुसार ये वंश कन्नौज के राठौर-वंश के ही वंशज बतलाये गए हैं। बागुलान के बागुला लोग आज भी अपने को कन्नौज के राठौर-वंश के ही वंशज बतलाते हैं। राठौर-वंश के भैरवसेन के दो पुत्रों में सबसे बड़े वीरमसेन और उससे छोटे नारायण शाह थे। जब वीरसेन या वीरमसेन; मयूरगिरि पर शासन कर रहे थे तब नारायण की ख्याति सुनकर मुगल-बादशाह ने वीरसेन को दिल्ली बुलाकर उसका सम्मान किया और इसी कारण वीरसेन की रानी दुर्गावती ने दोनों भाइयों में द्वेष-भावना का बीज बो दिया। धीरे-धीरे यह पारिवारिक कलह भयङ्कर रूप लेने लगा और कालान्तर में नारायण शाह को मयूरगिरि छोड़ देने की आज्ञा हुई। नारायण शाह ने मयूरगिरि को छोड़ दिया और शालागिरि पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सारे गढ़ नारायण शाह के अधीन हो गए। एक

१. History of Aurangjeb, by J. N. Sarkar, pp. 23-25. बागुला-राठौरों के विवरण हेतु 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका, केशव-स्मृति-अङ्क को भी देखें।

कुशल राजा के लिए वाञ्छित समस्त गुणों से सम्पन्न होने के कारण नारायण शाह धीरे-धीरे प्रजा में भी अत्यन्त लोकप्रिय होते गये और एक समय ऐसा भी आया जब नारायण शाह ने शालामयूर पर अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रताप को बिठाकर स्वयं मयूरगिरि पर अधिकार कर लिया। मयूरगिरि की जनता ने वीरसेन का पक्ष त्यागकर नारायण शाह की छत्रछाया ग्रहण की और उसे ही मयूरगिरि का भी राजा एवं अपना रक्षक घोषित कर दिया। इस प्रकार नारायण शाह शालागिरि एवं मयूरगिरि दोनों ही प्रान्तों के राजा हो गये। नारायण शाह, एक कुशल राजा एवं वीर योद्धा होने के साथ-साथ विद्वानों, गुणियों और साधुपुरुषों के उदार आश्रयदाता भी थे और इसी कारण उन्होंने रुद्रकवि की प्रतिभा, उनके पाण्डित्य और विलक्षण कवित्व-शक्ति को देखकर उन्हें अपने दरबार में सर्वोच्च स्थान देकर सम्मानित किया। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार नारायण शाह धर्म में भी प्रगाढ़ आस्था एवं भक्ति रखते थे। उन्होंने अनेकानेक तीर्थों की यात्रा की थी और ब्राह्मणों को दान दिया था। नारायण शाह के स्थापित कितने ही मन्दिर और देवालय आज भी भग्न एवं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उपलब्ध होते हैं। कहा जाता है कि नारायण शाह ने तुलादान भी किया था जिसका प्रचलन केवल दिल्ली के दरबार में था और किसी अन्य राजा के लिए इस प्रकार का तुलादान निषिद्ध था। इसी प्रकार उन्होंने अग्निष्टोम यज्ञ भी किया था।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार नारायण शाह का सम्बन्ध दिल्ली के बादशाहों के साथ मैत्रीपूर्ण था और आवश्यकता के अनुसार वे मुगल-बादशाहों की सहायता करते रहते थे जिसके कारण उनका राज्य; दक्षिण के राज्यों में अक्षुण्ण बना रहा। 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्' जो कि रुद्रकवि की प्रथम रचना है और नारायण शाह के आदेश या उनके प्रीत्यर्थ ही लिखा गया था -के प्रकाशित संस्करण की भूमिका में दलाल साहब ने नारायण शाह द्वारा सम्राट् अकबर को सैन्य सहायता उपलब्ध कराने की एक ऐतिहासिक घटना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि जब तक नारायण शाह जीवित रहे या शासन करते रहे मुगल-साम्राज्य की ओर से बागुलान पर कोई आक्रमण नहीं किया गया और दोनों ही राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। नीचे के विवरण में मिर्जा सरफुद्दीन हुसैन का सन्दर्भ इन मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के प्रसङ्ग में और भी ध्यातव्य है —

In 1573, when Gujrat was conquered by the emperor Akbar, Baharji of Baglan came with 3000 horse and paid respects to the emperor at Surat. He afterwards did good

service by handing over the emperor's rebel brother-in-law Mirja Sharfud-din Husain whom he seized on his way through Bagulan.[१]

किन्तु कालान्तर में नारायण शाह के बाद जब उनके पुत्र प्रताप शाह ने सिंहासन सम्भाला तब उसे मुगल-साम्राज्य के साथ कतिपय युद्ध करने पड़े थे जिनमें सबसे पहला युद्ध अकबर के साथ हुआ था। हमारे इतिहासकारों ने कुछ ऐसे प्रामाणिक साक्ष्यों को प्रस्तुत किया है जिससे यह विदित होता है कि मुगल-दरबार से सम्बन्ध स्थापित होने से पूर्व प्रताप शाह का अकबर के साथ एक भयङ्कर युद्ध हो चुका था। डॉ. करंबेलकर ने अपने लेख में मुल्हेर के किले में स्थित गणेश देवालय जो कि नारायण शाह के समय में ही सम्भवतः बनकर तैयार हुआ था; के पत्थर के खम्भे पर मराठी भाषा में शकाब्द १५३४ तदनुसार ई. सन् १६१२ में उत्कीर्ण एक शिलालेख के हवाले से यह सूचना दी है कि जब अकबर ने ई. सन् १५९९ में खानदेश को जीता था तब उसने बागुलान को भी जीतने की कोशिश की थी और इस कार्य में अकबर को प्रताप शाह के विरुद्ध सात वर्षों तक घेरा डालना पड़ा किन्तु प्रताप शाह अपराजित रहा और अन्त में अकबर को प्रताप शाह से सन्धि करनी पड़ी।[२] इस प्रसङ्ग में यह भी ध्यातव्य है कि यह युद्ध प्रताप शाह और अकबर के बीच लड़ा गया न कि अकबर और नारायण शाह के बीच। अतः यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होती कि निश्चय ही नारायण शाह के समय तक बागुलान के सम्बन्ध मुगल-दरबार से अच्छे रहे होंगे और प्रताप शाह के गद्दीनशीं होने तक उसके साथ अकबर के सम्बन्धों में कुछ अन्तर आया हो या अकबर ने अपनी नीति के अनुसार बागुलान पर पूर्ण स्वामित्व की आकांक्षा से प्रताप शाह के विरुद्ध चढ़ाई की हो और सात वर्षों तक घेरा डाले रखा हो।

समकालीन ऐतिहासिक साक्ष्यों; यथा - 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' (२०/९२) के अनुसार प्रताप शाह, नारायण शाह के चार पुत्रों में सबसे बड़ा था।[३] नारायण शाह जब मयूरगिरि पर चढ़ाई करने को चले तब उन्होंने शालागिरि की सत्ता की बागडोर प्रताप शाह के हाथों सौंप दी थी और कालान्तर में शालागिरि एवं मयूरगिरि दोनों की ही सत्ता प्रताप शाह के हाथों आ गई थी। पिता के समान प्रताप शाह भी एक महान् राजनीति-कुशल राजा सिद्ध हुआ और मुगल-दरबार से अपने सम्बन्धों

१. Rashtraudha Vamsha Mahakavyam, Introduction, page-18.

२. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, केशव-स्मृति-अङ्क, पृष्ठ-२९१.

३. **श्रीनारायणनृपतेर्जयन्ति पुत्राश्चत्वारः प्रथम इह प्रतापशाहः।**
तस्यान्वयक् स हरिहरचतुर्भुजाख्यः तत्पश्चात्तदवरजस्तु राजसिंहः।।

को मधुर बनाये रख बागुलान पर अखण्ड शासन करता रहा। किन्तु इन पिता-पुत्रों के शासन में अन्तर यह था कि पिता के शासन-काल में मुगल-बादशाहों का बहुत अधिक ध्यान बागुलान पर नहीं रहा या रहा भी तो पिता ने मुगल-बादशाहों से अच्छा तालमेल बिठाकर ही शासन किया और पुत्र के शासन काल; जबकि बागुलान एक सुव्यवस्थित, संगठित, शक्ति-सम्पन्न और विकासशील राज्य के रूप में उभर रहा था -में अखण्ड भारत पर एकच्छत्र साम्राज्य के स्वप्नद्रष्टा महान् मुगल सम्राट् अकबर बादशाह का ध्यान बागुलान की ओर आकृष्ट हुआ और अकबर ने अपने दक्षिण-भारत अभियान के समय जब वह खानदेश को जीत चुका तो बागुलान को भी जीतने या अपने अधिकार में करने के लिए इस पर भयङ्कर आक्रमण किया। निश्चय ही यह प्रताप शाह की अदम्य वीरता की अमर कीर्तिगाथा के रूप में सदा ही गाई जाने वाली एक ऐतिहासिक घटना मानी जायेगी कि उसने मुगल सम्राट् जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह गाजी जैसे भारत के एकच्छत्र सम्राट् को अपने ऊपर अधिकार या बागुलान को अपने वश में करने में सात वर्षों का लम्बा समय ले लिया और अन्ततः उसे बागुलान पर विजय नहीं प्राप्त करने दी और सन्धि के द्वारा ही वह या बागुलान, मुगल साम्राज्य का एक अङ्ग बन पाये। अकबर को ही नहीं, प्रताप शाह ने अपने बाहुबल और राजनैतिक अनुभवों के बल पर अन्यान्य दक्षिणी राजाओं को भी अपने राज्य पर अधिकार करने से विरत रखा। जैसा कि हम आगे विवरण प्रस्तुत करेंगे स्वयं जहाँगीर; प्रताप शाह के इस राजनीति-कौशल और अन्य राजाओं की सहायता प्राप्त कर अपने राज्य को सुरक्षित रखने की कुशलता का कायल था और उसने प्रताप शाह की इस योग्यता का, अपने संस्मरण में स्पष्ट शब्दों में उल्लेख भी किया है।

हम ऊपर बता आए हैं कि नारायण शाह के राज्य-काल तक बागुलान राज्य के सम्बन्ध मुगल-दरबार से अच्छे थे और इस काल तक किसी प्रकार का कोई मुगल-आक्रमण बागुलान पर नहीं किया गया था। किन्तु मुल्हेर के किले में स्थित गणेश देवालय के प्रस्तर अभिलेख एवं अन्यान्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि प्रताप शाह के समय अकबर ने ई. सन् १५९९ में खानदेश को जीतने के क्रम में बागुलान पर भी आक्रमण किया था और प्रताप शाह को जीतने हेतु उसने बागुलान पर सात वर्षों तक घेरा बनाये रखा किन्तु किले के अन्दर खाद्यान्न, शस्यपूर्ण भूमि जो कि खेती के अनुकूल थी एवं पानी के स्रोतों का अभाव नहीं था और दुर्ग के दुर्गम रास्तों के कारण उस पर दो व्यक्ति भी एक साथ चलकर पहुंच नहीं सकते थे सो अन्त में अकबर ने प्रताप शाह से सन्धि कर ली। यदि यह शिलालेख

सत्य है तो यह मानना पड़ेगा कि सन्धि-प्रस्ताव स्वयं अकबर ने रखे थे। किन्तु जहाँगीर अपने संस्मरण में इससे भिन्न तथ्य को प्रस्तुत करता है, उसके अनुसार[१] —

"शुक्रवार २४ वीं को बगलाना का जमींदार भेरजी आकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसका नाम प्रताप है और यहाँ के प्रत्येक जमींदार भेरजी कहे जाते हैं। इसके यहाँ पंद्रह सौ सवार के लगभग वेतनभोगी हैं और यह समय पड़ने पर तीन हजार सवार एकत्र कर सकता है। बगलाना प्रान्त गुजरात..... । गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण के शासकों के साथ व्यवहार रखने में कभी सतर्कता तथा दूरदर्शिता को हाथ से नहीं जाने देता। वह कभी किसी के यहाँ स्वयं नहीं गया और यदि कभी किसी ने उसके राज्य पर अधिकार करने को हाथ बढ़ाया तो यह दूसरों की सहायता से अपरिवर्तित बना रहा। जब विगत सम्राट् के काल में गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण उनके अधिकार में चला आया तब भेरजी बुर्हानपुर आया और उनका चरण चुंबन कर उनकी सेवा में भर्ती हो गया और उसे तीन हजारी मंसब मिला।"

जहाँगीर के उपर्युक्त संस्मरण में निम्नलिखित विन्दु ध्यातव्य हैं —

१. प्रथम तो वह प्रताप शाह को भेरजी कहकर सम्बोधित करता है और बागुलान के समस्त सामन्तों को वह भेरजी ही बताता है। भेरजी के विषय में हमें अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है सिवाय इसके कि दलाल साहब एवं इतिहासकार यदुनाथ सरकार भी इस शब्द का प्रयोग नारायण शाह और प्रताप शाह के लिए करते हैं सो सम्भव है राठौरों के लिए इस अभिधान का भी प्रयोग होता हो।

२. दूसरे वह प्रताप शाह को एक जमींदार के रूप में प्रस्तुत करता है जबकि प्रताप शाह शालागिरि और मयूरगिरि अर्थात् मुल्हेर (बागुलान) राज्य का एकमात्र राजा था। मुल्हेर पर उसकी सत्ता, पैतृक परम्परा से प्रमाणित है। फिर जहाँगीर का उसे जमींदार के रूप में सङ्केतित करने के पीछे क्या आशय हो सकता है ? सम्भव है समग्र भारत का एकच्छत्र सम्राट् जहाँगीर; ऐसे राजा-महाराजाओं को जमींदार की कोटि में ही रखता हो और अपने वैयक्तिक संस्मरण में उन्हें जमींदार कहकर ही पुकारता हो।

३. तीसरे जहाँगीर ने कहा है कि प्रताप शाह के यहाँ नियमित वेतनभोगी १५०० सवार उपस्थित रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर वह ३००० ऐसे ही सवारों को प्रस्तुत कर सकता है। सवार से यहाँ आशय उन योद्धाओं या सैनिकों से है जो घोड़े या हाथियों पर सवार होकर युद्ध किया करते थे। तो

१. देखिए : 'जहाँगीरनामा, अनु. बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ : ३७४-३७५.

क्या बागुलान जैसे विशालकाय राज्य; जिसमें सात किले हों और उनमें से दो किले ऐसे कि उन पर अधिकार करने हेतु मुगल-सम्राट् अकबर भी सात वर्षों की लम्बी अवधि की प्रतीक्षा करने को बाध्य हुआ और जिसकी अपराजेयता और विशालता की प्रशंसा अबुल फज़ल ने स्वयं अकबरनामे में की है, -उसके शासक के पास मात्र पन्द्रह सौ या तीन हजार सैनिक ही थे ? यहाँ भी हमें जहाँगीर के वर्णनों में कुछ विसङ्गतियाँ दिखाई देती हैं और प्रतीत होता है जहाँगीर ने स्वयं इनकी संख्या को या तो कम बताया है या स्वयं उसे यह नहीं पता होगा कि प्रताप शाह के पास सैनिकों की संख्या कितनी थी ।

४. चौथे, जहाँगीर के अनुसार प्रताप शाह गुजरात, खानदेश और दक्षिण के राजाओं के साथ व्यवहार रखने में कभी उदासीनता नहीं बरतता । इसका आशय यही है कि प्रताप शाह दक्षिण भारत पर किसी भी प्रकार के बाहरी आक्रमण के समय अन्य प्रदेशीय राजाओं की सहायता करता होगा और स्वयं भी ऐसे अवसरों पर उन राजाओं की सहायता प्राप्त करता होगा ।

५. जहाँगीर ने बताया है कि प्रताप शाह कभी किसी राजा के यहाँ नहीं गया । इसका क्या आशय हो सकता है ? यह कि वह कभी किसी राजा के पास सहायता मांगने नहीं गया या यह कि अन्य किसी भी राजा या राज्य के ऊपर उसने अपनी ओर से आक्रमण नहीं किया । इसका उत्तर जहाँगीर के अगले वाक्य में निहित है 'और यदि कभी किसी ने उसके राज्य पर अधिकार करने को हाथ बढ़ाया तो यह दूसरों की सहायता से अपरिवर्तित बना रहा ।' अर्थात् प्रताप शाह अपनी ओर से किसी भी राज्य पर आक्रमण नहीं करता था और दूसरों द्वारा आक्रमण करते समय यह अन्य दक्षिणी राजाओं की सहायता से उन आक्रमणों को कुचल देता था । यह प्रताप शाह के राजदर्शन और कुशल राजवेत्ता-व्यक्तित्व का साक्षात् निदर्शक है और यही कारण है कि अन्य दक्षिणी राजे भी बाहरी आक्रमणों के समय प्रताप शाह की सहायता करने को उद्यत रहते होंगे । इसी से यह भी प्रमाणित है कि खानदेश पर आक्रमण के समय भी प्रताप शाह ने मुल्हेर पर अकबर को अधिकार नहीं प्राप्त करने दिया और अन्ततोगत्वा अकबर को प्रताप शाह से सन्धि करनी पड़ी ।

६. जहाँगीर के संस्मरण का अन्तिम वाक्य यहाँ सबसे विशेष महत्त्व का एवं ध्यान देने योग्य है । उसके अनुसार अकबर जब खानदेश को जीत चुका तो स्वयं प्रताप शाह बुर्हानपुर जाकर उसकी सेवा में उपस्थित होता है । यहाँ चरण 'चुम्बन कर' यह वाक्य इस प्रसङ्ग में और भी चिन्त्य है । गंणेश-देवालय का प्रस्तर अभिलेख; जो कि प्रताप शाह का समकालीन ही नहीं

अकबर के बागुलान आक्रमण के मात्र तेरह वर्षों के बाद ही सम्भवतः मन्दिर में लगाया गया; - बताता है कि सात वर्षों के घेरे के बाद भी अकबर उस पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सका तो उसने प्रताप शाह से सन्धि कर ली । और जहाँगीर का वर्णन आप पढ़ ही रहे हैं । ये दोनों ही विवरण समकाल में सत्य नहीं हो सकते । या तो अकबर ने बागुलान पर अधिकार कर लिया अतः प्रताप शाह को बुर्हानपुर जाकर उसकी सेवा में उपस्थित होना पड़ा हो और चरण चुम्बन करना पड़ा हो या अकबर ने स्वयं सन्धि का प्रस्ताव रखा हो । इनमें से एक ही तथ्य सत्य हो सकता है । हमारे पास प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव है और समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ भी इस ओर कुछ अधिक सङ्केत नहीं करते सो हम किसी निर्णय पर साधार पहुंचने का दम्भ नहीं भर सकते ।

किन्तु 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्' के विद्वान् भूमिका लेखक एवं सम्पादक दलाल साहब का एक विवरण हमें इस भ्रान्त ऐतिहासिक विवरण को समझने में और सत्य तथ्य से परिचित होने में सहायता प्रदान करता है । दलाल साहब के इस विवरण में स्पष्ट शब्दों में यह बताया गया है कि अकबर, किले के दुर्भेद्य होने एवं अन्यान्य भौगोलिक एवं सामरिक कारणों से लगातार सात वर्षों तक उस पर विजय नहीं पा सका था सो उसने अन्त में प्रताप शाह से सन्धि कर ली । दलाल साहब ने बड़े ही संक्षेप में प्रताप शाह और अकबर के बीच हुई सन्धि के स्वरूप को भी प्रस्तुत कर दिया है[१] —

Whem he conquered Khandesh in 1599, Akbar attempted to take Baglan. Pratap Shah; the chief, was besieged for seven years, but as there was abundance of Pastur, grain, and water, and as the passes were most strongly fortified and so narrow that not more than two men could March abreast, Akbar was in the end obliged to compound with the chief, giving Nijampur, Datia and Badur with several other villages. In return Pratap Shah agreed to take care of merchants passing through his territory, to presents to emperor, and to leave one of his sons as a pledge at Burhanpur. The chief was said to have always in readiness 4000 mares of excellent breed and one hundred elephants. He is also said to have coined Mahmudis.

१. Rashtraudha Vamsha Mahakavyam, Introduction, page-18.

दलाल साहब द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त विवरण के अनुसार अकबर और प्रताप शाह के बीच हुई सन्धि में अकबर द्वारा प्रताप शाह को निजामपुर, दतिया और बेदूर के साथ-साथ कतिपय गांवों पर आधिपत्य; इस शर्त पर देना स्वीकार किया गया कि इसके बदले प्रताप शाह मुगल-साम्राज्य के व्यापारिक मामलों यथा साम्राज्य के माल, धन इत्यादि के बागुलान से होकर गुजरते समय उनकी रक्षा करेगा। यहाँ हम बता दें कि बागुलान उस समय समग्र गुजरात, महाराष्ट्र सहित विदेश की ओर आने जाने वाले व्यापारियों के लिए उपयुक्त मार्ग था।[१] अकबर की दूसरी शर्त कि प्रताप शाह उसे वार्षिक कर भेजेगा। यद्यपि ऐतिहासिक साक्ष्यों का अभाव है और इस कारण हम इस कर का कोई स्वरूप नहीं बता सकते किन्तु अन्य मामलों की भांति प्रताप शाह पर थोपा गया यह कर भी वार्षिक ही होना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के कर एक वर्ष में कई बार नहीं लिये जाते थे किन्तु इस विषय में हम इदमित्थं कुछ भी नहीं कह सकते। उसकी तीसरी शर्त कि अकबर अपने पुत्रों में से किसी एक को बुर्हानपुर में जमानतदार के रूप में रखेगा जो उस प्रदेश की देख-रेख करेगा। अकबर की चौथी शर्त कि प्रताप शाह मुगल-साम्राज्य द्वारा मांगे जाने पर ४००० घोड़े एवं एक सौ हाथियों (की सशस्त्र सेना) को उपलब्ध कराएगा। उपर्युक्त सभी शर्तों को प्रताप शाह ने स्वीकार भी किया था।

अकबर द्वारा प्रताप शाह के साथ उपर्युक्त सन्धि-प्रस्ताव परक दलाल साहब का विवरण अन्यान्य ऐतिहासिक विवरणों से भी प्रमाणित है। प्रख्यात इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'औरंगजेब' में अकबर और प्रताप शाह के बीच हुई इस सन्धि को प्रस्तुत किया है। सरकार ने बागुला के राठौर-वंश के ऐतिहासिक विवरण; जिसे हम पहले दिखा आये हैं के आगे बागुला राज्य पर मुगलों के आक्रमण एवं अकबर द्वारा इस पर आक्रमण के समय प्रताप शाह के साथ किये गये उस सन्धि-प्रस्ताव को निम्नलिखित विवरण द्वारा प्रस्तुत किया है[२] -

But this position and these strongholds became the cause of their ruin when the Mughals conquered Guzerat and Khandesh and wasted to join hands across Baglana. An independent prince and master of mountain faltnesses could not be left in possession of the main route between these two

---

१. विशेष विवरण हेतु देखिए : 'महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश, भाग-१८, पृ.-६९ पर **'व दख्खन आणि गुजराथ यांच्यां दरम्यान चालणाच्या व्यापाराचा मार्ग या प्रदेशांतून असल्यामुळें याची भरभराट असे''** तथा आगे भी.

२. History of Aurangjeb, by J. N. Sarkar, pp. 27-29.

provinces of the empire. The great Akbar had invaded the district, but after a seven years fruitless siege he had compounded with the Rajah Pratap Shah, by ceding to him several villages as the price of protection to all merchants passing through his land. Bairam shah was now seated in the throne of Pratap.

इस प्रकार नारायण शाह के समय मुगल-साम्राज्य के साथ बागुलान के जो सम्बन्ध पारस्परिक मैत्री, सहायता एवं राजनैतिक परिदृश्यों के अनुकूल स्थापित हुए थे; प्रताप शाह के समय मुगल-दरबार के साथ यह सम्बन्ध आपसी सन्धि एवं उसकी शर्तों की बुनियाद पर स्थापित हुआ जो कि किसी भी मनस्वी, तेजस्वी, शूर-वीर और प्रतापी राजा के लिए उपकारी नहीं हुआ करता। निश्चय ही प्रताप शाह जैसे स्वाभिमानी, वीर और प्रतापी राजा; (जिसकी अस्पष्ट सूचना जहाँगीर के संस्मरण में 'वह कभी किसी के यहाँ स्वयं नहीं गया और यदि कभी किसी ने उसके राज्य पर अधिकार करने को हाथ बढ़ाया तो यह दूसरों की सहायता से अपरिवर्तित बना रहा') -के लिए भी यह सन्धि और उसकी बुनियाद पर टिका मुगल-दरबार के साथ उसका सम्बन्ध बहुत कुछ उपकारी नहीं सिद्ध हुआ। क्योंकि पिता के समय से चले आ रहे सम्बन्धों में एक दरार अकबर की सन्धि के कारण पड़ ही चुकी थी और बस एक चूक की आवश्यकता थी जिसके बाद दो राजाओं या शासकों के बीच की गई सन्धि और उसकी शर्तें ताक पर रख दी जाती हैं और जो बलवान् राजा या राज्य हुआ सन्धि तोड़ने वाले राज्य पर चढ़ बैठता है। ठीक ऐसा ही प्रताप शाह के साथ भी हुआ। ऐतिहासिक स्रोत या साक्ष्य इस ओर किसी भी प्रकार का सङ्केत नहीं करते कि प्रताप शाह ने उपर्युक्त या अन्यान्य सन्धि-प्रस्तावों में से किसका उल्लङ्घन किया किन्तु यह सुनिश्चित है कि प्रताप शाह से इस प्रकार की कोई न कोई चूक हुई अवश्य थी जिसके कारण अकबर के काल में तो नहीं किन्तु जहाँगीर के काल में उस पर एक भयङ्कर आक्रमण होने वाला था या वह आक्रमण हो चुका था। इसी आक्रमण को रोकने हेतु, अपने राज्यों और पारस्परिक मधुर एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का उदाहरण रख; प्रताप शाह ने अन्यान्य राजनैतिक एवं कूटनीतिक प्रयास तेज कर दिये थे। समस्या थी पिंता (नारायण शाह) के प्रति सम्मान की दृष्टि रखने वाला और स्वयं के साथ भी मधुर व्यवहार रखने वाला वह दूरदर्शी शासक अकबर; अब मुगल-साम्राज्य के राजसिंहासन पर नहीं था और जो उस पर विराजमान था वह स्वयं सेना लेकर बागुलान पर चढ़ बैठने को तैयार था। इस विषम परिस्थिति में प्रताप शाह अपने ऊपर होने वाले

उस आक्रमण को रोकने हेतु प्रार्थना करे भी तो किससे। ऐसी ही विषम परिस्थितियों में उसे खानखाना अब्दुर्रहीम की याद आती है जो कि पिता के समय से ही बागुलान का हितचिन्तक, मुगल-साम्राज्य में एक गौरवशाली व्यक्तित्व का धनी, किञ्च स्वयं जहाँगीर का अतालिक (संरक्षक) एवं आचार्य रह चुका था। इस प्रकार एक मात्र यही व्यक्ति प्रताप शाह की नजरों में ऐसा था जिसका प्रभाव जहाँगीर पर भी था और समग्र-मुगल साम्राज्य पर भी। इतना ही नहीं अपने पिता के समय से ही स्वयं प्रताप उसका एक अच्छा मित्र एवं परिचित भी था।

खानखाना अब्दुर्रहीम एवं प्रताप शाह :

खानखाना रहीम के साथ प्रताप शाह के सम्बन्ध कब, कैसे, कहाँ और किन परिस्थितियों में स्थापित हुए इसका कोई विवरण इतिहास की किसी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है। जबकि इतना सिद्ध है कि रहीम और प्रताप शाह के बीच प्रगाढ़ मैत्री थी और उसकी प्रगाढ़ता इतनी थी कि मुगल-साम्राज्य के सैन्य आक्रमण को रोकने या टालने हेतु प्रताप शाह मुगल-साम्राज्य के ही एक सम्मानित सेनापति और शासक; रहीम से सहायता मांगता है। यह घटना 'खानखानाचरितम्' की रचना तिथि के आस-पास की है अर्थात् ई. सन् १६०९ के आस-पास की। अतः निश्चय ही प्रताप और रहीम के बीच मित्रता या पारस्परिक सम्बन्ध इससे पूर्व ही स्थापित हो चुके होंगे। किन्तु इस विषय पर विस्तार से जानने को हमारे पास ऐतिहासिक संसाधनों की कमी है। 'नवाबखानखानाचरितम्' पर कार्य करते समय इन पंक्तियों के लेखक ने अन्यान्य स्रोतों एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों में रहीम एवं प्रताप शाह के इन पारस्परिक मैत्री के कारणों एवं उसके काल को प्रामाणिक तथ्यों के बल पर जानने एवं ढूंढ़ने के बहुत प्रयत्न किये किन्तु निश्चय ही इस प्रसङ्ग में समकालीन ऐतिहासिक संदर्भों की अनुपलब्धता और रहीम एवं प्रताप शाह की पारस्परिक मित्रता के प्रति आधुनिक इतिहासकारों की उपेक्षा के कारण किसी प्रकार की कोई सहायता प्राप्त न हो सकी। अन्ततोगत्वा हमें एकमात्र समकालीन ऐतिहासिक महाकाव्य की सहायता मिली जो कि स्वयं रुद्रकवि द्वारा प्रणीत था और जिसमें इस प्रकार के ऐतिहासिक विवरणों को स्फुट रूप में यत्र-तत्र प्रस्तुत कर दिया गया है। रुद्रकवि का लिखा 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्' रहीम एवं प्रताप शाह की पारस्परिक मित्रता एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की प्रामाणिक तिथि, स्थान तथा परिस्थितियों पर इतिहास सम्बद्ध संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं इस महाकाव्य से हम अकबर एवं प्रताप शाह के बीच हुई सन्धियों की कालान्तर में कार्यरूप में परिणति अर्थात् प्रताप शाह द्वारा उन सन्धियों के अनुकूल मुगल-दरबार को सैन्य

सहायता उपलब्ध कराने का विवरण भी प्राप्त करते हैं। इस दुर्लभ एवं प्रायः अज्ञात इतिहास के ऐतिहासिक महत्त्व के कारण इस विवरण को हम यहाँ विस्तार से प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य समझते हैं जिसमें उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ अकबर के आदेश पर मुराद द्वारा बुर्हाण निजाम शाह के ऊपर आक्रमण एवं उसमें बागुलान नरेश नारायण शाह की सैन्य सहायता किञ्च स्वयं प्रताप शाह द्वारा मुराद के साथ निजाम शाह से युद्ध की एक विस्मृतप्राय तथा अज्ञात ऐतिहासिक घटना का भी उल्लेख उद्धरणीय है।[१]

'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्' के बीसवें सर्ग में उपर्युक्त समस्त ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार अकबर के आदेश पर उसका पुत्र मुराद अहमद नगर के बुर्हाण निजाम शाह के ऊपर सैन्य आक्रमण हेतु दक्षिण पहुंचता है और इस युद्ध में सैन्य सहायता उपलब्ध कराने हेतु वह एक दूत को बागुलान के शासक नारायण शाह के पास भेजता है। दूत ने बागुलान एवं दिल्ली के दरबारों की पारस्परिक मैत्री एवं उनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की नींव पर मुराद के इस सैन्य अभियान में नारायण शाह से सहायता मांगी[२] (राष्ट्रौढवंश-

१. यहाँ इस प्रकार के विवरण को उपर्युक्त महाकाव्य के मात्र २० वें सर्ग से प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि इन तथ्यों का वर्णन इसी सर्ग में प्राप्य है किन्तु इस प्रकार के अन्यान्य समकालीन ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी के लिए समग्र महाकाव्य को अवश्य पढ़ना चाहिये।

२. **ततः शरत्कालमवाप्य दिल्लीपतेः सुतो दक्षिणदिग्जयाय ।**
जगाम सैन्यैः सह दूतमेकं प्रस्थाप्य नारायणपार्थिवाय ।।
कुबेरदिङ्नागतनूजदूतः समेत्य सद्यः शिखिराजधानीम् ।
कृतप्रणामो निहितोपहारः श्रीशाहनारायणमित्थमूचे ।।
महीपतेः शाहमुरादभूपः प्रतीक्ष्य कालं भवतोपदिङ्गटम् ।
निजामशाहक्षितिपालदेशं संप्रस्थितः संप्रति सैन्ययुक्तः ।।
तस्मिन्महाकर्मणि राजसूनुः सहायमाकांक्षति जित्वरं त्वां ।
सा दक्षिणा दिक्क्षितिपालमौलेस्तव प्रतापेन विना न जेया ।।
मत्स्वामिनः कार्यमकर्तमेतद्भवान्नहो नार्हति सर्वथैव ।
केषां न किं किं कृतमार्यवर्यैः सहायकार्यं भवदीयपूर्वैः ।।
विजित्य दिल्लीपतिपार्थिवाय दत्ते त्वया दक्षिणदिक्प्रदेशे ।
गास्यन्ति सर्वेऽपि यशस्तवोच्चैरतः परः को ननु दीर्घलाभः ।।
जयोदयो याम्यदिशः समन्तात्पीयूषपूरोपमकीर्तिलाभः ।
अकव्वरो मित्रमिति त्वदीयां सौभाग्यशोभां न सहोऽस्मि वक्तुम् ।।

महाकाव्य-२०/१-७) दूत के इस प्रकार के वचन सुनकर निजाम शाह के विरुद्ध अकबर की सहायता हेतु नारायण शाह तैयार होते हैं किन्तु अपने पुत्र प्रताप शाह की इस जिद के आगे कि —

"आपने अनेक युद्ध जीते हैं और अब यह युद्ध मुझे जीतने दें ! और यह ठीक भी नहीं होगा कि अनेकानेक युद्धों के जेता आप मुझ वीर पुत्र के होते हुए, युद्ध हेतु प्रस्थान करें !"[१]

नारायण शाह ने प्रताप को मुराद के साथ युद्ध में भेज दिया (२०/१४-१५) और प्रताप पूरी तैयारी के साथ (२०/१६-२१) 'धायिट'[२] नामक नगर में मुराद से जा मिला। मुराद शाह ने प्रताप से उसके पिता और एवं बागुलान राज्य का कुशल-क्षेम पूछा (२०/२३) और प्रताप को अपनी सैन्य सहायता में आया देख परम हर्ष प्रकट किया — **"महारथं त्वामधुना वयस्यं सम्प्राप्य सम्पूर्ण-मनोरथोऽस्मि"** (२०/२४)। यहाँ प्रताप ने बहुत ही विनम्रता से अपने पिता एवं उनके राज्य का कुशल-क्षेम मुगल-दरबार की कृपा व छत्रच्छाया से आश्रित और तदनुकूल सुन्दर बताकर (२०/२६-२७) मुराद को रणभूमि में शीघ्रतापूर्वक चलने को कहा (२०/२८) और मुराद ससैन्य उस नगर से शीघ्रतापूर्वक विदा हुआ (२०/२९)। मुराद की सेना ने वहाँ से प्रस्थान कर 'नन्दुरबार' नामक नगर में एक दिन विश्राम किया (२०/३०) और 'नेरपुर' में एक रात के लिए ठहरी (२०/३१)। खानखाना, शहबाज खान और मीर के साथ खानदेश से विदा होकर शीघ्रतापूर्वक (२०/३२) मार्ग में अपने अनेक मित्रों/सेनानियों को छोड़ 'पारवद' नामक स्थान पर मुराद और प्रताप की सेना से जा मिलते हैं —

श्रान्तान्महेभान् कियतस्तुरङ्गानुपेक्ष्य वर्त्मन्यपि पत्तिसङ्घान्।
अमी पुरे पारवदाभिधाने जवान्मिलन्ति स्म मुरादशाहम्॥

मुराद, खानखाना के विलम्ब से आने पर कुछ क्रोध प्रकट करता है किन्तु प्रताप शाह के समझाने-बुझाने से वह शान्त हो जाता है (२०/३५)। यहीं बुर्हाणपुर पर हमले की योजना बनती है जिसमें खानखाना ने मीर (?) को उस युद्ध का सेनापति बनाये जाने की मांग की तो मुराद ने बताया कि उसने इस युद्ध में प्रताप शाह को ही सेनापति का पदभार दिया है —

---

१. **ममापि नायं जननाथ धर्मो यद्विद्यमाने मयि यूनंसूनौ।**
सहस्रशो निर्जितवैरिवृन्दः पुनः प्रयासि त्वमरीन् विजेतुम्॥ २०/ १३.

२. **महापुरे धायिटनाम्नि रम्ये तयोरभूद्दर्शनकौतुकश्रीः॥ २०/२१.**

श्रीखानखानोऽथ नृपं ययाचे मीरस्य सेनामुखनायकत्वं ।
प्रतापशाहाय पुरैव चैतद्दत्तां मयेति क्षितिपोऽप्यवोचत् ।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य, २०/३६)

इस पर खानखाना ने प्रसन्नता व्यक्त की । यहीं प्रताप शाह और खानखाना के मध्य प्रगाढ मैत्री स्थापित होती है जो कि बहुत ही जल्द परवान भी चढ़ती है । रुद्रकवि ने इसका वर्णन भी बहुत ही सूक्ष्म रूप में किया है —

श्रीखानखानस्य गुणप्रियस्य प्रतापशाहस्य गुणास्पदस्य ।
दिने दिने चन्द्रकलेव रम्या संवर्द्धमानाऽथ बभूव मैत्री ।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य, २०/३७)

उपर्युक्त पद्य में खानखाना का विशेषण **'गुणप्रियस्य'** और प्रताप का विशेषण **'गुणास्पदस्य'** इन दोनों की मित्रता का मूल मंत्र जानना चाहिये । इसके बाद वह सेना 'पारवद' (२०/३८), 'कर्पूरग्राम' (२०/३९-४३), 'पुण्यस्तम्भ' (२०/४४-४८), 'बिल्वपुर' एवं 'राधापुरी' (२०/४९-५०) आदि नगरों एवं छोटे-मोटे राज्यों को जीतती एवं लूटती हुई 'अह्मद' नामक नगर पहुंची जहाँ के राजा के दुर्ग पर इस सेना ने घेरा डाला और वहाँ बहुत ही भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हुआ (२०/५०-५४) । रुद्रकवि ने उपर्युक्त ग्राम एवं नगर-राज्यों को जीतते समय मुराद की सेना द्वारा उन्हें लूटने-खसोटने का भी वर्णन किया है और ऐसे नगरों में जहाँ तीर्थस्थान अथवा देवालय थे; में प्रताप शाह की भक्ति और वहाँ उसके पुण्याचरणों का भी । 'पुण्यस्तंभ' को लूटते समय मुराद की सेना वहाँ के ग्रामों को जलाना चाहती थी किन्तु प्रताप ने अपने प्रभाव के कारण ऐसा नहीं होने दिया और उन्हें ऐसा करने से कठोरतापूर्वक मना कर दिया : (राष्ट्रौढवंश..२०/४६-४७)-

अथ प्रवृत्तेषु पुरस्य पुण्यस्तम्भस्य दाहाय महारथेषु ।
प्रतापशाहः करुणार्द्रचित्तो न्यवारयत्तान् विविधैरुपायैः ।।
अनेकभूदेवनिकेतनानां संरक्षणं यत्कृतमादरेण ।
गङ्गावतीसूनुरगादुदारं तेन ध्रुवं मन्दिरदानधर्मम् ।।

उपर्युक्त ४७ वें पद्य में प्रसङ्ग-प्राप्त प्रताप शाह की माता का नाम स्मरणीय है और इसके अनुसार नारायण शाह की पत्नी और प्रताप शाह की माता का नाम गङ्गावती था। अस्तु, इसके बाद मुराद की इस सेना; जिसका सेनापति स्वयं प्रताप शाह था, -के द्वारा उस नगर को लूट लिये जाने पर भी प्रताप शाह ने उस तैर्थिक अर्थ-लाभ का तिरस्कार कर दिया था — **''प्रतापशाहः प्रचुरप्रतापो**

न चाहरत्तैर्थिकमर्थलेशम्'' (२०/४८)। रुद्रकवि ने इस नगर के राजा के साथ मुराद की सेना, प्रताप शाह एवं खानखाना की अदम्य वीरता एवं रणकौशल का बहुत ही उत्तेजक एवं वीरतापूर्ण वर्णन किया है (२०/४९-७८) किञ्च प्रताप एवं खानखाना की पारस्परिक सहायता से उस किले एवं राज्य पर मुराद के विजय का वर्णन कर 'विराट' राज्य के साथ युद्ध का भी विवरण प्रस्तुत किया है। किन्तु 'विराट'-राज्य पर जैसे ही सेना पहुंचती है कि वर्षाकाल आ जाता है और प्रताप अपने पिता को देखने एवं हाल-चाल लेने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर मुराद उसे चार महीने का अवकाश देकर सम्मान सहित विदा करता है (२०/८२-८७)। इसके आगे प्रताप शाह की स्तुति के साथ ही (२०/८८-१०१) इस महाकाव्य का यह अन्तिम सर्ग समाप्त हो जाता है।

रुद्रकवि के उपर्युक्त विवरण में निम्नलिखित दो ऐतिहासिक तथ्यों की सम्पुष्टि विशेष उल्लेखनीय है; एक तो रहीम के साथ प्रताप शाह का मिलना और उनके साथ प्रताप की प्रगाढ़ मैत्री स्थापित होना। दूसरे नारायण शाह द्वारा मुराद को अथवा प्रकारान्तर से अकबर या मुगल-साम्राज्य को सैन्य सहायता उपलब्ध कराना। इनमें प्रथम तथ्य के सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि 'नवाबखानखानाचरितम्' में जो प्रताप एवं खानखाना के पारस्परिक सम्बन्धों को एवं उनकी मित्रता को प्रदर्शित किया गया है उसका मूलरूप मुराद द्वारा निजाम शाह के ऊपर आक्रमण करते समय उसकी सेना में सम्मिलित प्रताप शाह एवं खानखाना के पारस्परिक परिचय एवं कालान्तर में दोनों के मध्य परिपक्व मित्रता में निहित है। इसके अनुसार; चूंकि उपर्युक्त महाकाव्य की रचना १५९६ ई. में हो चुकी थी सो प्रताप शाह एवं खानखाना की मित्रता के काल को इसी वर्ष के रूप में ग्रहण करना चाहिये। दूसरा ऐतिहासिक तथ्य है बागुलान के नारायण शाह द्वारा अकबर को सैन्य सहायता उपलब्ध कराना जो कि उपर्युक्त विवरण में मुगल-दूत के द्वारा सहायता मांगे जाने पर नारायण शाह ने निजाम शाह के विरुद्ध मुराद को सैन्य सहायता उपलब्ध कराई और स्वयं युद्ध में न जाकर प्रताप को उस युद्ध में भेजा।

इस प्रकार एक समकालीन ऐतिहासिक साक्ष्य (राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य) से भारतीय मध्यकालीन इतिहास और खासकर दक्षिण-भारत के इतिहास में अत्यधिक महत्त्व रखने वाले कतिपय युद्धों का प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है। आश्चर्य है कि उपर्युक्त युद्धों का विवरण हमारे वर्तमान इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों में दिया ही नहीं। चाहे अकबर-कालीन इतिहास-लेखक हो या जहाँगीर कालीन अथवा स्वयं खानखाना रहीम के जीवन एवं कृतित्व पर लिखने वाले

इतिहासकार एवं हिन्दी-साहित्य समीक्षक विद्वान्। इनमें से किसी ने भी उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण युद्धों का कोई विवरण नहीं दिया है[१] जबकि इन युद्धों से भारतीय मध्यकालीन राजनैतिक गतिविधियों, उथल-पुथल, मुगल-साम्राज्यवादी नीतियों, दक्षिण-भारतीय राज्यों तथा राजाओं के कितने ही अज्ञात तथ्यों तथा ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है।

(3) यहाँ ई. सन् १५९६ के उपर्युक्त युद्ध में नारायण शाह द्वारा अकबर या मुगल-साम्राज्य की सहायता और इसके ठीक तीन वर्ष बाद ही ई. सन् १५९९ में अकबर द्वारा स्वयं बागुलान पर आक्रमण और प्रताप शाह से सन्धि यह दोनों तथ्य विचारणीय हैं। अकबर ने सन्धि के जो प्रस्ताव रखे थे उन्हें पाठक ऊपर पढ़ आये हैं और इनमें एक था - 'मांगे जाने पर बागुलान द्वारा मुगल-साम्राज्य को सैन्य सहायता उपलब्ध कराना।' सन्धि १५९९ ईसवी में हुई थी जिसका तात्पर्य है कि इससे पूर्व इस प्रकार की क़ोई सन्धि बागुलान और मुगल-दरबार के बीच नहीं थी। मुराद द्वारा निजाम शाह के साथ जो उपर्युक्त युद्ध १५९६ ई. में लड़ा गया था उसमें बागुलान के राजा किसी सन्धि के बन्धन में नहीं थे कि मांगे जाने पर वह मुगलों को सैन्य-सहायता उपलब्ध करायें ही। फिर भी मुगल-दरबार की ओर से नारायण शाह के पास सैन्य-सहायता का प्रस्ताव भेजा गया और रुद्रकवि के अनुसार नारायण शाह ने सहर्ष यह सहायता उपलब्ध कराई। तो क्या बागुला-नरेश के द्वारा यह सहायता बिना सन्धि के ही उपलब्ध कराई गई ? यह विचारणीय है। आधुनिक इतिहास और इतिहासकार इस विषय पर सर्वथा मौन हैं। समकालीन इतिहास भी कुछ विशेष उत्तर नहीं देता सिवाय रुद्रकवि के **"केषां न किं किं कृतमार्यवर्यैः सहायकार्यं भवदीयपूर्वैः"** कि नारायण शाह से पूर्व भी बागुलान के शासक मुगलों की सैन्य-सहायता किया करते थे। निश्चय ही इस विषय पर इतिहासकारों को अधिक से अधिक छानबीन करनी चाहिये और यहाँ हम इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते कि नारायण शाह द्वारा मुराद को दी गई यह सहायता केवल मुगल-दरबार की पारस्परिक मित्रता का ही परिणाम था।

१. अवधबिहारी पाण्डेय (उत्तर-मध्यकालीन भारत), जे. एल. मेहता (मध्यकालीन भारत का वृहद् इतिहास, भाग-२), एल. पी. शर्मा (मध्यकालीन भारत), विद्याधर महाजन (मध्यकालीन भारत), सच्चिदानन्द भट्टाचार्य (भारतीय इतिहास कोश) आदि एवं अन्यान्य भी अनेक इतिहासकारों ने इस युद्ध के प्रसङ्ग में कहीं भी बागुलान राज्य या नारायण शाह अथवा प्रताप शाह की सहभागिता की कोई चर्चा नहीं की है। यही नहीं स्वयं अनेकानेक फारसी स्रोत के समकालीन इतिहास-ग्रन्थों में भी इस युद्ध में बागुलान-नरेशों का कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता।

रुद्रकवि ने मुराद के द्वारा निजाम शाह के ऊपर जिस आक्रमण या युद्ध का विवरण प्रस्तुत किया है उसकी पुष्टि आधुनिक इतिहास और आधुनिक इतिहासकारों के विवरण से भी होती है किन्तु उनमें अन्तर यह है कि रुद्रकवि ने इस युद्ध की अन्तिम स्थितियों या युद्ध के परिणाम का विवरण नहीं दिया है जिसके कारण आधुनिक इतिहासकारों के विवरण के समक्ष रुद्रकवि के विवरण को एक साथ रखकर नहीं पढ़ा जा सकता। रुद्रकवि ने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि मुराद की वह सेना अहमद नगर पहुंच भी पाई थी या नहीं, निश्चय ही नहीं क्योंकि सेना को पुण्यस्तंभ में पहुंचाकर इस महाकाव्य को समाप्त कर दिया गया है। यह पुण्यस्तंभ, ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार महाराष्ट्र में पड़ता है जिसे 'पुनतांबा' के नाम से जाना जाता है और यह 'मध्य रेलवे के धौंड-मनमाड' मार्ग पर स्थित है। यह प्राचीन नगर गोदावरी के तट पर बसा है।[१] सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव के अनुसार मुराद ने अहमदनगर के निजाम शाह के साथ युद्ध चालू तो कर दिया था किन्तु यह उसके किले पर विजय नहीं प्राप्त कर सका था और 'शेवटी' के पास से यह सेना सहित वापस हो लिया था।[२]

इस युद्ध से सम्बन्धित विस्तृत विवरणों को इतिहासकार अवध बिहारी पाण्डेय ने अपनी पुस्तक में बहुत ही विस्तार से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार बुर्हाण निजाम शाह द्वितीय[३] (१५९०-१५९५) जो कि पूर्व में अकबर का कृपापात्र था; की उच्छृङ्खलताओं तथा उसके द्वारा मुगल-साम्राज्य की ओर से मुँह फेर लिये जाने के कारण अकबर ने प्रथम तो दानियाल और बाद में उसके स्थान पर मुराद को खानखाना के साथ उस पर विजय प्राप्त करने हेतु अहमदनगर भेजा। अवध बिहारी पाण्डेय ने कहीं भी अकबर के अन्यान्य सहायकों के बीच प्रताप शाह या नारायण शाह या बागुलान की चर्चा नहीं की है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य है। अस्तु, पाण्डेय जी के अनुसार मुराद की सेना अहमदनगर पर दिसम्बर १५९५ ईसवी में चढ़ाई करती है और तीन महीने के लगातार युद्ध चलते रहने पर भी जब चाँदबीबी ने हार नहीं मानी और उसे स्थानीय सहायता उपलब्ध होने

१. देखिये : 'ऐतिहासिक स्थानावली, पृष्ठ-५६४ पर 'पुण्यस्तम्भ'

२. **''मोगलांचे अहमदनगराच्या निजामशाहींशीं युद्ध चालू असतां यानें अमदनगराच्या किल्ल्यास वेढा दिला, पण यास किल्ला सर करतां आला नाहीं । शेवटीं वव्हाड प्रांत घेऊन हा परत निघून आला''**

-'मध्ययुगीन चरित्र कोश, पृष्ठ-६४६.

३. बुर्हाण निजामशाह से सम्बन्धित विवरण हेतु देखें : 'मध्ययुगीन चरित्र कोश, पृष्ठ : ४९४ तथा ५७१.

की बात मुराद को ज्ञात हुई तो अन्यान्य कारणों के साथ (जिनमें एक यह भी था कि खानखाना और मुराद में सहमति नहीं थी) इस कारण से भी उसने चाँदबीबी के साथ सन्धि कर ली। किन्तु यह सन्धि स्थिर न रह सकी और अगले ही वर्ष ई. सन् १५९७ में खानखाना और मुराद ने पुनः अहमदनगर पर चढ़ाई की। इस बार गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्यों को मुगलों की इस सेना ने हरा दिया और अहमदनगर पर जोरदार चढ़ाई की किन्तु खानखाना और मुराद के पारस्परिक मतभेद पुनः प्रस्तुत हुए और दोनों को हटाकर मिर्जा शाहरुख को प्रधान सेनापति बनाकर युद्ध में भेजा गया। इससे भी अकबर को कुछ विशेष सफलता नहीं मिली और बिना खानखाना रहीम के दक्षिण अभियान असफल ही रहेगा यह जान अकबर ने पुनः रहीम को दानियाल के साथ युद्ध परं भेजा और इस बार चाँदबीबी पर जोरदार हमला हुआ जिसका प्रतीकार करना उसके बूते नहीं था सो उसने या तो आत्महत्या कर ली या इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुई।[१] यह विजय ईसवी सन् १६०० के आस-पास की बताई जाती है।

अस्तु, ऊपर जिस लम्बे विवरण को हमने प्रस्तुत किया है उसका प्रयोजन केवल रुद्रकवि को आधुनिक इतिहासकारों की मान्यता के और उनके विवरण के समक्ष पुष्ट एवं प्रमाणित करना मात्र है। किन्तु हमारा परम प्रयोजन है - खानखाना रहीम और प्रताप शाह के बीच स्थापित मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के निश्चित काल को ज्ञात करना और हम बता चुके हैं कि यह काल १५९५-९६ ई. है। इस वर्ष प्रताप शाह ने अकबर की सहायता के स्वरूप मुराद की सेना को सैन्य-सहायता प्रदान की थी व स्वयं उस युद्ध में भाग लिया था। युद्ध पूर्ण रूप में नहीं लड़ा गया और वर्षाकाल आ जाने के कारण बीच में ही रुक गया। यहाँ एक अन्य तथ्य की ओर इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ और वह यह कि १५९६ ई. में प्रताप शाह ने निष्ठापूर्वक अकबर की सहायता की और मुराद को सैन्य-सहायता उपलब्ध कराई तो इसके बाद १५९९ ई. में स्वयं अकबर द्वारा बागुलान के ऊपर आक्रमण करने की क्या आवश्यकता आ गई ? अकबर; प्रताप शाह पर प्रायोजित इस आक्रमण व युद्ध में विजय भी नहीं प्राप्त कर सका और प्रताप शाह से उसे सन्धि भी करनी पड़ी। सन्धि के प्रस्ताव भी वही थे जिन्हें बागुलान के शासक पहले से ही पूरा करते आ रहे थे तो अकबर को इस सन्धि-प्रस्ताव से क्या लाभ हुआ ? इन और इनसे भी अलग कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिन पर विचार करना अभी मुगल-कालीन भारतीय इतिहासवेत्ता विद्वानों के लिए शेष और आवश्यक हैं।

---

१. देखिये : उत्तर-मध्यकालीन भारत, अवधबिहारी पाण्डेय, पृष्ठ : १८६-१९२.

इस प्रकार हम देखते हैं कि रहीम और प्रताप शाह के बीच स्थापित जिन मैत्री-पूर्ण सम्बन्धों को रुद्रकवि ने अपने प्रस्तुत चम्पूकाव्य 'नवाबखानखानाचरितम्' में प्रस्तुत किया है वह १५९६ ई. में ही दोनों उदारचेताः शासकों के मध्य स्थापित हो चुका था। रहीम के ही नहीं अकबर के साथ भी प्रताप शाह के मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध थे और यह सम्बन्ध अकबर द्वारा बागुलान पर आक्रमण एवं सन्धि के पूर्व भी उसी प्रकार के थे जिस प्रकार अकबर के आक्रमण और सन्धि के बाद।

सन्धि के पूर्व का विवरण हम ऊपर दे आये हैं और सन्धि के बाद का विवरण रुद्रकवि ने अपनी इस रचना में अत्यन्त संक्षेप में निम्नवत् प्रस्तुत किया है, पद्य को ध्यान से पढ़िये —

पूर्वं वीरपदेषु पुत्रपदवीमारोपिता श्रीमता
यद्याकब्बरसाहपार्थिवमणेरत्नं ततो भक्षितम्।
सोऽयं तेन मुदा नवाबचरणान् प्राप्तः प्रतापः पुनः
यत्ते सम्प्रति खानखाननृपते योग्यं तदेवाचर।।

रुद्रकवि के इस विवरण के अनुसार तो अकबर और प्रताप शाह के मध्य पिता एवं पुत्र के समान सम्बन्ध थे। रुद्रकवि के इस विवरण को अतिशयोक्ति-पूर्ण नहीं मानना चाहिये क्योंकि यदि दोनों के मध्य सम्बन्ध बहुत अच्छे थे तो इसका वर्णन रुद्रकवि पिता-पुत्र के दृष्टान्त से कर ही सकते थे। दूसरे नारायण शाह के साथ भी अकबर के सम्बन्ध अच्छे थे और पिता की आयु के होने के कारण इस प्रकार के वर्णन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। डॉ. करंबेलकर के अनुसार उपर्युक्त पद्य में मुल्हेर-दरबार और दिल्ली-दरबार की प्राचीन मित्रता के साथ इस बात के भी गुप्त सङ्केत हैं कि बागुलान का राजा दिल्ली दरबार को कुछ कर देता था — **'अकब्बरसाहपार्थिवमणेरत्नं ततो भक्षितम्।'** यदि करंबेलकर का अनुमान सत्य हो तो मात्र इसी पद्य से खानखानाचरितम् के रचना का प्रयोजन कि प्रताप शाह के ऊपर जहाँगीर ने सैन्य-अभियान या आक्रमण कर दिया था जिससे बचने के लिये ही प्रताप शाह ने रहीम से सहायता प्राप्त करने हेतु उनकी प्रशंसा में इस चरितकाव्य की रचना कराई होगी; सिद्ध हो जाता है और उसका कारण है **'अकब्बरसाहपार्थिवमणेरत्नं ततो भक्षितं'** इस पद्यांश से ध्वनित होने वाला तथ्य कि बागुलान का राजा प्रताप शाह, मुगल-दरबार को कुछ कर देता था (अकबर के सन्धि-प्रस्तावों में यह भी था कि बागुलान, मुगल दरबार को वार्षिक कुछ कर देगा) और कालान्तर में प्रताप शाह ने उस कर को देने या चुकाने में या तो विलम्ब किया होगा या उस कर को दिया ही नहीं होगा। सम्भव है कर देना

बन्द ही कर दिया हो और इसी तथ्य को काव्य की शैली में रुद्रकवि ने उपरिवत् कहा है जहाँ कर को अन्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार के किसी पूर्व निर्धारित व सन्धि-शर्तों में स्वीकृत कर को मुगल-दरबार तक नहीं पहुंचाना या नहीं देना; निश्चय ही कर देने वाले शासक की स्वतंत्रता और उच्छृङ्खलता का प्रतीक माना जाता था और ऐसे स्वतंत्र होने वाले या हो रहे राज्यों पर एकाधिकार कर लेना मुगल दरबार की प्रमुख नीति थी जिसका एक छोटा उदाहरण हम अभी-अभी बुरहान निजाम शाह के ऊपर आक्रमण और उसके राज्य (अहमदनगर) पर मुगलों की विजय के रूप में देख चुके हैं अतः निश्चय ही प्रताप शाह द्वारा कर न भेजे जाने के कारण ही जहाँगीर ने उसके ऊपर सेना भेजी होगी या भेजने की तैयारी की होगी। और प्रताप शाह ने; जो कि मुगल-दरबार के नीति-नियमों और उसकी शक्ति से भलीभांति परिचित था, इस युद्ध को टालने हेतु रहीम से सहायता की अपेक्षा रख अन्यान्य साधनों के साथ प्रस्तुत चरित-प्रधान काव्य-रचना को भी महत्त्व दिया होगा।

प्रताप शाह द्वारा रहीम से इस प्रकार की किसी सैन्य-सहायता मांगने के पीछे जो हमने अपने अनुमान प्रस्तुत किए हैं वे मात्र कल्पना पर ही आधारित नहीं है अगत्या इनका समकालीन ऐतिहासिक साक्ष्य भी है —

त्वद्दोर्दण्डबलोपजीविकतया त्वामेव यो नाथते
त्वत्कल्याणपरम्पराश्रवणतापुष्टिं परां योऽश्नुते।
दूरस्थोऽपि च यस्तवैव परितः प्रख्यातिमाभाषते
सोऽयं नार्हतु खानखान! भवतः प्रीतिं प्रतापः कंथम्।।

करंबेलकर इस पद्य में निम्नलिखित ऐतिहासिकता का अनुमान करते हैं —

"बागुलान का राजा किसी सङ्कट में पड़ा था और खानखाना से उसने सहायता के लिए प्रार्थना की थी (**त्वामेव यो नाथते**)। प्रताप शाह ने दिल्ली अर्जी भेजी थी और खानखाना पर उसे पूर्ण विश्वास था।"

सकलगुणपरीक्षणैकसीमा नरपतिमण्डलवन्दनीयधामा।
जगति जयति गीयमाननामा गरिबनवाजनवाब खानखाना।।

यहाँ खानखाना की गुण-ग्राहकता एवं गरीबनवाज के प्रयोग से खानखाना की लोकविश्रुत परोपकार-भावना व दान देने की ऐतिहासिक घटना विचारणीय है।

बलिनृपबन्धनविष्णुर्जिष्णुः श्रीखानखानायम्।
अम्बरशम्बरमदनौ तनयौ मीरजी अली च दाराबौ।।

रूपक के माध्यम से रहीम के दोनों पुत्रों की चर्चा, जहाँगीर के ऊपर खानखाना का प्रभाव, खानखाना से परिचित एवं अनुगृहीत होने के कारण जहाँगीर से प्रताप शाह के उद्धार की प्रार्थना स्वयं खानखाना से किया जाना आदि ऐतिहासिक महत्त्व की घटना इस पद्य में द्रष्टव्य है। इसी प्रकार —

वीरश्रीजहंगीर-साह-मदन-प्रौढ़-प्रतापदोय-
क्षुभ्यद्दक्षिण-दिक्कुरङ्गनयना-संसर्गसक्तात्मनि।
क्षोणीमंडलखानखानधरणीपाले　　तदीयाम्बर-
व्याक्षेपाय करं वितन्वति तया सानन्दया भूयते ।।

चौथे पद्य की ऐतिहासिक घटना को यहाँ इस पद्य में और स्पष्ट रूप से बताया गया है। वीर सम्राट् जहाँगीर के बढ़ते हुए क्रोध ने दक्षिण-दिशा रूपी सुन्दरी को डरा-सा दिया था। अब जबकि क्षोणीमण्डल खानखाना का हाथ उसके वस्त्रों तक पहुंचता है तो वह प्रसन्न होती है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जहाँगीर ने दक्षिण में अपनी सेना इस दक्षिणी राजा को दबाने के लिए भेजी थी और बागुलान को मुगल फौज ने जीत लिया था। शायद मुल्हेर पर घेरा पड़ा था और इसी सङ्कट में पड़ने के कारण प्रताप शाह ने खानखाना से सहायता मांगी थी।

'नवाबखानखानाचरितम्' के उपर्युक्त साक्ष्यों से और अन्यान्य विन्दुओं सहित बागुलान एवं मुगल-दरबार के संबन्धों के विश्लेषण से यह अनुमान गलत नहीं कहा जा सकता कि सत्य ही प्रताप शाह के ऊपर कोई भारी आक्रमण होने वाला था और इससे बचने के लिये ही प्रताप शाह ने अपने प्राचीन मैत्री के आधार पर रहीम से सहायता मांगी और रहीम के स्वभावानुकूल अपनी याचना उसने काव्य के कलेवर में प्रस्तुत किया। अब यहाँ यह जानना शेष रह जाता है कि जहाँगीर ने प्रताप शाह के विरुद्ध इस प्रकार का सैन्य-अभियान किस वर्ष किया था सो ऐतिहासिक सन्दर्भों में इसका कोई विवरण प्राप्य नहीं। अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि चूंकि अकबर का देहान्त; मार्च १६०५ ई. में हुआ था और इसके बाद ही जहाँगीर सिंहासन पर बैठा और स्वयं रुद्रकवि ने 'नवाब-खानखानाचरितम्' की रचना (शक संवत् १५३१) ईसवी सन् १६०९ में समाप्त की इसलिए निश्चय ही जहाँगीर का ऐसा कोई सैन्य-अभियान ईसवी सन् १६०६ से १६०९ के बीच या आस-पास ही हुआ होगा।

'खानखानाचरितम्' के रचना-प्रयोजनों के प्रसङ्ग में अन्तिम प्रश्न है कि क्या 'खानखानाचरितम्' की रचना का उपर्युक्त प्रयोजन या उद्देश्य पूर्ण हुआ था ? अर्थात् क्या जहाँगीर का प्रताप शाह के ऊपर किया जा रहा वह सैन्य-अभियान

उपर्युक्त रचना या प्रताप और रहीम के पारस्परिक मैत्री-पूर्ण सम्बन्धों या बागुलान और मुगल-दरबार के प्राचीन सम्बन्धों के धरातल पर वापस किया जा सका था ? इसका उत्तर भी हम इससे पूर्व के चर्चित विन्दुओं में दे आये हैं और यहाँ भी बता दें कि 'नवाबखानखानाचरितम्' का रचना-प्रयोजन निश्चय ही सिद्ध हुआ था और इस कृति-मात्र ने प्रताप शाह के ऊपर किये जा रहे सैन्य-अभियान या आक्रमण को विफल करने या वापस करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी और यही कारण था कि प्रताप शाह ने इसके बाद जहाँगीर ही नहीं, दानियाल और शाहजहाँ तक के जीवनचरित को आधार बनाकर रुद्रकवि से संस्कृत में अलग-अलग चरित-काव्यों की रचना कराई थी और ये समस्त चरित-काव्य आज मूल रूप में उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त तथ्य की सम्पुष्टि में एक और समकालीन ऐतिहासिक साक्ष्य को हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं। यह साक्ष्य है स्वयं जहाँगीर का जिसने अपने आत्म-चरित 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' या 'जहाँगीरनामा' में अपने राज्य के बारहवें जलूसी वर्ष में जो कि ईसवी सन् १६१७ के मार्च महीने में प्रारम्भ हुआ था, -के अन्तर्गत प्रताप शाह पर अपना संस्मरण लिखा है। अपने इस संस्मरण में वह कहीं भी प्रताप शाह के ऊपर स्वयं या (अकबर को छोड़) मुगल दरबार द्वारा आक्रमण करने का उल्लेख नहीं करता जिससे ज्ञात होता है कि १६०६-१६०९ के मध्य जो आक्रमण किया गया था उसे वापस कर लिया गया होगा अन्यथा जहाँगीर उसकी चर्चा निश्चित ही यहाँ करता और इसके अलावे जहाँगीर के इस संस्मरण से प्रताप और उसके बीच ही नहीं स्वयं शाहजहाँ के साथ भी प्रताप शाह के मैत्री-पूर्ण सम्बन्धों का खुलासा होता है और अन्त में जहाँगीर यह भी लिखता है कि उसने प्रताप शाह को अनेकानेक पुरस्कार एवं मान-सम्मान देकर दरबार से विदा किया (यह घटना जहाँगीर के आत्म-चरित लिखने के वर्ष अर्थात् बारहवें जलूसी वर्ष जो कि मार्च १६१७ ई. की होने के कारण प्रताप और जहाँगीर ही नहीं बागुलान और मुगल-दरबार के मध्य भी १६१७ ई. तक अच्छे एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है) जिससे यह सप्रमाण सिद्ध हो जाता है कि जहाँगीर ने उस आक्रमण को निश्चय ही वापस ले लिया था अन्यथा आक्रमण के बाद न तो बागुलान का स्वतंत्र अस्तित्व ही सुरक्षित रह सकता था न ही प्रताप शाह का। और तो और १६०९ ई. में इस आक्रमण के बाद पुनः १६१७ ई. में प्रताप शाह के सम्बन्ध जहाँगीर या शाहजहाँ से इतने अच्छे रह ही न पाते कि प्रताप वापस दिल्ली आते और जहाँगीर के हाथों सम्मानित होते।

अस्तु, जहाँगीर का वह विवरण निम्नवत् है जिसके प्रारम्भिक अंशों को

हम इससे पूर्व भी एक-दो स्थानों पर प्रस्तुत कर आये हैं। निम्नलिखित विवरण उन्हीं अंशों के अग्रवर्ती अंश हैं और इन्हें नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'जहाँगीरनामा' के मूल संस्मरण में एक साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये —

..."जब विगत सम्राट् के काल में गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण उनके अधिकार में चला आया तब भेरजी बुर्हानपुर आया और उनका चरण चुंबन कर उनकी सेवा में भर्ती हो गया और उसे तीन हजारी मंसब मिला। इस समय जब शाहजहाँ बुर्हानपुर गया तब यह ग्यारह हाथी भेंट लाया था। हमारे पुत्र के साथ ही यह दरबार आया था। इसलिए इसकी मित्रता तथा सेवा के अनुसार इस पर शाही कृपाएं हुईं और उसे एक जड़ाऊ आभरण, एक हाथी, एक घोड़ा तथा खिलअत दिया। कुछ दिन बाद हमने उसे याकूत, हीरा तथा लाल की तीन अंगूठियां दीं।"[१]

करंबेलकर महोदय ने यद्यपि इस ग्रन्थ के ऐतिहासिक-महत्त्व को उपरिवत् स्वीकार किया है तथा ग्रन्थ-रचना को सोद्देश्य स्वीकार किया है तथापि मैं इस प्रसङ्ग में एक तथ्य प्रस्तुत कर रहीम के विद्या-प्रेम व संस्कृत-प्रेम के साथ ही रहीम के संस्कृत-ज्ञान की ओर भी इस ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य को केन्द्रित करूंगा। ऊपर मैंने चर्चा की है कि रहीम एक सफल राजनीतिज्ञ, महान् योद्धा, कुशल शासक तथा तद्युगीन विलक्षण दानी इत्यादि सब कुछ थे किन्तु वे सबसे अधिक जो थे; वह विद्या-प्रेमी व संस्कृत-प्रेमी थे। संस्कृत के विपुलकाय साहित्य से रहीम सम्यक्तया परिचित थे। अकबरी-दरबार; संस्कृत-पण्डितों, विद्वानों, लेखकों, विचारकों तथा कवियों से सदा ही भरा रहता था। काव्य की एक अजस्र निर्झरिणी निश्चय ही इस दरबार में बहा करती होगी जो कि बिना खानखाना के कानों तक पहुंचे विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होती होगी। 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' नामक अपनी एक अन्य पुस्तक में हमने "**प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु...**" आदि पद्य के माध्यम से दिखलाया है कि पण्डितराज जगन्नाथ जैसे रससिद्ध महाकवि और साहित्य-शास्त्री भी अपनी कविता के गुण-दोष विवेचन हेतु खानखाना से राय-विमर्श किया करते थे। स्वयं रहीम के स्फुट संस्कृत-पद्य तथा गंगाष्टकम् जिस भाव-गाम्भीर्य तथा ध्वनि को प्रस्तुत करते हैं; वह स्वयं भी कम आश्चर्य-चकित करने वाला नहीं है। इस प्रकार रहीम को तत्कालीन संसार यदि राजनीतिज्ञ के रूप में जानता था तो इससे अधिक लोग उन्हें एक अच्छे विद्वान्, विद्वानों के आश्रयदाता, विद्याप्रेमी एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित के रूप में भी जानते थे। अकबर के समय तथा जहाँगीर के शासनकाल में दक्षिण पर अनेक आक्रमण हुए

१. देखिए : 'जहाँगीरनामा, अनुवादक : बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ : ३७४-३७५.

एवं युद्ध किए गए, यह इतिहास प्रसिद्ध है। सम्भव है प्रताप शाह पर जहाँगीर ने आक्रमण किए हों और यह सत्य है। अब प्रताप शाह अपने ऊपर आने वाली इस युद्ध-विभीषिका से बचने के लिए, युद्ध को टालने के लिए स्वयं मुगल साम्राज्य से निवेदन कर सकता था, जैसा कि हम जानते हैं और स्वयं रुद्रकवि ने भी वर्णन किया है कि अकबर के समय से ही उसके सम्बन्ध इस साम्राज्य से ठीक-ठाक थे। फिर भी उसने वैसा न कर तत्कालीन मुगल-सम्राटों में सबसे अधिक प्रतापी, यशस्वी एवं प्रभावी शासक खानखाना से ही इसके लिए प्रार्थना की। उसकी यह प्रार्थना उचित भी थी क्योंकि अकबर से लेकर स्वयं जहाँगीर के शासन-काल तक रहीम ही एक मात्र ऐसे मुगल-शासक थे जिन्होंने इतनी लम्बी कालावधि तक अकेले ही दक्षिण की कमान संभाले रखी थी। अस्तु, यह प्रार्थना और उसे प्रस्तुत करने के साधन का चुनाव निश्चय ही प्रताप शाह की दूरदर्शिता का साक्षी है। एक कुशल राजनीतिज्ञ से, स्वयं राजनीति के प्रश्न पर, राजनीति के द्वारा समाधान; सम्भव है कठिनता से प्राप्त हो। सो प्रताप शाह ने खानखाना पर स्वयं उन्हीं का अस्त्र चलाया ! विद्या, काव्य, साहित्य एवं संस्कृत-कविता का अस्त्र ! जिससे खानखाना सबसे अधिक प्रभावित हो सकते थे। अतः जहाँगीर के सैन्य-अभियान के विरुद्ध प्रताप शाह द्वारा खानखाना को उनका जीवन-चरित समर्पित कर, संस्कृत-काव्य समर्पण के व्याज से सहायता मांगना निश्चय ही रहीम के विद्या एवं संस्कृत-प्रेम का चूडान्त निदर्शन प्रस्तुत करता है।

नवाब अब्दुर्रहीम खां खानखाना :

'नवाबखानखानाचरितम्' के रचयिता रुद्रकवि एवं उनके आश्रयदाता नारायण शाह एवं प्रताप शाह किञ्च इन राठौर राजाओं के राज्य बागुलान से सम्बन्धित उपर्युक्त संक्षिप्त परिचर्चा के बाद अब हम प्रस्तुत चरित-प्रधान चम्पूकाव्य के वर्ण्य अथवा केन्द्रीय विषय नवाब खानखाना के ऐतिहासिक जीवन-परिचय, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनके संस्कृत-ज्ञान से सम्बन्धित कतिपय आवश्यक विन्दुओं की चर्चा कर लेना भी आवश्यक समझते हैं।

नवाब खानखाना के रूप में प्रस्तुत चरित-काव्य में जिस मुगल-शासक के विराट् एवं अद्वितीय व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है वह मुगल-कालीन ही नहीं वरन् मध्य-कालीन समग्र भारतीय इतिहास में एकमात्र ऐसी अनोखी विभूति है जिसे प्रायः इतिहास के स्वर्णिम पन्नों पर विद्वत्ता एवं वीरता; दोनों के ही सफल एवं सशक्त पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कलम और तलवार दोनों के ही अद्वितीय धनी के रूप में इस मध्य-कालीन महान् भारतीय विभूति का गौरव-

गान प्रायः जितनी श्रद्धा एवं आस्था से मध्यकालीन इतिहासकार, पुरातत्त्वविद् एवं राजनीति-शास्त्री करते हैं उससे कहीं अधिक मान, सम्मान, श्रद्धा, आदर और आश्चर्य के साथ हिन्दी, संस्कृत, फारसी, तुर्की, अरबी एवं अन्यान्य भाषाओं के स्थापित भाषावैज्ञानिक, साहित्यकार, कवि, आलोचक, समीक्षक एवं रचनाधर्मी उनकी कीर्ति, यश, काव्य-प्रतिभा, रचना-धर्मिता आदि का गुण-गान किया करते हैं। इतिहासकार एवं साहित्यकारों से भी कहीं अधिक इस विराट् व्यक्तित्व के धनी मुगल-शासक की स्तुति एवं उसकी प्रशंसा हिन्दी, संस्कृत, फारसी एवं अरबी के साहित्यकार, साहित्यप्रेमी अपनी-अपनी भाषाओं, उनके साहित्य एवं रचनाकारों को इसके द्वारा दिये गये उदार संरक्षण के कारण भी किया करते हैं। इनसे अलग एक परम्परा ऐसी भी है जिसमें इस शासक की शासक, कवि, साहित्यकार, भाषावैज्ञानिक या राजनीति-विशेषज्ञ से अलग एक महान् दानी किञ्च परोपकारी के रूप में स्तुति गाई जाती है।

जी हाँ अकबर बादशाह की सभा के नवरत्नों में से अन्यतम अब्दुर्रहीम खां उपनाम 'रहीम' अपने समय के महान् योद्धाओं और सेनापतियों की पंक्ति में सबसे प्रथम स्थान पर गिने जाते थे। समूचे मुगल-साम्राज्य में इनसे बड़ा वीर कोई अन्य शासक नहीं हुआ जो काबुल-कान्धार से लेकर गुजरात और समग्र दक्षिण भारत में अकेले दम पर तैमूरिया सल्तनत की नींव को एक सशक्त भूमि प्रदान करे। महाराणा प्रताप, महाराणा उदय सिंह, सुल्तान मुजफ्फर, चाँदबीबी, बुर्हाण निजाम शाह द्वितीय जैसे अपने युग के अनेकानेक महान् शक्तिशाली राजाओं को उनके राज्य में ही धूल चटाने वाले इस महान् योद्धा ने मात्र १७ वर्ष की अवस्था में ही गुजरात अभियान में, अकबर की सेना में सम्मिलित हो उस वीरता का प्रदर्शन किया कि समग्र गुजरात पर तैमूरिया खानदान का सिक्का जम गया। दो वर्ष बाद अर्थात् १९ वर्ष की अवस्था में स्वयं यह गुजरात का राज्यपाल बना दिया गया और यहाँ से इसकी तलवार ने जो अपनी क्रूर चमक बिखेरनी शुरू की तो ७२ वर्ष की बूढ़ी अवस्था में भी उसकी चमक से शत्रुसेना का कलेजा चाक हो उठता। समकालीन राजनीति-विशारदों, यथा - अकबरी-दरबार के महान् राजशास्त्री मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूंनी, अबुल फज़ल, शेख़ फैजी आदि एवं परवर्ती अन्यान्य इतिहास-लेखकों के द्वारा लिखित एवं अधुना पर्यन्त उपलब्ध ऐतिहासिक-ग्रन्थों एवं अन्यान्य सन्दर्भों में आज भी इसके राजनैतिक क्रिया-कलाप और तत्सम्बन्धी सिद्धान्त जिनका यह आचरण करता था निश्चय ही उस समय के समान आज भी अबूझ पहेली के समान प्रतीत होते हैं जिसके कारण आधुनिक इतिहासकार

भी इसके राजनैतिक-व्यक्तित्व एवं इसके राजदर्शन को समझ नहीं पाते । एक महान् राजशास्त्री के रूप में इसे स्वयं अकबर एवं उसके पुत्र जहाँगीर के साथ-साथ उपर्युक्त राजनीति-महारथियों ने भी मान्यता दी थी ।

राजनीति एवं राज-काज से दूर इसकी एक अविस्मरणीय छवि साहित्यकार एवं विलक्षण भाषावैज्ञानिक के रूप में आज समग्र भारत में ही नहीं, समग्र विश्व में भी प्रशंसित एवं प्रतिष्ठित है । हिन्दी-साहित्य का इतिहास आज लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों से इसकी नीति-सुधा-निष्यन्दिनी कविता की धारा से अपने यशःकाय को निर्मल बनाये हुए है । रहीम अथवा रहिमन की छाप वाले नीतियुत दोहे आज सदियों से समग्र भारत की शिक्षित एवं अशिक्षित जनता के मुख में विराजमान रहे हैं । शायद ही कोई विलक्षण शिक्षित या अशिक्षित भारतीय जन हों जिन्हें रहीम के दो-चार दोहों से पाले न पड़े हों । फारसी-साहित्य का वह विश्वजनीन प्राचीन इतिहास भी इसकी विलक्षण काव्य-प्रतिभा के कारण उपकृत हुआ है और विश्व-साहित्य पटल पर इसकी लेखनी और लेखन-शैली किञ्च काव्य-प्रतिभा के कारण बहुधा प्रशंसित हुआ है और आज भी प्रशंसित है । फारसी-साहित्य के इस मनोरम उपवन में इसके हाथों लगाया वह 'तुज़ुक-ए-बाबरी' का फारसी अनुवाद 'बाबरनामः' -रूपी पुष्प आज भी अपनी मनमोहक सुगन्ध से समग्र विश्व को आनन्दित कर रहा है । अन्यान्य फारसी रचनाएं जो इसने विगलितवेद्यान्तर आनन्द की प्राप्ति एवं 'स्वान्तःसुखाय' मात्र के लिये लिखीं थीं; निश्चय ही मात्रा में बहुत कम हैं किन्तु उतने की ही समीक्षा कर आधुनिक फारसी-साहित्य के विश्वविख्यात समीक्षकों एवं आलोचकों ने इसे शेखसादी, उर्फी तथा नजीरी की श्रेणी में लाकर बिठा दिया है । संस्कृत-साहित्य का इतिहास इसकी गौरवमयी उपस्थिति से एक तरफ तो अपने कलेवर को एक विचित्र एवं विलक्षण किन्तु सद्यः आनन्दप्रद रूप से सुसज्जित पाता है तो दूसरी ओर अपने साहित्यगत सिद्धान्तों, मार्गों और परम्पराओं के अनुरूप इस मुगल-शासक की उत्कृष्ट रचनाओं से अपने को और भी परिपुष्ट देखता है । अरबी एवं तुर्की-साहित्य का इतिहास भी इसी प्रकार इसकी लेखन-शैली और काव्य-प्रतिभा से गौरवान्वित है । अन्यान्य भारतीय भाषाओं एवं उपभाषाओं में अवधी, व्रज, राजस्थानी, मारवाड़ी, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाएं और भी हैं जिनमें इस मुगल-शासक ने मनोरञ्जन हेतु रचनाएं तो कीं किन्तु इनमें प्रथम दो को छोड़ अन्य में इसका साहित्य उपलब्ध नहीं होता । उपर्युक्त भाषाओं में रचना करने वाला यह हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी एवं तुर्की का रससिद्ध कवि तत्कालीन संसार की अनेकानेक ज्ञात विदेशी भाषाओं में पारङ्गत एक महान् भाषा-

वैज्ञानिक भी था। उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार यह अंग्रेजी, फ्रेंच, यूनानी एवं अरब तथा ईरान आदि देशों में प्रचलित अरबी तथा फारसी भाषाओं के अनेकानेक प्रकारों का भी अच्छा ज्ञाता था।

समकालीन इतिहास ने इसे एक अच्छा चित्रकार, सङ्गीत-प्रेमी एवं सङ्गीत विशारद, वास्तु एवं स्थापत्य प्रेमी, कला व शिल्प का उपासक, महान् पुस्तक प्रेमी, चरित्रवान्, विलक्षण दानी व परोपकारी, साहित्यकारों एवं रचनाधर्मी कवियों, लेखकों, विद्वानों एवं पण्डितों का उदार संरक्षक आदि के रूप में प्रस्तुत किया है। इन समग्र तथ्यों की चर्चा करना यहाँ असम्भव है क्योंकि इस प्रयास में एक स्वतंत्र शोध-प्रबन्ध तैयार हो जाएगा। तथापि यहाँ हम अत्यन्त संक्षेप में उपर्युक्त तथ्यों की चर्चा प्रस्तुत कर देते हैं जिससे रहीम के विराट् व्यक्तित्व का ज्ञान हमारे पाठकों को हो जाय। वैसे इस विषय पर अन्यान्य शोध एवं इतिहास के प्रबन्धों का अवलोकन अवश्य करना चाहिये जिनमें इन विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है —

ऐतिहासिक जीवन परिचय :

अब्दुर्रहीम, तुर्कमान जाति के कराकूयलू (काली बकरी वाले) परिवार की बहारलू शाखा में उत्पन्न बैराम खां खानखाना के पुत्र थे। मुंशी देवीप्रसाद जी ने तुर्कमानों के दोनों परिवारों; कराकूयलू और आककूयलू के प्राचीन इतिहास पर गम्भीर विवेचना प्रस्तुत की है। उनके अनुसार[१] —

"कराकूयलू के माने काली बकरीवाले के हैं। ये लोग पहले काली बकरियां रखा करते थे और इनके भाई जो सफेद बकरियां चराते थे वे आककूयलू कहलाते थे। ये लोग अजरबायजान (अजरबेज़ान) में रहते थे जो ईरान का एक सूबा, रोम और रूस की सरहद से मिला हुआ है, जिसको अब आरमीनिया कहते हैं। कराकूयलू की शाखाओं में से एक शाखा बहारलू भी थी जिसके अमीर अली शकर बेग़ को करायूसुफ ने हमदान, देनूर और गुर्दिस्तान के इलाके जागीर में दिए थे। यह अलीशकर बेग़ ही खानखाना रहीम का पूर्व-पुरुष था। मध्य एशिया के इतिहास में करायूसुफ, एक विलक्षण प्रतिभा का धनी व्यक्ति बताया गया है। रहीम के ऐतिहासिक-जीवन पर उपलब्ध अधुनापर्यन्त ऐतिहासिक-ग्रन्थों में रहीम के वंश एवं जाति पर जो विवरण उपलब्ध होता है उन सबमें सर्वप्राचीन नाम करायूसुफ

१. खानखानानामा, भाग-१, पृष्ठ : १-८. रहीम के जाति-वंश-पूर्वज एवं उनके इतिहास सहित अन्यान्य अज्ञात तथा दुर्लभ विषयों के लिए निम्नलिखित ग्रन्थों का अध्ययन अवश्य करें : 'तारीख-ए-रोजतुल्सफा, 'मआसिर-ए-रहीमी, 'अकबरनामा, 'खानखानानामा, 'मआसिरुल् उमरा, 'अकबरी दरबार' आदि।

ही है। मध्य एशिया के इतिहास में करायूसुफ; एक विलक्षण प्रतिभा का धनी व्यक्ति बताया गया है।[१] अस्तु, अलीशकर बेग के बाद उसका पुत्र पीर अली जो कि अपने अन्य भाइयों में कुछ वीर, साहसी तथा योद्धा था; को अपने पिता की जागीर प्राप्त हुई। मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार —

"वह पहले हिसारशादमां (तूरान का एक प्रसिद्ध किला) में महमूद मिरजा के पास रहा फिर फारस (जो कि ईरान का एक जिला था और शीराज, फारस का सदरमुकाम था) देश में चला गया जहाँ समय पाकर अपना राज्य जमाने के लिए शीराज के हाकिम से लड़ा मगर हारकर खुरासान में भाग आया जो उस वक्त सुलतान हुसेन मिरजा[२] के अधिकार में था। मिरजा के अमीरों ने पीर अली को वीर और उद्यमी देखकर मार डाला।"

पीर अली के बाद उसका पुत्र यार बेग हुआ जो कि ईरान में रहता था। शाह इसमाईल सफवी ने ईसवी सन् १५०० में ईरान पर आक्रमण कर हसनबेग

१. काकूयलू परिवार में सर्वप्रथम करायूसुफ ही बादशाह हुआ था। ई. सन् १३९३ में अमीर तैमूर ने बगदाद पर चढ़ाई करके सुल्तान अहमद को भगा दिया जिसने ई. सन् १३९४-९५ में अमीर तैमूर का तूरान में होना सुनकर बगदाद को फिर ले लिया था। मगर जब ई. सन् १३९९-१४०० में तैमूर फिर ईरान आया तब सुल्तान अहमद ने तुर्कमानों के काकूयलू के इसी करायूसुफ को अपनी सहायता हेतु अपने साथ ले लिया। तैमूर ने दोनों को ही पराजित कर ईरान पर शासन स्थापित कर लिया तब सुल्तान अहमद और करायूसुफ रोम की ओर भागे। तैमूर ने रोम पर भी आक्रमण किया और विजय प्राप्त कर ली तब दोनों ही योद्धा मिस्र को चले गए। इसके बाद ई. सन् १४०४ में तैमूर के मर जाने की खबर पाकर ईरान को लौटे। लौटते समय दोनों में ही यह सन्धि हुई कि बगदाद को सुल्तान अहमद लेगा और तबरेज (अज़रबेजान की राजधानी) पर करायूसुफ राज्य करेगा। ईरान आकर दोनों ने दोनों देशों को तैमूर के उत्तरजीवी हाकिमों से छीन लिया और अपने राज्य स्थापित किए। ई. सन्१४१० में सुल्तान अहमद ने करायूसुफ से भी तबरेज छीनने की इच्छा से उस पर आक्रमण कर दिया किन्तु करायूसुफ ने युद्ध में उसे समाप्त कर स्वयं बगदाद पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

२. तैमूर के बेटों में उमर शेख़ बड़ा और मीरांशाह उससे छोटा था। सु. हुसेन मिरज़ा उमर शेख की चौथी पीढ़ी में था और १४६८ ई. में खुरासान का बादशाह हुआ था। 'तारीख-ए-रोजतुलसफा' जो कि तुर्कमान-जाति के काकूयलू, अकाकूयलू, बहारलू तथा रहीम के पूर्वजों के समस्त इतिहास को सविस्तार प्रस्तुत करता है, इसी राज्य में लिखा गया था।" –खानखानानामा, भाग-१, पृष्ठ : ४-८.

आककूयलू के पोतों से उस देश को छीन लिया तब यार बेग ईरान छोड़कर बदख़्शाँ (तूरान का एक जिला) में चला और वहाँ से कुंदुज (बदख़्शाँ का एक शहर) में जाकर अमीर खुसरो शाह के पास रहने लगा। कालान्तर में मुहम्मद खां शेबानी उज़बक जो कि चंगेज़ खां के पोते और जूजी खां के बेटे शबान के वंशजों में से था, ने तूरान को तैमूर के पोतों से छीन लिया। इसी समय बाबर ने भी फरगाना (जो कि तूरान का एक जिला है और काशगर, समरकन्द एवं बदख़्शाँ के बीच में था और उसकी एक सीमा मंगोलिया से मिलती थी। अब काशगर; चीन के, समरकंद फरगाना और बुख़ारा रूस के तथा बल्ख़; काबुल में हैं) में रहना मुश्किल देखकर ई. सन् १५०४ में बदख़्शाँ पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत लिया। खुसरो शाह ने बदख़्शाँ का सूबा उसे सौंप दिया। इस उथल-पुथल के कारण खुसरो शाह के आश्रित यार बेग ने भी अपने बेटे सेफ अली समेत बाबर के यहाँ नौकरी कर ली।[१]

सेफ अली बादशाह बाबर का स्वामिभक्त हुआ और बदख़्शाँ में ही रहा। यहीं उसके घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम बैरम बेग रखा गया। बैरम बेग ने बदख़्शाँ से बल्ख़ में जाकर विद्या पढ़ी और १६ वर्ष की अवस्था में बादशाह हुमायूँ की सेवा में नौकरी कर ली और कालान्तर में पदोन्नति करता गया। बैरम बेग हुमायूँ के सबसे विश्वस्त अमीरों में से था और अनेकानेक युद्धों में उसने बादशाह का साथ देकर उन युद्धों में उसे विजय दिलाई थी। भयङ्कर युद्धों की विभीषिका और उसके विजयश्री के आनन्द से लेकर कितने ही युद्धों के पराजय और आपत्ति-विपत्ति की भीषण परिस्थितियों में भी बैरम बेग लगातार हुमायूँ के साथ रहा। बैरम बेग को 'खां' जिसका अर्थ 'राजा' होता है; की उपाधि ईरान के बादशाह ने १५५४ ई. में दी थी जब बैरम वहाँ हुमायूँ के साथ गए थे। इसके बाद से बैरम बेग; बैरम खां के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुए। कालान्तर में हुमायूँ के ईरान से भारत आने और काबुल, कंधार आदि के विजयों में बैरम खां की अद्वितीय वीरता और साहस के साथ उसकी स्वामि-निष्ठा को देखते हुए ई. १५५५ से लेकर ई. १५६५ के बीच किसी समय हुमायूँ ने उन्हें 'खानखाना' की उपाधि दी थी।

बैरम खां से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों को अनेकानेक आधुनिक एवं समकालीन इतिहास की पुस्तकों में प्रस्तुत किया गया है अतः हम यहाँ उसके सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहेंगे हाँ एक अज्ञात एवं अत्यन्त अल्पज्ञात तथ्य की चर्चा अवश्य प्रस्तुत करेंगे। बैरम खां योग्य सेनापति एवं राजनैतिक विषयों में पारङ्गत होने के साथ ही एक उच्चकोटि का कवि, लेखक एवं सङ्गीत-प्रेमी तथा सङ्गीत-

१. खानखानानामा, मुंशी देवीप्रसाद, भाग-१, पृष्ठ : ६-७ के आधार पर.

साधक भी था और कवियों एवं रचनाधर्मियों के साथ-साथ सङ्गीतज्ञों का महान् आश्रयदाता भी। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार महाकवि सूरदास के पिता बाबा रामदास जो कि अपने समय के महान् गायक एवं संगीतज्ञ थे; बैरम खां के संरक्षण में ही थे और संगीत-साधना किया करते थे।[१]

इन्हीं बैरम खां एवं जमाल खां[२] की छोटी पुत्री से बृहस्पतिवार १७ दिसम्बर १५५६ ई. को लाहौर में (१४ सफर, गुरुवार सन् ९६४ हिजरी), अकबर की राजगद्दी के प्रथम-वर्ष के अन्त में, अब्दुर्रहीम का जन्म हुआ।[३] मुंशी देवीप्रसाद जी ने रहीम से सम्बन्धित अपनी प्रख्यात ऐतिहासिक पुस्तक 'खान-खानानामा' में रहीम की प्रामाणिक जन्मतिथि को लेकर पर्याप्त विवेचना की है और ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं रहीम की उपलब्ध जन्मकुण्डलियों के आधार पर उन्होंने उनकी जन्मतिथि को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। जब रहीम चार वर्ष के थे उसी समय हुमायूँ के अनेकानेक विजयों के मूल और अकबर के साम्राज्य की स्थापना में नींव का कार्य करने वाले बैरम खां को कालान्तर में अकबर ने हज-यात्रा पर भेज दिया था। हज-यात्रा पर जाते समय गुजरात के सहस्रलिङ्ग तालाब के निकट ही मुबारक खां लोहानी नामक एक पठान ने; जिसके पिता की हत्या बैरम खां के नेतृत्व वाली एक सेना के द्वारा कर दी गई थी, १४ जमादिउल अव्वल भृगुवार सन् ९६८ अर्थात् माघ सुदी १५ संवत् १६१७ (ई. १५७०) को बैरम खां की हत्या कर दी।[४] पठानों ने बैरम के परिवार पर भी हमला किया किन्तु बैरम के कतिपय विश्वासपात्र सेनापति तथा सैनिक-मित्रों, यथा - मुहम्मद अमीन दीवाना,

---

१. देखें : 'सूरदास का जीवन चरित, मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ : १०-१२.

२. जमालखां, हसनखां मेवाती का छोटा भाई और अलावलखां का बेटा था। हसनखां का राज्य कई पीढ़ियों से अलवर में था। वह १०००० सवारों से महाराणा सांगा जी के साथ होकर बाबर बादशाह से लड़ा था और उस लड़ाई में काम आया था। ये लोग असल में यादव राजपूत थे और मुसलमान होने के पीछे खानजादे कहलाने लगे। अब भी बहुत लोग इस घराने के अलवरराज्य में हैं।"

- मुंशी देवीप्रसाद, खानखानानामा, भाग-१, पृष्ठ : २८.

३. इस विषय पर अधिक जानने हेतु देखिये : 'अकबरनामा, भाग-२, पृष्ठ-७६. 'मआसिरे रहीमी, भाग-२, पृष्ठ-३२. 'अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ ५ से ७. 'खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ : २-३ एवं १२५ से १३० तक.

४. विशेष विवरण हेतु देखिये : 'अकबरनामा, भाग-२, पृष्ठ-२००. 'मुन्तखाबुत्तवारीख, भाग-२, पृष्ठ-४०. 'अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ ७-९. 'खानखानानामा, भाग-१, पृष्ठ : ६६-६७.

बाबा जम्बूर और ख़्वाजा अब्दुल मलिक आदि ने अद्वितीय वीरता दिखाते हुए बालक रहीम, उसकी मां और अन्य परिवार सदस्यों को सुरक्षित अहमदाबाद तक पहुंचा दिया जहाँ बैरम का यह परिवार चार महीनों तक पड़ा रहा। अकबर इस दुःखद घटना से बहुत क्षुब्ध हुआ और अत्यन्त सम्मान के साथ उसने अपने संरक्षक बैरम खां के इस दुःखित परिवार को अहमदाबाद से आगरे के दरबार में बुला लिया। सन् ९६९ हिजरी, आश्विन सुदी २ संवत् १६१८ को यानी ११ अगस्त १५६१ ई. को बैरम का परिवार आगरे में अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ और अकबर ने उस परिवार के प्रति पहले से कहीं अधिक सम्मान एवं घनिष्टता प्रदर्शित करते हुए उसे संरक्षण दिया।[१] अनेकानेक इतिहासकारों के अनुसार अकबर ने बैरम की विधवा पत्नी (सलीमा) से विवाह भी कर लिया[२] और रहीम; जिसे अकबर ने 'मिर्जा खां' की उपाधि दी थी, -का पालन-पोषण एवं उसकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध अपनी ही देख-रेख में किया।

रहीम की शिक्षा-दीक्षा के लिये अकबर ने तत्कालीन भारत एवं ईरान के प्रसिद्धतम विद्वानों को; जो कि अनेकानेक भाषा, विद्या, ज्ञान एवं विंज्ञान में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखते थे; नियुक्त किया। इस क्रम में अकबर ने अन्दिजान के प्रसिद्ध मौलवी मुल्ला मुहम्मद अमीन को नियुक्त कियां था जिनसे मिर्जा खां को फारसी, अरबी और तुर्की की शिक्षा मिली। दर्शन और साहित्य के पण्डित गाज़ी खां बदख़्शी, अरबी के विश्व-विश्रुत विद्वान् मुल्ला इमाद तारकी, मियां बजीहुद्दीन मुहम्मद दब्बानी आदि की सङ्गति पाकर मिर्जा खां ने अनेकानक भाषाओं, विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी।[३] इतना ही नहीं मिर्जाखां ने अपनी दौड़ के 'अफलातून' और 'जालीनूस' समझे जाने वाले तत्कालीन विश्व के महान् वैज्ञानिक, फतह उल्लाह शीराजी से भी अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं उनके

१. विशेष जानकारी हेतु देखें : 'अकबरनामा, भाग-२, पृष्ठ-२०३. 'मआसिर-ए-रहीमी, भाग-२, पृष्ठ १०४-१०५. 'अब्दुर्रहीम खानखाना,' पृष्ठ : १०-११.

२. देखिये : 'रहीम साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-१८३. तथा 'सरस्वती, वर्ष-५७, खंड-२, संख्या-१, जुलाई १९५६ ई., पृष्ठ ११-१४ पर राहुल सांकृत्यायन का 'रहीम' शीर्षक लेख.

३. रहीम के इन विश्वविख्यात शिक्षकों में अन्दितजान के प्रसिद्ध 'मौलवी मुल्ला मुहम्मद अमीन' के विषय में अधिक जानने हेतु देखिये : 'अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ-१२. इसी प्रकार गाज़ी बदख़्शी, मुल्ला इमाद तारिक तथा मियां बजीहुद्दीन मुहम्मद दब्बानी के बारे में विस्तार से जानने हेतु देखें : मआसिर-ए-रहीमी, भाग-२, पृष्ठ-५४० एवं 'रहीम साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-२४६.

प्रयोगों की शिक्षा प्राप्त की थी।[१] काव्य-प्रतिभा उन्हें दैवीय पुरस्कार के रूप में ही प्राप्त थी। रहीम के समकालीन एवं उनके आश्रय में रहने वाले जीवनीकार अब्दुल बाकी नहाबन्दी; जिसने रहीम के जीवन पर 'मआसिर-ए-रहीमी' नामक दो हजार पन्नों की एक विशाल ऐतिहासिक पुस्तक का निर्माण किया है, -ने लिखा है कि स्वयं रहीम से उसे मालूम हुआ कि उन्होंने ११ वें वर्ष में ही काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी और उसी समय से लोगों ने उनकी कविताओं में रुचि दिखाना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया था, वरन् अपनी काव्य-प्रतिभा के भरोसे ही आगे बढ़े थे।[२] सारस्वत अध्ययन के साथ ही अकबर ने रहीम, जिसे वह मिर्जा खां की उपाधि देने के बाद इसी नाम से सम्बोधित करता था; -मिर्जा खां को युद्धकला और शस्त्र-विद्या में भी पारङ्गत कर दिया और साथ ही उसके राजनीति-शास्त्र के अध्ययन का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया जिससे उसका राजनैतिक-जीवन सफल हो सके। निश्चय ही रहीम की शिक्षा-दीक्षा के लिए अकबर द्वारा किये गए प्रबन्ध स्तुत्य थे क्योंकि कालान्तर में रहीम ने अपनी जिस विद्वत्ता, साहित्यिक अभिरुचि, शास्त्र-व्यसन, युद्धकला, एवं रण-क्षेत्र में अपने तलवार का कौशल किञ्च मुगल-सेनापति पद से अद्वितीय वीरता और रण-चातुरी का प्रदर्शन किया था वह किसी सामान्य शासक या सेनापति या किसी साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर की बात थी।

बड़े होने पर अकबर ने स्वयं अपनी धाय जीजी माहम अनगा; जिसने बादशाह अकबर को दूध पिलाया था और मिर्जा अज़ीज कोका की बहन थी, -की बेटी माहबानो बेगम से रहीम का विवाह कर दिया। इस सम्बन्ध से रहीम का भी बादशाह के घराने से वही सम्बन्ध हो गया जो इनके पिता का था। इतिहासकारों ने इनकी अन्य पत्नियों का भी विवरण दिया है किन्तु उन्हें उतना महत्त्व नहीं दिया जाता। मुंशी देवीप्रसाद जी के अनुसार माहबानो बेगम से रहीम को पांच पुत्र और दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं थीं। पहला पुत्र मिर्जा एरच ई. १५८५ में जन्मा था जो आगे चलकर बड़ा ही वीर तथा साहसी योद्धा सिद्ध हुआ। जहाँगीर ने इसे 'शाहनवाज

१. मुगलकालीन महान् वैज्ञानिक फतह उल्लाह शीराजी के बारे में विस्तार से जानने हेतु देखें : Fathullah Shirazi {A sixteenth century Indina scientist} नामक पुस्तक; जो कि National Institute of Sciences of India, New Delhi से ई. १९६८ में प्रकाशित है।

२. **''अज़ सिपहसालारि आली मिक़दार इस्तिमारफ़्त कि दर याज़ दह सालगी मराब गुफ़्तनि अशआर रगबत उफ्ताद''** -नहाबन्दी, भाग-२ के साक्ष्यों से 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ-१३५ पर उद्धृत.

खां' की उपाधि दी थी। दक्षिण के विजयों में यह अपने पिता के साथ होता था किन्तु अधिक मद्यपान के कारण ई. १६१८ में मृत्यु को प्राप्त हुआ। दूसरा पुत्र दाराब खां ई. १५८७ में उत्पन्न हुआ। यह भी बड़ा वीर तथा साहसी हुआ और पिता के साथ दक्षिण की लड़ाई में सम्मिलित हुआ करता था किन्तु जहाँगीर और शाहजहाँ के पारस्परिक कलह के कारण जब स्वयं रहीम कैद किये गए तो कैद के समय ही विद्वेष के कारण जहाँगीर की आज्ञा से महाबत खां ने दाराब खां का शिर काटकर रहीम के पास भिजवाया था, यह कहकर कि बादशाह ने तरबूज भिजवाया है और यह रहीम का लोकोत्तर और विलक्षण व्यक्तित्व किञ्च स्वभाव ही था जिसने बादशाह के मदान्ध तथा अधिकार-प्रमत्त इस अकार्य को भी क्षमा करते हुए बड़े ही गर्व से अपने पुत्र के कटे हुए शिर को देखकर कहा था : 'शहीदी है।' तीसरा पुत्र करन ई. १५९० में, चौथा रहमान दाद ई. सन् १६०० में पैदा हुए थे। पांचवां अमरुल्लाह कब पैदा हुआ इसकी कोई सूचना ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलती। रहीम की पुत्रियों में पहली जाना बेगम का विवाह जहाँगीर के पुत्र दानियाल के साथ हुआ था। दूसरी पुत्री खेरुल्निसा थी जिसे इतिहास में बड़े ही सम्मान के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसका विवाह समरबहादुर सिंह के अनुसार 'फहरंग-ए-जहाँगीरी' के लेखक के पुत्र मीर अमीनुद्दीन के साथ हुआ था।[१]

इसके बाद रहीम का ऐतिहासिक जीवन प्रारम्भ होता है जिस पर अनेकानेक ऐतिहासिक एवं सन्दर्भ-ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है। रहीम का यह ऐतिहासिक जीवन इतना विशाल एवं उलझा हुआ है कि यदि कोई इतिहासकार केवल इनके ऐतिहासिक एवं राजनैतिक व्यक्तित्व की समीक्षा पर ही लिखता जाये तो कई भागों में एक विशाल ग्रन्थ की रचना हो जाए। स्वयं इस प्रकार के समकालीन इतिहासकारों की रचनाएं भी आज उपलब्ध हैं जिनमें 'मआसिर-ए-रहीमी' (२५०० से अधिक पृष्ठों में समाप्त होने वाला एक ऐतिहासिक तथा समकालीन ग्रन्थ; जिसे रहीम के आदेश पर ही उनके आश्रयदाता अब्दुल बाकी नहाबन्दी ने लिखा था) को प्रमुख स्थान पर गिना जाता है। भारत के एकच्छत्र-सम्राट् अकबर के परम प्रिय एवं स्वयं अनेकानेक प्रदेशों के राज्यपाल खानखाना रहीम का जीवन जिस सुख एवं ऐश्वर्य में सराबोर दिखता है उसी रहीम के जीवन के अन्तिम दिन नाना

१. रहीम के पुत्र-पुत्रियों का यह संक्षिप्त विवरण मुंशी देवीप्रसाद जी के 'खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १३३ ३७ से प्रस्तुत किया गया है। अधिक विस्तार से जानने लिए इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ यथा 'मुन्तखाबुत्तवारीख, अकबरनामा, तारीख-ए-मिरआत-अहमदी, मआसिर-ए-रहीमी आदि को देखना चाहिये। इनका विस्तृत विवरण 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' में भी प्राप्य है।

प्रकार के कष्टों, दु:खों, स्वजनों तथा परिवार-जनों की हत्या तक के कारण अत्यन्त रोमाञ्चित भी कर देने वाले हैं। जीवन के उत्थान एवं पतन को जितना करीब से रहीम ने देखा है शायद ही मुगल-साम्राज्य के किसी शासक ने देखा हो। किन्तु अपने इस जीवन के उत्थान-पतन की परवाह किये बिना और प्रशासकीय पदों पर अत्यन्त कठिन किञ्च जटिल राजनैतिक कार्यों को निर्विघ्न सम्पादित करते हुए भी, समूचा जीवन कूटनीतियों एवं छल-छद्म के उपाय सोचने में ही व्यतीत करने वाले तथा ७२ वर्ष की बूढ़ी अवस्था तक तलवार की धार पर चलने और उसी पर सोने वाले रहीम ने जिस श्रद्धा, आस्था एवं त्याग के साथ भगवती सरस्वती और साक्षात् वाग्देवी कविता की उपासना की वह निश्चय ही विश्व-साहित्य के इतिहास में इस मुगल-सम्राट् को एक महान् साहित्यकार और साहित्य-सेवक के गौरवमय पद पर अभिषिक्त करने योग्य है। कालान्तर में विश्व-साहित्य के इतिहास ने बहुत ही श्रद्धा और प्रतिष्ठा के साथ सरस्वती के इस वरद-पुत्र को अपने स्वर्णिम पन्नों पर स्थान देकर अपने को गौरवान्वित भी किया।

अस्तु, रहीम के उस विचित्र एवं विलक्षण ऐतिहासिक जीवन को हम यहाँ प्रस्तुत न करने हेतु बाध्य हैं सो उत्सुक पाठक इससे सम्बन्धित तथ्यों को अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रन्थों की सहायता से पढ़ अपनी उत्सुकता को शान्त करेंगे। यहाँ हम इनके इस ऐतिहासिक जीवन के संक्षिप्ततम स्वरूप को प्रस्तुत कर देते हैं। निम्नलिखित विवरणों के आगे () कोष्ठक में प्रदत्त पृष्ठ-संख्या समर बहादुर सिंह की पुस्तक 'खानखाना अब्दुर्रहीम' की पृष्ठ-संख्या है। प्रस्तुत विवरणों को मूल रूप से तथा विस्तार-पूर्वक पढ़ने एवं समझने हेतु उपर्युक्त पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए —

* अब्दुर्रहीम का जन्म: बृहस्पतिवार, १७ दिसम्बर, सन् १५५६. (पृष्ठ-५)
* पिता की मृत्यु: पाटन, गुजरात के सहस्रलिङ्ग तालाब के समीप ३१ जनवरी, ई. १५६१ (पृष्ठ-८)
* बालक रहीम का अकबर के दरबार में आना : सितम्बर १५६१ (पृ. १०) रहीम का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा एवं शिक्षक : अकबर की देख रेख में, मुल्ला मुहम्मद अमीन एवं फतहउल्ला शिराजी के संरक्षण में (पृष्ठ १२).
* विवाह मिर्जा अजीज कोका की बहन 'माहबानो बेगम' के साथ, अन्य पत्नियां भी थीं। (पृष्ठ-१६)
* सन्तान : ५ पुत्र — क्रमशः मिर्जा एरच खां, मिर्जा दाराब खां, और मिर्जा करन खां, रहमानदाद एवं अमरुल्लाह। २ पुत्रियां, क्रमशः जाना बेगम जिसका

विवाह जहाँगीर के पुत्र दानियाल तथा दूसरी खेरुल्निसा का विवाह 'फरहंग जहाँगीरी' के लेखक के पुत्र मीर अमीनुद्दीन के साथ हुआ। (पृष्ठ-१७).

* गुजरात युद्ध में अकबर के साथ १५७२ एवं १५७३ ई. में लगातार दो बार सम्मिलित हुए। (पृष्ठ-१८).
* गुजरात प्रान्तपति पद पर नियुक्ति १५७६ ई. में। (पृष्ठ-२०).
* महाराणा प्रताप के विरुद्ध अकबर की ओर से मानसिंह के साथ मिलकर युद्ध, जून १५७० ई. में। (पृष्ठ.-२१) अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-२७७.
* महाराणा प्रताप के विरुद्ध दूसरी बार युद्ध, ४ अप्रिल १५७८ में (पृष्ठ.-२२), अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-३३९.
* मीरअर्ज के पद पर नियुक्ति, १५८० में (पृ.-२१), अ.ना.भाग-३, पृ. ४३९.
* अजमेर की सूबेदारी, १५८०-८१ में (पृष्ठ-२४) अ.ना. भाग-३, पृष्ठ-४८० सलीम के शिक्षक अतालीक के रूप में नियुक्ति तथा अताबेगी का पद जिसमें शाही घोड़ों का प्रबन्ध करना होता था, अजमेर से बुलाया जाना, सन् १५८२ में। (पृष्ठ: २४-२५) अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-५८३.
* गुजरात की सूबेदारी सन् १५८३ से १५८७ तक, इस समय रहीम की आयु २८ वर्ष थी। (पृष्ठ-३१).
* सरखेज का युद्ध विजय १६ जनवरी, सन् १५८४ में, युद्धविजय की स्मृति में अहमदाबाद में फतेहबाग नामक उद्यान की स्थापना। (मुन्तखाबुत्तवारीख, भाग-२, पृष्ठ-३४२).
* नादौत के युद्ध के लिए प्रस्थान, १० मार्च १५८४ ई.
* तुज़ुक-ए-बाबरी का फारसी अनुवाद एवं उसे बादशाह को समर्पित किया २४ नवम्बर १५८९ ई.। (पृ.-७८), मआसिर-ए-रहीमी, भाग-३, पृष्ठ-८६२.
* साम्राज्य के वकील, जो कि बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद होता था; पर नियुक्ति, गुजरात की जागीर के स्थान पर जौनपुर की जागीर, दिसम्बर १५८९ ई.। (पृष्ठ-७९), अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-८६५.
* 'बरवै नायिकाभेद' का सम्भावित रचनाकाल, १५९१ ई. कश्मीर में। (पृष्ठ - ८०-८१).
* सिंध विजय : १५९०-१५९१ ई.। (पृष्ठ : ८०-८१).
* जौनपुर की जागीरदारी के स्थान पर मुल्तान एवं भक्कर की जागीरदारी १५९० ई.। (पृष्ठ-८६) अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-९१७.
* दक्षिण विजय हेतु प्रस्थान अक्तूबर १५९३, अगले वर्ष अक्तू. १५९४ में पुनः प्रस्थान। (पृष्ठ-११९-१२०).

* खानदेश पर विजय ई. सन् १५९५. (पृष्ठ :१२१-१२२) अ.ना.-३, पृष्ठ १०४२.
* अहमदनगर दुर्ग पर आक्रमण १७ दिसम्बर १५९५, बहादुर निजाम शाह से सन्धि, अहमदनगर विजय २३ फरवरी १५९६ ई.। (पृष्ठ : १२६-१३४).
* बरार पर अधिकार और शाहपुर की स्थापना, नवम्बर-दिसम्बर १५९६ ई. (पृष्ठ : १३४-१३५), अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-१०५२.
* अस्बी का युद्ध जनवरी-फरवरी १५९७ ई.। (पृष्ठ-१३६ से १४३ तक).
* रहीम की पत्नी माहबानो बेगम का देहान्त २ मई १५९९ ई.। (पृष्ठ-१५०).
* दक्षिणी कमान पर पुनर्नियुक्ति २९ सितम्बर, १५९९ ई. (पृष्ठ-१५०).
* अहमदनगर का द्वितीय घेरा, दुर्ग-विजय १७ जनवरी, १६०१ ई. (पृ.-१५८).
* १६०१ से सन् १६१९ तक अनेकों बार दक्षिण भेजे एवं वापस बुलाए गए।
* १६२० से सन् १६२७ ईसवी तक अनेकों गृहयुद्धों, कुचक्रों और साम्राज्य सङ्घर्ष हेतु जहाँगीर एवं उसके पुत्रों के जाल में बुरी तरह फंसे रहे, यह समय खानखाना के जीवन का सबसे कष्टमय काल रहा। (पृष्ठ : १५८-२३१).
* मृत्यु ई. सन् १६२७ में ७२ वर्ष की आयु में, हुमायूँ के मकबरे के समीप एक भव्य एवं विशाल मकबरा पहले से ही स्वयं बनवा रखा था, उसी में दफनाए गए। (पृष्ठ-२३१) इकबालनामा, इलियट, भाग-६, पृष्ठ-४३४.

खानखाना : व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

(2) खानखाना अब्दुर्रहीम खां 'रहीम' के विलक्षण व्यक्तित्व एवं उनके अविस्मरणीय कृतित्व से सम्बन्धित विवरणों तथा तथ्यों की प्रस्तुति के इस प्रसङ्ग में हम यहाँ पहले ही बता दें कि इससे सम्बन्धित एक से बढ़कर एक पुस्तकें हिन्दी तथा फारसी भाषाओं में लिखीं; उपलब्ध हैं। बहुधा हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी, शोधार्थी तथा विद्वान् एवं अन्यान्य भाषाओं के विद्वान् भी रहीम के इस व्यक्तित्व एवं उनके तथाकथित कृतित्व से अनभिज्ञ नहीं हैं। तथापि हम यहाँ इसकी अत्यन्त संक्षिप्त परिचर्चा प्रस्तुत कर देते हैं। इस प्रस्तुति में भी हम यहाँ रहीम के तथाकथित ऐतिहासिक जीवन-परिचय से सम्बद्ध विवरणों को साक्षात् उन ग्रन्थों से प्रस्तुत न कर 'नवाबखानखानाचरितम्' में प्रस्तुत रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को पहले तथा उसके बाद 'खानखानाचरितम्' में उपलब्ध विवरणों अथवा तथ्यों की पुष्टि हेतु अन्य आधुनिक तथा रहीम के समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से सम्बद्ध विवरणों को प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रकार की प्रस्तुति के पीछे हमारा एक प्रयोजन यह भी है कि बहुधा आज तक रहीम के जीवन, व्यक्तित्व तथा कृतित्व के सम्बन्ध में जिन तथ्यों, साक्ष्यों, प्रमाणों व उद्धरणों को प्रस्तुत किया जाता रहा है उनका आधार

प्रायः ही फारसी तारीख (इतिहास) के ग्रन्थ रहे हैं या उनके अंग्रेजी अनुवाद। सूरजमल के 'वंशभास्कर' तथा याज्ञिक-बन्धुओं को उपलब्ध १८ वीं सदी के एक अन्य 'चगत्तावंशपरम्परा' जैसे दो ग्रन्थों को छोड़ हिन्दी या अवधी अथवा ब्रज में आज तक ऐसे किसी ग्रन्थ की सूचना नहीं प्राप्त हुई है जिसमें रहीम के ऐतिहासिक-जीवन तथा उनके उस तथाकथित व्यक्तित्व एवं कृतित्व का साङ्गोपाङ्ग विवरण प्रस्तुत किया गया हो। 'वंशभाष्कर' तथा 'चगत्तावंशपरम्परा' में भी प्रसङ्ग-प्राप्त आधार पर रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मात्र दो-चार या पाँच पृष्ठों की सामग्री को ही प्रस्तुत किया गया है।

किन्तु यह संस्कृत तथा उसके साहित्य का सौभाग्य ही समझना चाहिये कि जिसने आजन्म अपनी मातृ-भाषा तुर्की, राज्य-भाषा फारसी तथा धर्म-भाषा अरबी को छोड़ भारतीय तथा भारतीय जन-भाषा हिन्दी की सेवा की, उसमें सबसे अधिक साहित्य की रचना की; स्वयं उसी भाषा के समकालीन साहित्यकारों अथवा इतिहासकारों ने हिन्दी के इस महान् सेवक तथा विलक्षण महाकवि के जीवन को हिन्दी में प्रस्तुत नहीं किया और यदि इस प्रकार के स्तुत्य प्रयास किये भी गए, यथा - महाकवि गङ्ग के द्वारा; तो वह आज अपनी पूर्ण अवस्था में उपलब्ध नहीं। किन्तु यह संस्कृत के प्रति रहीम के वैयक्तिक प्रेम, स्वयं रहीम के संस्कृत-अध्ययन, ग्रन्थ-लेखन तथा संस्कृत के कवियों, लेखकों, विद्वानों तथा साहित्यकारों को रहीम द्वारा दिये गए उदार संरक्षण का ही सुपरिणाम है कि इस भाषा के विद्वानों तथा समकालीन साहित्यकारों ने रहीम की संस्कृत सेवा, संस्कृत-प्रेम व स्वयं उनके संस्कृत-अध्ययन, ऐतिहासिक जीवन, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के समग्र विवरण को, उनके सम्पूर्ण जीवन को संस्कृत-भाषा में एक उच्चकोटिक काव्य-ग्रन्थ के माध्यम से प्रस्तुत किया। वास्तव में यह रहीम के प्रति संस्कृतज्ञों की एक अद्वितीय तथा अविस्मरणीय श्रद्धाञ्जलि ही समझनी चाहिये और साथ ही अपना गौरव भी। संस्कृत के प्रति समर्पित इस अद्वितीय विद्वान्, कवि और ग्रन्थकार को उसकी सच्ची श्रद्धाञ्जलि तो तभी समर्पित होगी जब इस भाषा और साहित्य का दिनानुदिन उन्नति एवं विकास होगा किन्तु संस्कृत-रचनाधर्मी कवियों एवं संस्कृत-सेवी विद्वानों से मैं एतद् द्वारा यह निवेदन अवश्य करूंगा कि वे इस मध्यकालीन भारत की विराट् विभूति के जीवन को अपनी रचना का विषय अवश्य बनावें।

अस्तु, इस प्रकार प्रस्तुत 'नवाबखानखानाचरितम्' नामक काव्य-ग्रन्थ से रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण देकर हम अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रन्थों के समानान्तर इस विवरण का मूल्याङ्कन प्रस्तुत कर देते हैं जिससे अन्यान्य स्रोतों

से प्राप्त रहीम के व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व को समकालीन एक संस्कृत काव्य-ग्रन्थ जो कि आज तक अप्राप्य तथा अज्ञात था; के साक्ष्यों पर मूल्याङ्कित एवं प्रमाणित किया जा सके। 'नवाबखानखानाचरितम्' से रहीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्रस्तुति के इस प्रसङ्ग में भी हम सूचित करें कि रहीम के व्यक्ति के विविध पक्षों से यहाँ हम केवल उनकी 'वीरता एवं अपूर्व सेनापतित्व' तथा 'साहित्यकारों को उदार संरक्षण' इन दोनों पक्षों को ही महत्त्व दे रहे हैं। इनमें भी प्रथम पक्ष का प्रस्फुटन; अर्थात् रहीम की उत्कट शूरता, वीरता, दुर्धर्ष सेनापतित्व के गुण आदि की अभिव्यक्ति उनके संरक्षण में रहने वाले विविध भाषा-भाषी कवियों की स्तुति-परक रचनाओं में बहुत ही सूक्ष्म रूप से हुआ है अतः दोनों की तारतम्यता और तथ्यों की प्रस्तुति में दोनों ही पक्षों के पारस्परिक संबन्धों के मद्देनजर मात्र इन दोनों ही व्यक्तित्व-पक्षों को प्रस्तुत किया जा रहा है। सुधी पाठक रहीम की वीरता के प्रसङ्ग को उस शीर्षक में तो पढ़ें ही रहीम के संरक्षण में रहने वाले विविध कवियों की रचनाओं के प्रसङ्ग में भी इसका आनन्द लें।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'नवाबखानखानाचरितम्' चूंकि एक लघुकाय चम्पूकाव्य है और इसकी रचना एक गंभीर राजनैतिक-गुत्थी या समस्या को सुलझाने हेतु किया गया था अतः इसके रचयिता ने समग्र काव्य के वर्ण्य-विषय या प्रतिपाद्य को बहुत ही संक्षेप में प्रस्तुत कर इस चम्पू को समाप्त कर दिया है। अतः रहीम के समग्र जीवन या उनके सुविस्तृत जीवन के विविध पक्षों अथवा विविध भाषाओं में सुविस्तृत उनके रचना-संसार को इस लघुकाय चम्पूकाव्य में ढूंढ़ने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

रुद्रकवि ने रहीम के विलक्षण जीवन के विविध उदात्त पक्षों का स्पर्श तो किया है किन्तु बहुत ही संक्षेप में। उनके विविध भाषा-ज्ञान, विविध लिपि-ज्ञान, इन भाषाओं में उनके कवित्व, कवियों, रचनाधर्मियों तथा कलाकारों को उनके द्वारा प्रदत्त उदार संरक्षण, उनके विलक्षण दानी-व्यक्तित्व आदि कई महत्त्वपूर्ण विन्दुओं को रुद्रकवि ने अपनी कविता का विषय तो बनाया है किन्तु यह कविता बहुत ही संक्षेप में प्रवर्तित है। रुद्रकवि के इस संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति या इस काव्य को उनके द्वारा अत्यन्त लघु बनाने के पीछे जो कारण रहे हैं; हम बता चुके हैं कि वह इस ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य-मात्र है।

अस्तु, 'नवाबखानखानाचरितम्' में रहीम के जीवन से सम्बन्धित जितने भी विन्दुओं अथवा व्यक्तित्व के पक्षों का समावेश हो सका है; उन सभी की चर्चा हम निम्नवत् प्रस्तुत करते हैं —

वीरता एवं अपूर्व सेनापतित्व :

समकालीन एवं परवर्ती अनेकानेक फारसी-इतिहास लेखकों व इन फारसी-इतिहास ग्रन्थों के अंग्रेजी-अनुवादकों, आधुनिक इतिहास-लेखकों आदि ने रहीम की अद्भुत वीरता, शूरता तथा उनके दुर्धर्ष सेनापतित्व की जी भर प्रशंसा की है। समकालीन ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के साथ ही उनके संरक्षण में रहने वाले व उनसे विविध प्रकार के मान-सम्मान, पुरस्कार, गौरव एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले हिन्दी-कवियों के उपलब्ध कवित्तों; जिन्हें हम आगे प्रस्तुत करेंगे, -के आलोक में रहीम एक दुर्धर्ष, अपराजेय एवं विकट सैनिक व सेनापति सिद्ध होते हैं।

रुद्रकवि ने अपने चम्पूकाव्य में निम्नलिखित स्थलों पर रहीम या नवाब खानखाना की विलक्षण वीरता का वर्णन किया है —

येनारातितमिस्रघर्ममहसा पाणौ गृहीता युधि
प्रासूत प्रथितौ कृपाणलतिका कीर्तिप्रतापौ यमौ।
सर्वोर्वीपति-चक्र-चारु-मुकुटालङ्कार-चूडामणिः
खानक्षोणिपतिः क्षितौ विजयतामाचन्द्रसूर्यार्णवम्।।

मार्गे पृच्छन्ति पान्थानिति पुलिनपतत्कूजितैः सिन्धवोऽयं
वीरश्रीखानखानक्षितिपतिरवनीं शास्ति कल्याणतः किम्।
यस्योद्यत्खड्ग-धारा-दलित-रिपुवधू-दृक्पयःपूरिभूरि-
स्फारीभूतप्रवाहाश्चिरमिह जलधेः सङ्गसौख्यं भजामः।।

प्रतापस्ते वह्निस्तदनुमितिहेतुः प्रतिभटा-
यशस्तोमो धूमः प्रसरति नवाबक्षितिपते।
यतः शत्रुश्रेणीहरिणनयनामण्डलदृशाम्
अजस्रं वाष्पाम्बुप्रसरविरतिर्नैव भवति।।

नवाब! नृपकेतने त्वयि कृतप्रयाणोद्यमे
किमद्भुतमितस्ततः क्षितिपमण्डली लीयते।
भवत्कटक-घोटक-स्फुट-खुर-त्रुटद्धूरट-
द्रजस्ततिषु लीयते दिनकरोऽपि यत्कातरः।।

श्रीमद्वीरनवावसैन्यवखुरक्षुण्णां क्षितिं मूर्छितां
संवीक्ष्य प्रतिभूपतिप्रियतमाः सिञ्चन्ति नेत्राम्बुभिः।

लीलाकम्पितकर्णतालपवनैः संवीजयन्ति द्विपा
जानीमो दिवि धूलिधोरणिरियं छायार्थमुत्सर्पति ।।

भवत्करकृपाणिका-हतविपक्षपक्षोच्छल-
च्छिरःकमलसिंहिकासुतसहस्रशङ्काकुलः ।
सहस्रकिरणः स्फुरत्तुरगटापटंकात्रुट-
द्धरातलचलद्रजःपटलपर्वते लीयते ।।

सुस्नातस्तरवारवारिणि यशोधौताम्बरं धारयन्
सन्मन्त्रं कलयन् परास्यकमलैर्भूदेवतां पूजयन् ।
जुह्वच्चैतदसून् प्रतापदहने त्वच्चण्डदोर्विक्रमः
शत्रुच्छत्र-धरार्थ-दर्प-यशसां प्राणाहुतीराददे ।।

एताः सम्प्रति गर्भगौरवभराद्वीरावरोधङ्गनाः
कान्तारेषु पलायितुं वत कथं पद्भ्यां भवेयुः क्षमाः ।
इत्यालोच्य नवाववीर ! भवतः संग्रामनादीभवत्
भैरीभांकृतिभिः सखीभिरिव किं तद्गर्भपातः कृतः ।।

पलायितजने भवन्निशितबाणनिर्मूलित-
प्रतीप-नृपपत्तने पतित-हार-मुक्ताफले ।
न तिष्ठति नखोदरक्षपितकुम्भमुक्ताफल-
द्विपारिवसतिभ्रमादपि किरातशातोदरी ।।

उपर्युक्त पद्यों के अलावा रहीम के ऐतिहासिक-जीवन से सम्बन्धित तथ्यों तथा विवरणों को रुद्रकवि ने गद्यों में भी प्रस्तुत किया है। वैसे तो समग्र 'खानखानाचरितम्' का वर्ण्य-विषय ही रहीम के जीवन को प्रस्तुत करना है किन्तु इस प्रसङ्ग में जिन पद्यों तथा जिन गद्यों में यह प्रस्तुतीकरण अधिक सफल हो सका है, यहाँ हम उन्हीं कतिपय पद्यों तथा गद्यों को उद्धृत कर रहे हैं। निम्नलिखित कुछ वृत्तगन्धि-प्रकारक गद्यों में रहीम के अद्भुत शौर्य एवं पराक्रम के साथ ही उनकी वीरता व अद्भुत सेनापतित्व के गुण संबन्धी तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है —

कठोरकृपाणनखाग्रविदारितवैरिनराधिपमत्तामतङ्गजकुम्भसमुद्भूत-कीर्तिकदम्बकमौक्तिकहारविभूषितभूमिवधूघनपीनतरोदयभूधरचरमाचल-मयकुचमण्डल वीरधुरन्धर चलति भवत्यरिपत्तानम्। उत्तामतावकघोटक-खुरतटपाटितभूमितलोत्थितधूलिसमूहमपोहितुमिव शत्रुकुरङ्गदृशः

स्रवदञ्जनसङ्कुललोचनवारि किरन्तु परन्तु न (विदन्ति) पिच्छिलिते पथि कथमिव विन्ध्यमहीधरकाननवीथिपलायनक(र्म) भवेदिति ।

उपर्युक्त पद्यों एवं गद्यभाग के अतिरिक्त 'नवाबखानखानाचरितम्' के द्वितीय उल्लास के १५, १८-१९ संख्यक पद्यों एवं तृतीय उल्लास के २-६, इसके बाद के गद्यखण्ड तथा ९ वें पद्य में भी रहीम की दुर्दान्त वीरता एवं उनके दुर्धर्ष पराक्रम किञ्च सेनापतित्व का वर्णन किया गया है । निश्चय ही इन गद्य-पद्य-भागों में काव्य-मार्ग के एवं उसकी शर्तों के अनुरूप वर्णनातिरेक तथा रहीम की इस वीरता के प्रसङ्ग में कुछ अत्युक्ति अथवा अतिशयोक्ति का समावेश कर दिया गया है । साथ ही ओज तथा समासभूयस्त्व पर जीवित रहने वाले गद्य-काव्य की विशेष शर्तों के अनुरूप ही उसके अन्तर्गत आने वाले पद्यों में भी ओजःसमासभूयस्त्व के अनुरूप उत्प्रेक्षा का अतिशय प्रयोग कर वर्णनीय विषय अथवा तथ्य को किञ्चित् बढ़ा-चढ़ाकर ही प्रस्तुत किया गया है किन्तु इन वर्णनों को हम समकालीन ऐतिहासिक-ग्रन्थों में उपलब्ध रहीम के दुर्धर्ष पराक्रम, अद्भुत वीरता तथा विलक्षण सेनापतित्व के साक्ष्य के आलोक में कहीं से भी अतिरेकपूर्ण या अत्युक्तिपूर्ण नहीं कह सकते । हाँ इसके विपरीत यह अवश्य कहा जा सकता है इन वर्णनों में रहीम की जिस वीरता या उनके जिस पराक्रम का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह इससे भी कहीं अधिक प्रशंसनीय था किन्तु, चूंकि काव्यमार्ग में ऐसे वस्तुवृत्तों के प्रस्तुतीकरण का अपना एक अलग अंदाज होता है और उसमें ऐसे किसी युद्ध के वर्णन; जिसमें नायक ने प्रतिपक्ष की सेना को तहस नहस कर दिया हो, -तो क्रान्तद्रष्टा कवि केवल प्रतिपक्ष के सैन्य-वीरों की दुर्दशा का ही वर्णन नहीं करता अपितु वह उनकी हरिणनयना नायिकाओं की आंखों से निरन्तर बहने वाले आंसुओं की धारा में भींगने वाले उसके उन्नत उरोजों तक का यूं वर्णन कर देता है मानों ये स्तन, व्रत कर रहे थे और अब इन अश्रु-विन्दुओं के पान से वह अपने व्रत का उद्यापन कर रहे हों । उपर्युक्त एक पद्य (२/१०) में युद्ध के वाद्ययंत्रों के भयङ्कर कोलाहल के द्वारा शत्रु की गर्भवती पत्नियों का जो सखी के समान गर्भपात कराने में सहयोग किया जाता है वह निश्चय ही इस प्रकार के अतिरेकपूर्ण वर्णनों में ध्यातव्य है । किन्तु इस प्रकार के किसी एक या अनेक वर्णनों से उन तथ्यों के याथातथ्य पर पूर्णरूपेण सन्देह प्रकट कर; अविश्वास नहीं कर लेने की परम्परा से काव्यविद् विद्वान् और प्रतिभावान् सहृदय काव्य-पाठक अच्छी तरह परिचित हैं सो यहाँ इस पर और अधिक विस्तार से चर्चा करने की आवयकता नहीं । नीचे हम रहीम की उस दुर्धर्ष, दुर्जेय और अप्रतिम वीरता किञ्च पराक्रम से सम्बन्धित विवरणों को, जो कि समकालीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं; -प्रस्तुत कर देते हैं —

* गुजरात-युद्ध में अकबर के साथ सम्मिलित हुए १५७२ एवं १५७३ ई. में लगातार दो बार (खानखानानामा, भाग-२ पृष्ठ : ४-६).
* गुजरात-विजय के उपलक्ष्य में गुजरात-प्रान्तपति पद पर नियुक्ति १५७६ ई. में। (खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ : ५-६).
* कुम्भलमेर (मेवाड़) पर आक्रमण और उसके दुर्ग पर विजय बैशाख बदी, गुरुवार, १५८८ ईस्वी में। इसी समय गोगूंदा तथा उदयपुर पर विजय। (ख़ानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-६).
* महाराणा प्रताप के विरुद्ध शहबाज खां एवं मानसिंह के साथ मिलकर क्रमशः दो वर्षों तक लगातार युद्ध, जून १५७० ई. में।
* महाराणा प्रताप के विरुद्ध दूसरी बार युद्ध, ४ अप्रिल १५७८ ई. में (खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-६ तथा अ.ना. भाग-३, पृ.-२७७ तथा ३३९).
* मीरअर्ज के पद पर नियुक्ति, १५८० ई. में। (अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ-२१) अ.ना. भाग-३, पृष्ठ-४३९.
* अजमेर की सूबेदारी, १५८०-८१ ई. में (खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-८), अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ--४८०.
* गुजरात की सूबेदारी सन् १५८३ से १५८७ तक, इस समय रहीम की आयु २८ वर्ष थी। (अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ-३१).
* गुजरात पर आक्रमण और मुजफ्फर पर विजय माघ सुदी, १४ गुरुवार, संवत् १६४० में। यह बड़ा ही ऐतिहासिक युद्ध और विजय सिद्ध हुआ था। किन्तु मुजफ्फर इस युद्ध से भागने में सफल हो गया था और कुछ दिन बाद उसने फिर अपना सिर उठाया तो पुनः उस पर आक्रमण किया गया और बड़ौदा में उसके साथ चैत बदी १२ संवत् १६४० (ई. १५८३) में भीषण संग्राम हुआ। उसकी सेना के दो हजार सैनिकों को रहीम ने समाप्त कर डाला था और पांच सौ को जिन्दा पकड़ लिया था। इस विजय के उपलक्ष्य में ही बादशाह ने इन्हें 'खानखाना' की वही प्राचीन किन्तु गौरवपूर्ण उपाधि प्रदान की थी जिसे कभी इनके पिता को दिया गया था। (खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ : १५-१६).
* सरखेज का युद्ध विजय १६ जनवरी, सन् १५८४ में, जिसका सम्बन्ध ऊपर के युद्ध से भी है। भयङ्कर युद्ध के बाद विजयश्री प्राप्त की। अनेकानेक समकालीन ग्रन्थों में इस युद्ध को रहीम के सबसे कठिन एवं भीषण युद्धों में गिना जाता है। इस युद्धविजय की स्मृति में ही रहीम ने

अहमदाबाद में फतेहबाग नामक उद्यान की स्थापना, जिसकी प्रशंसा जहाँगीर ने अपने ग्रन्थ में की है। (Muntkha-but' Tawarikh, vol.-2, page-342.) तथा खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-१६).

* मुजफ्फर के मण्डूचकी-किले पर विजय। (खान..नामा, भाग-२, पृ.-१९).
* नादौत के युद्ध के लिए प्रस्थान -१० मार्च १५८४ ई.।
* मुगल-सम्राज्य की ओर से सिन्ध पर आक्रमण एवं भीषण युद्ध के बाद सिन्ध, मुलतान, कन्धार आदि विजय : १५९०-१५९१ ई. में जिसने तैमूरिया सल्तनत की नींव को अफगानिस्तान की सीमा तक पहुंचा दिया था। (खानखानानामा, पृष्ठ : २४-२५).
* जौनपुर की जागीरदारी के स्थान पर मुल्तान विजय के उपलक्ष्य में मुल्तान एवं भक्कर की जागीरदारी १५९० ई.। (पृष्ठ-८६) अ.ना.-३, पृ.-९१७
* दक्षिण विजय हेतु प्रस्थान, अक्तूबर १५९३ ई., अगले वर्ष अक्तू. १५९४ ई. में पुनः प्रस्थान। (पृष्ठ : ११९-१२०).
* खानदेश पर विजय ई. सन् १५९५ में जिससे सम्बन्धित एक संक्षिप्त विवरण तो स्वयं रुद्रकवि ने अपने पूर्वोक्त राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य में भी दिया है किन्तु वह पूर्ण नहीं है। इस युद्ध में चाँदबीबी के साथ बड़ा ही भयङ्कर युद्ध लड़ा गया था जिसे आज तक इतिहास में गौरव के साथ याद किया जाता है। (अब्दुर्रहीम खान...पृष्ठ-१२१-१२२) अ.ना.-३, पृ.-१०४२.
* अहमदनगर दुर्ग पर आक्रमण १७ दिसम्बर १५९५ ई., बहादुर निजाम शाह से सन्धि, अहमदनगर विजय २३ फरवरी १५९६ ई. में। इसका भी कुछ विवरण हम ऊपर रुद्रकवि के साक्ष्यों से प्रस्तुत कर आये हैं। (खान.. अब्दुर्रहीम, पृष्ठ : १२६-१३४)
* बरार जो कि दक्षिणी राज्यों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था; पर अधिकार और इस विजय के उपलक्ष्य में शाहपुर की स्थापना, नवम्बर-दिसम्बर १५९६ ई.। (अकबरनामा, भाग-३, पृष्ठ-१०५२).
* अस्बी का युद्ध जनवरी-फरवरी १५९७ ई.। (पृष्ठ-१३६-१४३ तक).
* खानखाना की दक्षिणी कमान पर पुनर्नियुक्ति २९ सितम्बर, १५९९ ई।
* अहमदनगर का द्वितीय घेरा और दुर्ग विजय १७ जनवरी, १६०१ ई., जबकि अहमदनगर को पूर्णतः मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था।

साहित्य-प्रेम एवं साहित्यकारों को संरक्षण :

रहीम के साहित्य-प्रेम एवं अन्यान्य भाषाओं के साहित्यकारों, कवियों तथा रचनाधर्मियों को उनके द्वारा प्रदत्त उदार संरक्षण की चर्चा समकालीन तथा आधुनिक इतिहास के प्रमुख ग्रन्थों तथा रहीम-काव्य सम्पादकों के अनेकानेक संस्करणों किञ्च रहीम-साहित्य की समीक्षा परक व अनुसन्धान-परक पुस्तकों में बड़े ही सम्मान के साथ की जाती है। भारत ही नहीं, रहीम के इस साहित्य-प्रेम व साहित्य-संरक्षण की कीर्ति-पताका यहाँ से सुदूर ईरान के बादशाह के दरबार तक फहरा करती थी। मआसिर-ए-रहीमी, मआसिरुल् उमरा, अकबरी दरबार, तुजुक-ए-जहाँगीरी, अकबरनामा, खानखानानामा आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसी समकालीन एक ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि रुद्रकवि की प्रस्तुत रचना से भी होती है जिसमें उन्होंने रहीम के इस उदार साहित्य-प्रेम तथा अद्भुत साहित्य-संरक्षण का बहुत ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। रचना-उद्देश्यों के भिन्न होने के कारण यद्यपि रुद्रकवि ने इस परिचर्चा को अत्यन्त संक्षिप्त रखा किन्तु प्रसङ्गवश रहीम के गुणों के वर्णन के प्रसङ्ग में उनके द्वारा जो वर्णन या विवरण प्रस्तुत किये गए हैं उनको यदि समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के समानान्तर रखकर पढ़ा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रसङ्ग में भी रुद्रकवि ने तथ्यों के अनुरूप ही अपने विवरणों को प्रस्तुत किया है। 'खानखानाचरितम्' के द्वितीय उल्लास के निम्नलिखित पद्यों में रहीम के साहित्य-प्रेम तथा साहित्यकार-संरक्षण का विवरण प्रस्तुत किया गया है —

श्रीखानखान-कलिकर्ण-नरेश्वरेण
विद्वज्जनादिह निवारितमादरेण।
दारिद्र्यमाकलयति स्म नितान्तभीतं
प्रत्यर्थिवीरधरणीपतिमण्डलानि ।।
श्रीखानखान-नृप-केसरि-पुङ्गवेन
दारिद्र्यदन्तिनि हते गुणिना जनानाम्।
तत्कुम्भमण्डलविदारणतूर्णनिर्यत्-
सत्कीर्तिमौक्तिकचयेन दिशो विभान्ति ।।
कीर्ते श्रीखानखानक्षितिप कुलमणेः क्व प्रयास्यम्बुराशिं
किं कार्यं श्रीनिदेशः कथय कथमये तात सिन्धो ! जडात्मन्।
गाम्भीर्यादीनगण्यानतिविमलगुणान् मत्पतेर्माऽनुकार्षी-
स्त्वत्क्रोधान्मत्सपत्नी-सदन-विबुधसान्मामसौ यत्करोति ।।

अस्तु, यहाँ हम संस्कृत-साहित्य के इतिहास से भिन्न हिन्दी एवं फारसी साहित्य के इतिहास के स्रोतों के आधार पर रहीम के इस उत्कट साहित्य-प्रेम एवं साहित्य-संरक्षण से सम्बन्धित विवरणों को प्रस्तुत करते हैं। रहीम-साहित्य के महान् उद्धारक एवं सम्पादक मायाशङ्कर याज्ञिक जी ने रहीम के साहित्य-प्रेम और कवियों, लेखकों तथा रचनाधर्मियों को रहीम द्वारा दिये गए उदार संरक्षण की चर्चा करते हुए कहा है[१] —

"रहीम यदि स्वयं लेखक वा कवि नहीं होते और कविजनों के आश्रयदाता ही रहे होते तो भी उनका नाम साहित्य संसार में सदा के लिए स्मरणीय हो जाता। परन्तु उनका सा आश्रयदाता और कवियों के लिये मानप्रद कोई भी बादशाह नहीं हुआ। जितने कवियों ने रहीम की प्रशंसा लिखी है उतने कवियों ने अन्य किसी की महिमा नहीं गाई।"

पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक के अलावे रहीम-साहित्य के स्वनामधन्य सम्पादकों तथा अपने-अपने युग के विश्रुत गवेषकों ने भी रहीम के विविध भाषा-ज्ञान, विविध-भाषाओं से उनके प्रेम और उनमें रहीम के पाण्डित्य तथा साहित्यकारों को उनके अद्वितीय एवं अविस्मरणीय संरक्षण की जी भर प्रशंसा की है।[२] रहीम के विलक्षण अध्येता एवं अनुसन्धान-कर्ता समरबहादुर सिंह ने 'मआसिर-ए-रहीमी' के साक्ष्यों से रहीम के इस उदार साहित्य एवं साहित्यकार-संरक्षण पर एक समकालीन प्रत्यक्ष विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार —

"अ़ब्दुल बाकी नहाबन्दी ने अपनी कृति 'मआसिर-ए- रहीमी' के तीसरे भाग में खानखाना के दरबार में रहने वाले कवियों, दार्शनिकों तथा विद्वानों का विस्तृत परिचय दिया है। उनमें से चौरानबे कवियों तथा पचास अन्य प्रकार के विद्वानों का तो सर्वाङ्गीण चित्रण है। खानखाना की प्रशंसा में रचे गए एक सौ बयासी कसीदे, ग्यारह तरकीब बन्दिशें, छः तरजी-बन्दें, पांच दीर्घ मसनवियां, सात साकीनामे, चौवन गजलें तथा कतिपय अन्य कविताएं भी उसमें दी गई हैं।"[३]

रहीम के इस उदार साहित्य-संरक्षण को हम तीन वर्गों में विभक्त पाते हैं। इसके अनुसार प्रथम वर्ग में फारसी के साहित्यकार, कवि एवं लेखक हैं।

१. 'रहीमरत्नावली, भूमिका, साहित्यसेवा, पृष्ठ-११.

२. इससे सम्बन्धित विवरण के लिये रहीम काव्यों के विभिन्न संपादकों की भूमिका देखनी चाहिए। ऐसे संपादित संस्करणों की एक सूची हमने इस पुस्तक की 'संदर्भ-ग्रन्थ-सूची' में प्रस्तुत कर दी है।

३. देखिये : 'अब्दुर्रहीम खानखाना, पृष्ठ : २८८-२८९.

इन फारसी कवियों तथा रचनाधर्मियों की रचनाएं और स्वयं उनका जीवनवृत्त भी उपलब्ध है। ऐसे अनेकानेक फारसी-कवियों का विवरण रहीम विशेषज्ञों ने अपने अनुसन्धान परक ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। दूसरे वर्ग में हिन्दी के साहित्यकार, कवि तथा लेखक आते हैं जिनकी संख्या दर्जनों से ऊपर है। इनमें अधिकांश की वे रचनाएं जो मात्र रहीम के सन्दर्भ में या उनकी प्रशंसा में रची गई हैं; समग्र रूप में नहीं मिलतीं किन्तु छिटपुट जो उपलब्ध हैं उनकी भी संख्या संतोषप्रद है और मात्र इतने से भी रहीम के इस विलक्षण साहित्य-प्रेम और साहित्य-संरक्षण का अनुमान किया जा सकता है। तीसरे वर्ग में संस्कृत के कवि, विद्वान्, ग्रन्थकार और साहित्यकार आते हैं। किन्तु यह फारसी और हिन्दी की तुलना में संस्कृत का दुर्भाग्य ही मानना चाहिए कि संस्कृत-साहित्य के अधुनापर्यन्त लिखित किसी भी इतिहास ग्रन्थ में ऐसे किसी भी संस्कृत कवि, ग्रन्थकार या साहित्यकार का समग्र तथा प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं जो रहीम के संरक्षण और आश्रय में रहा हो। विगत शताब्दी के मध्य-भाग में प्राच्य-विद्या एवं संस्कृत के अज्ञात साहित्य के महान् प्रेमी व अन्वेषक यतीन्द्र विमल चौधरी के सत्प्रयास व उनके शोध-परक स्तुत्य कार्यों से इस ओर कतिपय ऐसे संस्कृत-कवियों या ग्रन्थकारों की पहचान व उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त किया जा सका है जो रहीम के साक्षात् संरक्षण व आश्रय में थे और इसी उदार आश्रय की छत्रच्छाया में उन्होंने अनेकानेक ग्रन्थों की रचना की थी। डॉ. चौधरी ने इस प्रकार के एक ज्योतिष-विद्वान्, ग्रन्थकार श्रीकृष्ण दैवज्ञ का परिचय तथा उनकी रचना 'जातकपद्धत्युद्धरण' का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस ग्रन्थकार को रहीम से संरक्षित तथा आश्रित बताया है। 'इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी, लन्दन तथा 'गायकवाड़ ओरियण्टल इंस्ट्यूट, बड़ौदा से प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने 'जातकपद्धत्युद्धरण' का सम्पादित संस्करण भी प्रकाशित किया था। इसके अलावा आज तक संस्कृत-साहित्य के इतिहास में किसी भी ऐसे कवि या विद्वान् का उल्लेख नहीं किया गया है जो रहीम से संरक्षित रहा हो और उनके आश्रय में ग्रन्थ रचना की हो। किन्तु इस अनुल्लेख का आशय यह कभी नहीं लगाना चाहिए कि रहीम के संरक्षण में संस्कृत के कवि, विद्वान् या लेखक थे ही नहीं क्योंकि यह ऐतिहासिक साक्ष्यों के बिलकुल प्रतिकूल तथा असङ्गत होगा। रहीम की संस्कृत-विद्वत्ता, संस्कृत-पाण्डित्य, स्वयं इस भाषा में उनके द्वारा ग्रन्थ-लेखन तथा कविता के व्याज से उनका वह उन्मुक्त संस्कृत-लेखन जो कि 'मदनाष्टक, 'खेटकौतुकम्' तथा 'द्वात्रिंशद्योगावली' में भाषा-सम्मिश्रण के रूप में प्राप्त होता है, -के परिशीलन से ऐसा कभी-भी नहीं कहा जा सकता कि इन ग्रन्थों का लेखक

संस्कृत-कवियों के एक विशाल समवाय से अहर्निश घिरा नहीं रहता था। अकबरी दरबार में संस्कृत-ग्रन्थों के फारसी-अनुवादों का जो एक महान् यज्ञ आयोजित था और इस यज्ञ में जो समूचे भारत के नामी-गिरामी विद्वान्, आचार्य, कवि और साहित्यकार उपस्थित थे -वे कविता और कवियों के तत्कालीन इस महान् संरक्षक, प्रेमी और स्वयं कवि-हृदय मुगल-शासक; जो कि एक-एक छन्द पर छत्तीस लाख रुपये तक पुरस्कार दे देता था; से अलग रहे होंगे या इसके सम्पर्क में नहीं आये होंगे या इसके उदार संरक्षण और आश्रय से लाभान्वित नहीं हुए होंगे -इन बातों पर सहजता से विश्वास नहीं किया जा सकता। अब प्रश्न यह है कि यदि संस्कृत के कवि और विद्वान्, पण्डित और साहित्यकार रहीम के संरक्षण में थे तो उनका विवरण क्यों नहीं उपलब्ध होता ? तो इसका सीधा सा उत्तर यह है कि रहीम से संरक्षित ऐसे विद्वानों, पण्डितों, कवियों और साहित्यकारों एवं उनके साहित्य पर आज तक संस्कृत-समाज ने अनुसन्धान एवं गवेषणात्मक शोध दृष्टि डाली ही नहीं है। निश्चय ही रहीम से संरक्षित ऐसे किसी कवि के ऊपर क्या स्वयं रहीम की संस्कृत-रचनाओं पर ही आज तक संस्कृत की मुख्य शोध एवं अनुसन्धान की परम्परा ने कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं किया है, तो ऐसे कवियों और साहित्यकारों का विवरण और उनकी रचनाओं को कहाँ से प्रस्तुत किया जा सकता है जिसे हम रहीम से संरक्षित कह सकें। किन्तु भविष्य में यदि इस ओर ध्यान दिया गया और रहीम के संस्कृत-प्रेम और उनकी संस्कृत-रचनाओं तथा संस्कृत-साहित्य को उनके योगदान पर यदि संस्कृत की मुख्य अनुसन्धान और शोध-परम्परा ने कुछ कार्य किया तो निश्चय ही ऐसे अज्ञात तथ्यों को प्रकाशित किया जा सकता है।

इस क्रम में हम एक अत्यन्त अज्ञात तथ्य को यहाँ प्रस्तुत करते हैं। रहीम साहित्य के विशेषज्ञों ने बहुधा रहीम-जगन्नाथ त्रिशूली के सन्दर्भ में निम्नलिखित पद्य को अनेकों बार पढ़ा होगा —

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु।
नाऽपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन।।

प्रायः ही रहीम-काव्य-सम्पादकों ने इस पद्य को प्रस्तुत कर रहीम के उदार हृदय की प्रशंसा की है। इसके अनुसार रहीम के संरक्षण में या उनके आश्रय में या उनके परिचित कवि-मित्रों में एक ने; जिसका नाम जगन्नाथ त्रिशूली था, उपर्युक्त पद्य लिखकर रहीम को दिया। रहीम ने इस पद्य को पढ़ा और उसके प्रतिपाद्य पर अपने विचार के अनुकूल; अक्षरों में मामूली सा परिवर्तन कर पुनः इस पद्य को उस कवि के हाथों दे दिया। रहीम द्वारा परिवर्तित यह पद्य इस प्रकार था —

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु ।
नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन ।।

अस्तु, यहाँ रहीम के व्यक्तित्व की उदारता और उनके उदार व्यक्तित्व का एक छोटा सा दृष्टान्त उपर्युक्त पद्य में समाहित है और इसी के प्रस्तुतीकरण में रहीम-काव्य के सम्पादकों ने अपने-अपने संग्रहों में इस पद्य को प्रस्तुत किया है। किन्तु आज तक किसी भी सम्पादक ने यह स्पष्ट नहीं बताया है कि यह जगन्नाथ त्रिशूली कौन थे ? रहीम के संस्कृत-परक अवदान पर कार्य करते समय तथा 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' नामक पुस्तक लेखन के समय प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने इस अज्ञात और अल्प-चर्चित विषय पर मात्र जिज्ञासा-वश कुछ ऐसे साक्ष्य एवं स्रोत एकत्रित किये थे जिनसे यह सप्रमाण सिद्ध हो गया कि यह जगन्नाथ त्रिशूली कोई अन्य नहीं संस्कृत काव्य-शास्त्र के पुरोधा और 'रसगङ्गाधर' जैसी लोकोत्तर कृतियों के अमर रचनाकार पण्डितराज जगन्नाथ ही हैं जिनकी अन्यान्य रचनाओं के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में भी उनके उपनाम के रूप में 'त्रिशूली' पद का प्रयोग किया गया है। इस प्रस्थापना से न केवल रहीम से संरक्षित संस्कृत कवियों, विद्वानों तथा ग्रन्थकारों के सन्दर्भ में ही नवीन तथ्य की सम्पुष्टि होती है वरन् पण्डितराज जगन्नाथ के विषय में भी यह नवीन प्रस्थापना स्थित होती है कि वे रहीम के संरक्षण में भी आ चुके थे और रहीम व उनके बीच काव्यीय आदान-प्रदान हुआ करते थे।[१]

नीचे हम रहीम से संरक्षित कतिपय हिन्दी-कवियों एवं उनकी उन स्फुट रचनाओं को प्रस्तुत कर देते हैं जिनमें रहीम के साहित्य-प्रेम, साहित्य-संरक्षण आदि को प्रस्तुत किया गया है —

१. महाकवि केशवदास :

अनेकानेक रहीम-साहित्य समीक्षकों जिनमें पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक[२] प्रमुख हैं; के अनुसार सनाढ्य ब्राह्मण कुल में वि.सं. १६६९ में उत्पन्न काशीराम के पुत्र तथा ओड़छा-नरेश इन्द्रजीत के आश्रित हिन्दी के महाकवि और आचार्य केशवदास कुछ काल के लिए रहीम के संरक्षण में थे। 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' में केशवदास ने रहीम की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्यों को प्रस्तुत किया है —

---

१. जगन्नाथ त्रिशूली तथा पण्डितराज जगन्नाथ की अभिन्नता हेतु संस्थान द्वारा प्रकाशित 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' पुस्तक को देखना चाहिए।

२. देखिए : 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ : ६५-६६ तथा 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ-१४२ तथा 'खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-१०६.

बइरमखां पुत्र सो हुमायूं को साहि सिन्धु,
सातो सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की,
शील को सुमेर, सुद्ध सांच को समुद्र,
रण रुद्रगति कैसोदास पाइ हरिहर की।
पावक प्रताप जाहि जारि जारि.(०००००),
प्रक.(०००).. साहिबी समूल मूल गर की,
प्रेम परिपूरन पीयूष सींचि कल्पबेलि,
पाल लीनि पातसाही साहि अकबर की।।

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।
भयो खानखाना प्रकट, जहाँगीर तनु त्रान।।

साहिजू की साहिबी को रक्षक अनंत गति,
कीनो एक भगवंत हनुवंत वीर सों,
जाको जस कैसोदास भूतल के आस पास,
सोहत छबीलो क्षीर सागर को क्षीर सौं।
अमित उदार अति पावन बिचारि चारु
जहाँ तहाँ आदरियो गङ्गाजी को नीर सों,
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को
खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सों।।

इसी पुस्तक में केशवदास ने उद्यम तथा भाग्य के पारस्परिक वार्तालाप में अकबरी-दरबार के प्रमुख सभी व्यक्तियों का वर्णन किया है। उद्यम तथा भाग्य के रहीम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं[१] —

उद्यम :

सभा सरोवर हंस से, शोभित देव समान।
वे दोऊ नृप कौन हैं, कहिए भाग्य प्रमान।।

भाग्य :

जीते जिन गख्खरी भिखारी कीने भख्खरी जे,
खानि खुरासानि बांधि, खरियो पर के,
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में,
मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के।

१. देखिए : 'रहीम-रत्नावली, पृष्ठ : ६५-६६, तथा 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ-१४२. विशेष विवरण हेतु 'खानखानानामा' भाग-२ भी देखें।

दक्षिण के दक्ष दीह दंती ज्यों बिडारे वीर,
'केसौदास' अनायास कीने घर-घर के,
साहिबी के रखबार शोभिजें सभा में दोऊ,
खानखाना मानसिंह सिंह अकबर के ।।

२. जाड़ा या आसकरन :

महडू शाखा का जाड़ा नाम का एक चारण था । उसका वास्तविक नाम आसकरण था । किन्तु स्थूल-शरीर का होने के कारण उसको लोग 'जाड़ा' कहा करते थे । उसने रहीम की प्रशंसा में निम्नलिखित चार दोहे कहे हैं —

खानखाना नवाब हो, मोहि अचम्भी एह ।
मायो किमि गिरि मेरु मन, साढ तिहस्सी देह ।।
खानखाना नवाब दे, खाँडे आग खिवंत ।
जल वाला नर प्राजले, तृण वाला जीवंत ।।
खानखाना नवाब री, आदमगीरी धन्न ।
मह ठकुराई मेरु गिरि, मन न राई भन्न ।।
खानखाना नवाब रा, अड़िया भुज ब्रह्मण्ड ।
पूठे तो है चंडिपुर, धारतले नवखण्ड ।।

खानखाना ने जाड़ा को उपर्युक्त प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपए देना चाहा किन्तु जाड़ा ने इसे अस्वीकार कर अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल सिसोदिया को रहीम की सहायता से जहाजपुर का परगना; जो कि मेवाड़ का एक भाग था -दिलवाया था । साथ ही रहीम ने जाड़ा कें दोहों का उत्तर इसी राजस्थानी भाषा में, दोहे के रूप में दिया —

धर जड्डी अंबर जडा, जड्डा महंगू जोय ।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय ।।[१]

३. मण्डन :

इन कवि महाराज के कतिपय छन्द खानखाना की प्रशंसा में मिलते हैं । खानखाना के संरक्षण में रहे होंगे किन्तु अभी तक ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं हुआ है अतः इनके विषय में कुछ विस्तार से नहीं कहा जा सकता । पं. मायाशङ्कर याज्ञिक ने इनके लिखे एक छन्द को प्रस्तुत किया है —

१. विशेष विवरण के लिए देखें : 'खानखानानामा, भाग-२, पृष्ठ-१०६ तथा 'रहीम-रत्नावली, पृष्ठ-६७.

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
ये तेरे कानु न आपनों घरत हैं,
तूं तो खग्ग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तो पै कर नेक न डरत हैं।
मंडन सुकवि तू चढत नवखंडन पै,
यह भुज-दण्ड तेरे चढिए रहत हैं,
ओहती अटल खान साहब तुरक-मान,
तेरी या कमान तोसों तोस सों करत हैं।।[१]

४. प्रसिद्ध :

सरोजकार के अनुसार 'प्रसिद्ध कवि' खानखाना के संरक्षण में १५९० ईस्वी सन् में वर्तमान थे। सरोज में उद्धृत प्रसिद्ध के प्रथम पद्य को मायाशङ्कर याज्ञिक जी ने प्रस्तुत किया है —

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी-बाल हैं,
कटि लचकत, बार-भार ना सँभारि जात,
परी विकराल जहूँ सघन तमाल हैं।
कवि परसिद्ध तहूँ खगन खिजायो आनि,
जल भरि-भरि लेती दृगन बिसाल हैं,
बेनी खैंचे मोर, सीसफूल को चकोर खैंचे,
मुकता की माल ऐचि खैंचत मराल हैं।।

मायाशङ्कर याज्ञिक ने मुंशी देवीप्रसाद के खानखानानामा से 'प्रसिद्ध' के निम्नलिखित छन्द को उद्धृत किया है। छन्द खानखाना की प्रशंसा में रचित है —

सात दीप, सात सिंधु थरक-थरक करै,
जाके डर टूटत अखूट गढ़ राना के,
कंपत कुबेर बेर मेरु मरजाद छांड़ि,
एक एक रोम झर पड़े हनुमाना के।
धरनि धसक धस, मुसक धसक गई,
भनत प्रसिद्ध खंभ डोले खुरसाना के,
सेस फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के।।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखें : 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ-६८.

इसके अतिरिक्त स्वर्गीय मायाशङ्कर याज्ञिक जी ने अपने पास उपलब्ध हस्तलेख-संग्रह में एक हस्तलिखित काव्य-संग्रह में उपलब्ध प्रसिद्ध कवि के कतिपय पद्यों में से एक छन्द को निम्नवत् प्रस्तुत किया है[१] —

जलद चरन संचरहि सबर सोहे समत्थ गति।
चिर रंग उत्तंग जंग मंडहिं विचित्र अति।।
बैराम सुवन नित बकसि बकसि हय देत मंगनिन।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छंडहिं ना एक छिन।।
थरहरहिं, पलट्टहिं, उच्छलहिं, नच्चत धावत तुरङ्ग इमि।
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि।।

५. गङ्ग :

रहीम से अधिकाधिक संरक्षण, सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करने वाले कवियों में गङ्ग का स्थान सर्वोच्च है। गङ्ग स्वयं भी एक रससिद्ध महाकवि थे और वीररस की कविता करने में इनके टक्कर का कोई कवि नहीं था। रहीम अध्येताओं ने मुक्तकण्ठ से रहीम और गङ्ग के घनिष्ट सम्बन्धों को स्वीकार किया है। अनुसन्धान-प्रेमियों ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि गङ्ग के प्रभाव से ही रहीम हिन्दी एवं संस्कृत-कविताओं की ओर आकृष्ट हुए और इन भाषाओं में एक से एक कविताएं कीं।[२] गङ्ग ने रहीम की प्रशंसा में अनेक पद्य कहे हैं जिन्हें रहीम-साहित्य गवेषकों तथा अनुसन्धित्सुओं ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है —

बांधिबे कौ अंजलि बिलोकिबे कौ काल ढ़िग,
राखिबे कौ पास जिय, मारिबे कौ रोस है,
जारिबे कौ तन-मन, मारिबे कौ हियो आँखें,
धरिबे कौ पग मग, गनिबे कौ कोस है।
खाइबे कौ सौंहें, भौंहें चढ़िबे-उतारिबे कौ,
सुनिबे कौ प्रानघात किए अफसोस हैं,
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी-बधू,
लीबे को उसास मुख दीवे ही कौं दोस हैं।।

---

१. **क.** 'शिवसिंह सरोज, पृष्ठ : ३२९-३३० तथा ७३६. **ख.** 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ : ६८-६९. **ग.** 'खानखानानामा, भाग-२ पृष्ठ-१४०.

२. "सम्भव है गङ्ग से ही मिर्जा खां ने हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया हो और उसी ने बैरम के पुत्र में हिन्दी कविता के प्रति प्रेम का बीजारोपण किया हो।"
-देखिए : 'अब्दुर्रहीम खानखाना, पृ.-१३

नवल नबाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भागे देस-पति धुनि सुनत निसान की,
गङ्ग कहैं तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान पान की।
तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरनि,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की,
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृग कलानिधि औ कपिन जानी जानकी।।
हहर हबेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की,
मछम को ठाठ ठट्यो प्रलय से पलट्यो गङ्ग,
खुरासान अस्पहान लगे एक आना की।
जीवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अबट बहाना की,
तौसेखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने-खाने खबर नबाब खानखाना की।।
नवल नबाब खानखानाजी रिसाने रन,
कीने अरि जेर समसेर सर सरजे,
मांस के पहाड़ सम सानु करि राखे शत्रु,
कीने घमसान भूमि असमान लरजे।
सोणित की धार सों छुअत चन्द्रमा सों धार,
भारी भयो भेद रुद्रन को हाहा बरजे,
न्यारो बोल बोलत कपाल, मुण्डमाल न्यारो,
न्यारो गजराठ, न्यारो मृगराज गरजे।।
प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी,
कहै कवि 'गङ्ग' तहाँ भारी सूर-बैरिन के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी।
मच्यो घमसान, तहाँ कोप तीर बान चले,
मंडि बलवान किरवान कोप गहकी,
तुंड काटि, मुण्ड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमौ आनि ठहकी।।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार कभी स्वयं की प्रशंसा में गङ्ग के निम्न-लिखित छप्पय पर प्रसन्न होकर रहीम ने गङ्ग को ३६००००० रुपए पुरस्कार में दे दिया था —

चकित भंवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल बन ।
अहि-फनि-मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन घन ।।
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति ।
बहु सुन्दरि, पद्मिनी, पुरुष न चहें न करें रति ।।
खल मलित सेस कवि गङ्ग भनि, अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
खानखाना बैरम सुवन, जि दिन कोप करि तँग कस्यो ।।

रहीम के इस पुरस्कार की राशि और इसे गङ्ग को समर्पित किए जाने की घटना का उल्लेख प्रायः सभी रहीम-काव्य सम्पादकों ने किया है किन्तु किसी भी सम्पादक ने इस घटना की ऐतिहासिकता का उल्लेख नहीं किया है । हाँ कतिपय ख्यातनामा रहीम-विशेषज्ञों ने इसे मआसिर-ए-रहीमी के साक्ष्यों से प्रमाणित अवश्य किया है । यहाँ हम स्पष्ट शब्दों में बता दें कि गङ्ग को दी गई यह पुरस्कार राशि रहीम के जीवन-काल में भी और उसके बाद भी जन-सामान्य के कौतूहल के कारण जन-जन में व्याप्त हो चुकी थी । १८ वीं सदी के प्रख्यात भाषा-इतिहास लेखक महाकवि सूरजमल गङ्ग को पुरस्कृत किए जाने की इस घटना का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में करते हैं[१] —

सुनि बंदि गङ्गकृत काव्यसीस, त्रि रहित दिय रुप्पय लक्ख तीस ।
प्रभु जैसो अकबर पातसाह तैसो हि सचिव किय दैव ताह ।।

किन्तु पुरस्कार की राशि जो सूरजमल ने बताई है, उसमें पूर्व और प्रचलित/प्रसिद्ध पुरस्कार राशि में अन्तर है । रहीम ने गङ्ग को छत्तीस लाख रुपए पुरस्कार में दिए थे; यह परम्परा-प्राप्त है और साहित्य-समाज में प्रसिद्ध है जबकि सूरजमल ने इस राशि को तीस लाख में त्रि (तीन) लाख रहित अर्थात् सत्ताइस लाख बताया है । यह विवेचनीय है । रहीम के इसी काव्य-प्रेम, कवियों के उदार संरक्षण और उन्हें अपरिमित धनराशि पुरस्कार-स्वरूप दे देने के विचित्र गुण पर कभी गङ्ग ने, रहीम के पास यह दोहा लिख भेजा था —

सीखी कहाँ नवाब जू ऐसी दैनी देन ।
ज्यौं ज्यौं कर ऊंचौ उठै, त्यौं त्यौं नीचे नैन ।।

---

१. 'वंशभास्कर, भाग-तीन, पञ्चदश-मयूख, पृष्ठ-२३७५.

और इस पर रहीम ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह दोहा; उत्तर-स्वरूप गङ्ग के पास लिख भेजा —

देनहार कोइ और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरत ताते नीचे नैन।।[१]

पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक एवं सरयू प्रसाद जायसवाल जी ने अपनी-अपनी पुस्तकों में गङ्ग के अन्यान्य छन्दों को भी प्रस्तुत किया है किञ्च कतिपय उन पद्यों को भी उद्धृत किया है; जो उन्होंने रहीम और उनके पुत्र दाराब खां की प्रशंसा में लिखे थे। इन्हें पढ़ने के लिए उपर्युक्त पुस्तकों की सहायता लेनी चाहिए। यहाँ हम इन समस्त छन्दों को प्रस्तुत नहीं कर सकते, वीर-रस के दो महत्त्वपूर्ण छन्द केवल प्रस्तुत कर देते हैं जिनमें रहीम की वीरता प्रदर्शित है —

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि राजपूत,
राउति छोड़ि राउत, रनाई छोड़ि राना जू,
कहे कवि गङ्ग इत समुद्र के चहूँ कूल,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू।
पच्छिम पुरतगाल, काश्मीर, अवताल,
खख्खर को देस बाढ्यो भख्खर भगाना जू
रूम-शाम लोम-सोम, बलक-बदाऊं सान,
खैल-फैल खुरासान खोझे खानखाना जू।।

घमक निसान सुनि, घमकि तुरान चित,
चमक किरान मुल्तान थहराना जू
मारु मरदान काम रुके करबान आदि,
मेवार के रानहि दवान आनमाना जू।
पुर्तगाल पछ माध पलटान उत्तराध,
गुजरात-दस अरु दच्छिन दबाना जू,
अरेबान हवसान हट्टेलान रूम सान,
खेल-भेल खुरासान चढ़े खानखाना जू।।

६. संत :

सरोजकार ने संत कवि को अब्दुर्रहीम खानखाना का आश्रित बताया है और इनकी एक मात्र कविता; जो कि रहीम की प्रशंसा में लिखा गया इनका छन्द

१. 'सुधा, वर्ष-९, खण्ड-२, सख्या-३, चैत्र वि. सं. १९९३, ऍप्रिल १९३६ ई., में प्रकाशित पृष्ठ : २५३-२६२ पर 'रहीम' शीर्षक याज्ञिक बन्धुओं का लेख.

है; को उद्धृत किया है। इस छन्द को याज्ञिक जी ने भी अपने 'रहीमरत्नावली' नामक संग्रह में प्रस्तुत किया है[१] —

सेर सम, सील सम, धीरज सुमेर सम,
समसेर सम, साहेब जमाल सरसाना था,
करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि,
तालेबंद मरद दरदमंद दाना था।
दरबार दरस परस दरबेसन को,
तालिब तलब, कुल आलम बखाना था,
गाहक गुनी को, सुख चाहक, दुनी के बीच,
संत कवि दान को खजाना खानखाना था ।।

७. हरिनाथ :

हरिनाथ के विषय में मायाशङ्कर याज्ञिक जी कहते हैं[२] — "हरिनाथ कवि का भी एक छन्द रहीम की प्रशंसा का मिलता है। यह हरिनाथ कौन हैं सो ठीक-ठीक पता नहीं चलता। परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि यह वही हरिनाथ हैं जिन्होंने बांधव-नरेश नेजाराम बबेले से एक दोहे पर एक लाख रुपए पाए थे और आमेर के राजा मानसिंह से दो दोहों पर दो लाख। पर मार्ग में एक नागर-पुत्र को एक दोहे पर जो कुछ मिला, सब दे डाला। यह रहीम के समकालीन थे और बड़े-बड़े राजा-महाराजा के यहाँ इनकी पहुंच भी थी। इनके पिता महापात्र नरहरि अकबर के दरबार में ही थे। इन कारणों से हमें रहीम की प्रशंसा करने वाले हरिनाथ, नरहरि के पुत्र ही मालूम पड़ते हैं।"

सरयू प्रसाद जायसवाल स्पष्टतः हरिनाथ को नरहरि का पुत्र स्वीकार करते हैं और उन्हें रहीम से संरक्षित बताते हैं। हरिनाथ का वह छन्द; जिसमें उन्होंने रहीम की प्रशंसा की है, -निम्नवत् है —

बैरम के तनय खानखानाजू के अनुदिन,
दोउ पुभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं,
कहै हरिनाथ सातों द्वीप को दिपति करि,
जोहखंड करताल ताल सों बजाए हैं।
एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी,
पूजत नए को भास तातैं भेद पाए हैं,

---

१. 'शिवसिंह सरोज, पृष्ठ-८०५ तथा ६१२ एवं 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ. ७५.
२. 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ-७५ तथा 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ-१४४.

अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं।।

८. अलाकुलि कवि :

अलाकुलि कवि के विषय में अधिक विवरण साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। मायाशङ्कर याज्ञिक ने तो नहीं पर सरयूप्रसाद जायसवाल ने उनके उस छन्द के स्रोत को सूचित करते हुए मुंशी देवीप्रसाद-रचित 'खानखानानामा' का विवरण दिया है। संभवतः 'खानखानानामा' में प्रथम बार यह प्रस्तुत हुआ था[१] —

लंका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट-कूट,
हाथी घोड़ा ऊंट एते पाए ते खजीने हैं,
अलाकुली कवि की कुबेर ते मिताई कीनी,
अनतुले अनमाए नग औ नगीने हैं।
पाई है तैं खान लक्ष भई पहचान भूल,
रह्यो है जहाँ नए समान कहाँ कीने हैं,
पारस ते पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं,
समुद्र हू ते लाया किधौं खानखाना दीने हैं।।

९. तारा कवि :

अन्यान्य कवियों की भांति तारा कवि भी रहीम के उदार संरक्षण में थे किन्तु सरोजकार के विवरण ने इस ओर कुछ भ्रान्तियां फैला रखीं हैं। इसके अनुसार अन्यान्य रहीम साहित्य समीक्षक विद्वान् तारा को रहीम से संरक्षित मानते हैं जबकि सरोजकार ने तारा का समय १८३६ बताया है। यह १८३६ भी ईसवी है या संवत् यह सरोज में स्पष्ट नहीं है, किन्तु निश्चय ही सरोजकार का विवरण इस सन्दर्भ में भ्रमपूर्ण है क्योंकि तारा के रहीम-प्रशंसा परक जो छन्द उपलब्ध होते हैं उन्हें रहीम से दो सौ वर्ष बाद प्रणीत मानने का कोई विशेष औचित्य प्रतीत नहीं होता। दूसरे सरोजकार के ऐसे बहुत से विवरण और कवियों से सम्बन्धित तिथियां भ्रमपूर्ण हैं जो कालान्तर में अनुसन्धान के धरातल पर व्यवस्थित की गई हैं।[२] नीचे तारा के लिखे रहीम-प्रशंसा परक कतिपय पद्य यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं —

जोरावर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि, जोरि रहियतु है,

---

१. 'खानखानानामा, पृ.-१३८. 'अकबरी दरबार के.. पृ.-४५. 'रहीम रत्नावली, पृ.७६.

२. विशेष विवरण के लिये देखिए : 'शिवसिंह सरोज, पृष्ठ-१७२. तारा को रहीम से संरक्षित बताने वाले विद्वानों में अग्रणी हैं बमबमसिंह नीलकमल।

है न को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखाना को लहे ते लहियतु है।
तन-मन डारे बाजी द्वैंतन सँभारे जात,
और अधिकाई कहौ कासों कहियतु है,
पौन की बड़ाई बरनत सब तारा कवि,
पूरो न परत याते पौन कहियतु है।।

अपने अध्ययन व शोधक्रम में मुझे तारा के अन्य कुछ ऐसे छन्द भी; प्राचीन हस्तलिखित-ग्रन्थों में प्राप्त हुए हैं जो रहीम की प्रशंसा में लिखे गए थे और तारा की छाप वाले हैं। दुर्भाग्य से इन छन्दों को इससे पूर्व किसी भी रहीम-काव्य संग्रह में स्थान नहीं दिया जा सका है। हमने 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' नामक अपनी अन्य पुस्तक में इन छन्दों व इनसे सम्बन्धित तथ्यों को प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ विस्तार-भय से वे छन्द पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा रहे।[१]

१०. मुकुन्द :

इन कवि महाशय का किसी प्रकार का कोई विवरण ऐतिहासिक-ग्रन्थों में प्राप्य नहीं है। ना तो 'शिवसिंह सरोज' और ना ही अन्यान्य विद्वानों ने ही कोई परिचय लिखा है। 'सरोज' में केवल यह कहा गया है कि 'इनके कवित्त हजारा में हैं।' हाँ अपनी टिप्पणी में किशोरीलाल गुप्त जी ने अवश्य मुकुन्द को रहीम से संरक्षित एवं आश्रित बताकर उनका समय वि. सं. १६८४ से पूर्व सिद्ध किया है।[२] याज्ञिक जी केवल इनके एक पद को उद्धृत करते हैं जो कि रहीम की प्रशंसा में लिखा गया है, इसके आगे वह भी कुछ नहीं कहते[३] —

कमठ-पीठ पर कोल, कोल पर फन फनिंद फन।
फनपति फन पर पुहुमि, पुहुमि पर दिगत दीप गन।।
सप्त दीप पर दीप एक जंबू जग लिखिखय।
कवि मुकुन्द तहूँ भरतखंड उप्परहिं विसिखिखय।।
खानान खान बैरम तनय तिंहि पर तुव भुज कल्पतरु।
जगमगाहिं खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग अग्ग स्वामिति बरु।।

सरोज में जो कवित्त प्रस्तुत है (पृष्ठ-४७०) वह रहीम के सन्दर्भ में न होकर अन्य विषयक है।

---

१. विशेष विवरण हेतु देखें : 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत, खण्ड-२.
२. देखिए : 'शिवसिंह सरोज, पृष्ठ-७६७.
३. 'रहीमरत्नावली, पृष्ठ-७७, और देखिए : 'माधुरी, पौष-१९८४ वि.सं.

११. अभिमन्यु कवि :

अभिमन्यु अल्पज्ञात कवि हैं किन्तु यह अब्दुर्रहीम खानखाना के संरक्षण में थे इसमें कोई शङ्का नहीं। याज्ञिक जी ने इनका उल्लेख नहीं किया है, अन्यान्य विद्वानों ने भी रहीम के सन्दर्भ में इनका विवरण नहीं दिया। अपने अन्वेषण के क्रम में मैंने देखा कि 'शिवसिंह सरोज' ने ही केवल आज तक इस कवि को रहीम के संरक्षण में होने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना को संजोए रखा है, जिसके अनुसार अभिमन्यु कवि १६८० वि. सं. में वर्तमान थे और खानखाना अब्दुर्रहीम के संरक्षण में रहकर अहर्निश भगवती कविता-भारती की आराधना किया करते थे। आपकी कोई कृति आज तक न तो उपलब्ध हो सकी है और न ही इसकी पहचान ही हो पाई है। इनका एक छन्द सरोज में निम्नवत् उल्लिखित है[१] —

औधि बदी हरि आवन की, मनभावन की उपजी जक वाकैं,
का की पीर बढ़ी 'अभिमन्यु' धरै नहिं धीर, यहै बक वाकैं।
दै बिधि पांख मिलौं उड़ि जाइ, अघाइ बुझाइ हिये लगि वाकैं
जो परि पांखनि पीउ मिलैं सखी, पांख जु हैं चकई चकवा कैं।।

१२. लक्ष्मीनारायण मैथिल :

लक्ष्मीनारायण मैथिल, रहीम के आश्रित कवियों में से एक थे। सरोजकार ने केवल इनका नाम, इनका समय जो कि १५८० ई. है और इन्हें खानखाना के आश्रित होने के अलावा और कुछ नहीं कहा है। दुर्भाग्य से उन्होंने इन कवि महोदय का कोई उदाहरण भी नहीं दिया।[२] नाम के अन्त में प्रयुक्त 'मैथिल' पद से प्रतीत होता है कि लक्ष्मीनारायण मिथिला के निवासी थे। इनका जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व अन्वेषणीय है। मायाशङ्कर याज्ञिक जी इनका उल्लेख, रहीम-संरक्षित के रूप में तो करते हैं किन्तु इनकी किसी भी प्रकार की रचना की अनुपलब्धि सूचित करते हैं।[३] मिश्र-बन्धुओं ने इनकी एक रचना 'प्रेमतरङ्गिणी' (रचनाकाल १६५६ विक्रमी सं.); जो कि अप्राप्य है, -का उल्लेख किया है।[४]

१३. महाकवि बिहारीलाल :

हिन्दी-साहित्य के स्वनामधन्य महाकवि, कविवर बिहारीलाल भी

---

१. देखिए : 'शिवसिंह सरोज, संपादक : किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-२८ तथा ६५०.
२. देखिए : 'शिवसिंह सरोज, संपादक : किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-७९७.
३. 'रहीमरत्नावली, संपादक : पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक, पृष्ठ-७९.
४. देखिए : मिश्रबन्धुविनोद, प्रौढ़-माध्यमिक काल, पृष्ठ-४०६.

खानखाना रहीम का उदार आश्रय और लोकोत्तर संरक्षण प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि रहीम-सम्पादकों किञ्च रहीम-विशेषज्ञ विद्वानों ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है किन्तु समय-समय पर ऐसे भी विद्वान् हो आए हैं जिन्होंने रहीम-साहित्य का गम्भीर अध्ययन, मनन-चिन्तन और अनुसन्धान किञ्च इस अनुसन्धान से प्राप्त मान्य निष्कर्षों के आलोक में रहीम-साहित्य, रहीम-जीवन और रहीम से सम्बन्धित अन्यान्य अज्ञात, अल्पज्ञात, और दुर्लभ सन्दर्भों, तथ्यों और घटनाओं को सप्रमाण सुस्थिर किया है। इसी प्रकार के हमारे एक विद्वान् समीक्षक एवं अनुसन्धाता हो आए हैं पण्डित लोकनाथ सिलाकारी; जिन्होंने ईसवी सन् १९३६ में तत्कालीन हिन्दी-समाज की प्रसिद्ध 'सुधा-मासिक-पत्रिका' में **'महाकवि रहीम का शृङ्गार-रस-वर्णन'** शीर्षक एक अत्यन्त उपयोगी लेख प्रकाशित कराया था। इस लेख में ही उन्होंने महाकवि बिहारीलाल को रहीम से संरक्षित बताते हुए विवरण दिया है, जो कि निम्नवत् है —

"जब संवत् १६७५ में चिद्रूप नामक संन्यासी के दर्शनों को बादशाह जहाँगीर वृन्दावन आए थे तब महात्मा नरहरिदास (थट्टी-सम्प्रदाय वाले) ने सतसई-कार महाकवि बिहारीलाल जी को सुलतान शाहजहाँ के साथ कर दिया था। आगरे जाकर बिहारीलाल रहीम के यहाँ पहुंचे। रहीम की उस समय उतरती अवस्था थी। उनकी सभा में पहुंचकर, बिहारीलाल जी ने निम्नलिखित दो दोहे सुनाए —

जनमु ग्वालियर जानिए, खंड बुंदेलैं बाल।
तरुनाई आई सुभग, बसि मथुरा ससुराल।।
श्रीनरहरि नरनाह को, दीन्हीं बांह गहाय।
सुगुन आगरैं आगरे, रहत आइ सुख पाय।।

और फिर रहीम की प्रशंसा में यह दोहा सुनाया —

गंग गोंछ मोछैं जमुन अधरन सरसुति-रागु।
प्रकट खानखानान कैं कामद बदन प्रयागु।।

इस पर रीझकर रहीम ने बिहारी को कई हजार स्वर्णमुद्राएं देकर उनका सम्मान किया था। डुमरांव निवासी पण्डित नकछेदी तिवारी ने भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित रहीम के 'बरवैनायिका भेद' के आदि में रहीम का जो परिचय दिया है, उसमें लिखा है — "इन्हीं (रहीम) ने सतसईकार बिहारीलाल को एक दोहे पर खड़ा कराके अशर्फियों से तोपवा दिया था।"[१]

१. 'सुधा, वर्ष-९, खण्ड-२, संख्या-३, ऍप्रिल १९३६ ई, पृष्ठ : २५३-२६२.

उपर्युक्त कवियों को छोड़ अन्य भी कितने ही कवि हैं जिन्हें रहीम का उदात्त संरक्षण और आश्रय प्राप्त था किन्तु दुर्भाग्य से इनके विषय में किसी प्रकार की कोई प्रामाणिक सूचना या ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध न होने के कारण इनके बारे में विस्तार से कुछ भी नहीं बताया जा सकता। पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक ने कतिपय ऐसे भी पदों, पद्यों या छन्दों को प्रस्तुत किया है जिनमें रहीम की प्रशंसा तो की गई है और इनसे स्पष्ट ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके रचयिताओं को रहीम का उदार संरक्षण और आश्रय प्राप्त था; किन्तु इनके रचयिता के विषय में कुछ भी अता पता नहीं। यहाँ तक कि इनके नाम भी नहीं मालूम। इन रहीम-प्रशंसा परक पद्यों को हम अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं जिससे उनको यह ज्ञात हो जाएगा कि रहीम, हिन्दी-संस्कृत भाषाओं के कितने उदार और महान् संरक्षक किञ्च आश्रयदाता थे और इन भाषाओं के कवियों, साहित्यकारों एवं रचना-धर्मियों को किस कदर दिल खोलकर पुरस्कार, मान, सम्मान, आदर एवं प्रतिष्ठा आदि दिया करते थे। ऐसे अज्ञात कवियों के छन्द निम्नवत् हैं —

दक्खिन को जूम खानखानाजू तिहारो सुनि,
होत है अचंभो राजा राय उमराइ के,
एक दिन एक रात और दिन आथए लौं,
आए जो मुकाबिले को गये ना विराइ के।
बासर के जूमे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत हैं,
भेदें भेदें विंवडल ते मारे हैं लराइ के,
जामनी के जूने सूर सूरज को पैड़ देखें,
भेर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के।।

(अज्ञात कवि कृत)

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
धरक्यो खंधारी खान परनी ना हलक में,
छाँड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजवक उजर कै गयो है पलक में।
पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दई,
खनखाना ध्याये ते अवाज है ख़लक में,
पिय भाजे तिय छाड़ि तिया करे पीउ-पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बलक में।।

(अज्ञात कवि कृत)

मदन-रूप-तन तवल बीर बारुन गल गज्जह।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जह।।
बहु साहस उत्थयन फेर थप्पन समर्थ वर।
सहनसाह सिरछत्र ताहि रक्खन समर्थ नर।।
खानानखान बैरम-सुवन, चित्तसहर रस रत्तयो।
धन मद जोबन राज मद, एकहि मद्दन मत्तयो।।

(अज्ञात कवि कृत)

खानखान ना जाँचियों, जहाँ दालिद्र न जाय।
कूप नीर अद्र बिना, नीली धरा न पाय।।
खानखान नवाब तें, वही खग उल्लाल।
मुदफर पड़ा न ऊठियो, जैसे अंबा डाल।।
खानखान नवाब तें, हत्त लगाए एम।
मुदफर पड़ा न ऊठियो, गए जोबसी जेम।।
खानखाना नवाब हो, तुम थुर खैंचनहार।
सेरा सेती नहिं खिचे, इस दरगह का भार।।

(अज्ञात कवि कृत)

काह रे करजदार झगरत बार बार,
नैक दिल धीर धर जान इतवारी से,
वेहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना विहाल मत जानना भिखारी से।
सेवा खानखाना की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सूँ होत धनधारी से,
अब घरी पल माँझ, पहर द्वै पहर माँझ,
आज काल के हैरे ...द्वै हजारी से।।

(अज्ञात कवि कृत)

दिए के हुकुम आगे दिए रहे जामिनी कै,
देहके कहन राख्यो दे हके चहत हैं,
बखत के नाम नाम राखत जिहान माँही,
धन के सबद धन-धन जे कहत हैं।

खानखाना जू की अब ऐसी बकसीस भई,
बाकी बकसीस अरु बखसीस हत हैं,
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन में,
घोरा दिए घोरा सतरंज में रहत हैं।।

(अज्ञात कवि कृत)

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुख मानो है,
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचार-बान,
काहू की सिकार देखो बारुण बखानो है।
खनखाना की सिकार सिंधु पैके वार पार,
छन्द-बंद-फंद खट बरन को ठानो है,
अबही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कोन ही दिसा को पातशाह बांध आनो है।।[१]

(अज्ञात कवि कृत)

याज्ञिक जी ने अज्ञात कवियों के रहीम-प्रशंसा-परक पद्यों को प्रस्तुत करने के बाद एक महत्त्वपूर्ण सूचना प्रस्तुत की है। इसके अनुसार — "रमई पाठक के पुत्र माथुर (चतुर्वेदी) कुलोत्पन्न बाण कवि ने 'कलिचरित्र' नामक पुस्तक रहीम की आज्ञा से लिखी है। जैसा इस छन्द से स्पष्ट है[२] :

संवत् सोरह से चोहतरि, चैत्र चंद्र उजियारि।
आयसु पाय खानखानान को, तब कविता अनुसारि।।

याज्ञिक जी की उपर्युक्त सूचना के अनुसार रहीम ने अपने विद्या, ज्ञान-विज्ञान एवं साहित्य-प्रेम के कारण कतिपय ग्रन्थों का भी प्रणयन कराया था, जिनमें 'कलिचरित्र' का अस्तित्व अभी भी बाकी है। किन्तु यदि एक भी ऐसा ग्रन्थ अभी अपने अस्तित्व में है तो ऐसे अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणयन से और उनकी अज्ञात सत्ता से इनकार भी नहीं किया जा सकता। दूसरे ऐसा कोई एक ग्रन्थ भी रहीम के विद्या, ज्ञान-विज्ञान और साहित्य के प्रति उत्कृष्ट प्रेम और आदर का जीता-जागता उदाहरण बनकर साहित्य समाज में स्थिर रहेगा। हाँ यह हमारा दुर्भाग्य है कि बाणकवि का वह 'कलिचरित्र' आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

पीछे हमने खानखाना अब्दुर्रहीम के संरक्षण में रहकर भगवती कविता-

---

१. 'रहीमरत्नावली, संपादक : पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक, पृष्ठ : ७७-७९.
२. 'रहीमरत्नावली, संपादक : पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक, पृष्ठ : ७९-८०.

भारती की उपासना करने वाले संस्कृत एवं हिन्दी-कवियों का विवरण प्रस्तुत कर दिया है। यहीं यह भी सूचित कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि संस्कृत और हिन्दी-कवियों के अतिरिक्त फारसी कवियों की संख्या का 'इदमित्थं' निर्धारण और उनके विवरण को हम यहाँ प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ हैं। रहीम से संरक्षित इन फारसी कवियों का केवल संक्षेप में नाम-मात्र का स्मरण कर देते हैं। वैसे इस विषय पर विस्तार से जानने हेतु पाठकों से विनय है कि वे निम्नलिखित ग्रन्थों का अध्ययन करें — 'मआसिर-ए-रहीमी, 'मआसिरुल्-उमरा, 'अकबरी दरबार, 'अब्दुर्रहीम खानखाना, 'रहीम साहित्य की भूमिका तथा 'खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत' इत्यादि।

उपर्युक्त ग्रन्थों में रहीम के संरक्षण में रहने वाले और उनसे प्रभूत मान-सम्मान, पुरस्कार एवं गौरव-प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले फारसी-कवियों में **१.** ख़्वाजा सैयद उर्फी, **२.** मुल्ला हयाती जीलानी, **३.** अनीशी शमलू, **४.** मुल्ला मुहम्मद रजा नबी, **५.** मीर मुगीस माहबी हमदानी, **६.** अमीर उफिउद्दीन हैदर 'राफेई' **७.** काशानी, **८.** काशी सब्जीवारी, **९.** हैदर तबरेजी, **१०.** सामरी, **११.** दाखिली तथा **१२.** इस्फहानी।[१] रहीम-साहित्य समीक्षकों व रहीम के जीवन पर ऐतिहासिक अनुसंधान प्रस्तुत करने वाले विद्वानों ने तो इनसे भिन्न कतिपय अन्य फारसी-रचनाधर्मियों का भी उल्लेख किया है। रहीम के संरक्षण में रहने वाले प्रख्यात इतिहासकार 'अब्दुल बाकी नहाबन्दी' का उल्लेख भी प्रकृत में आवश्यक है जिसने स्वयं रहीम के संरक्षण में रहकर रहीम के ऐतिहासिक जीवन, विलक्षण व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर २५०० पृष्ठों का एक विशालकाय ऐतिह्य-ग्रन्थ 'मआसिर-ए-रहीमी' का प्रणयन किया था। हम यहीं बता दें कि परवर्ती लेखकों ने जो रहीम के जीवन से सम्बन्धित विवरणों को प्रस्तुत किया है उसका बहुत बड़ा आधार नहाबन्दी की यही कृति है। इस कृति में लेखक खानखाना के संरक्षण में रहने वाले विविध भाषा-भाषी कवियों के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ ही रहीम की प्रशंसा में रचे उनकी प्रतिनिधि रचनाओं को भी प्रस्तुत करता है और उसके इस विवरण को पढ़कर रहीम के साहित्य-संरक्षण पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। लगभग दो सौ से अधिक कवियों, रचनाधर्मियों तथा इतिहासकारों का उल्लेख एवं दर्जनों कलाकारों, सङ्गीतकारों तथा इतिहासकारों का उल्लेख नहाबन्दी ने अपने ग्रन्थ में किया है।

---

१. विशेष विवरण हेतु देखिए : **क.** 'मआसिर-ए-रहीमी, भाग-२. **ख.** 'रहीम साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-२५५ तथा 'रहिमनविलास, भूमिका, पृष्ठ ६०-६१.

रहीम का रचना-संसार :

रहीम के व्यक्तित्व की चर्चा के बाद अब उनके रचना-संसार से पाठकों का परिचय कराना आवश्यक है किन्तु यहाँ हम उनकी कृतियों का समग्र विवेचन प्रस्तुत न कर; अत्यन्त संक्षेप में उनका विवरण दे देते हैं। रहीम विविध भाषाओं के सिद्ध लेखक व साहित्यकार तो थे ही उन-उन भाषा-साहित्य एवं उनकी प्रकृतिगत विशेषताओं का भी उन्हें गंभीर ज्ञान था। वे अपने युग में इन भाषा-साहित्य के वे स्थापित समीक्षक एवं आलोचक माने जाते थे और तद्युगीन अनेकानेक कवि अपनी-अपनी कृतियों पर उनके विचार-विमर्श प्राप्त किया करते थे। अस्तु, अपने इसी विविध भाषा-ज्ञान के कारण रहीम ने प्रायः उन सभी भाषाओं में रचना की जिन्हें उस युग में साहित्यिक भाषा की मान्यता प्राप्त थी। अरबी, तुर्की (अनुवाद के रूप में), फारसी (विविध उपभाषाओं के साथ), संस्कृत, अवधी, व्रज तथा इनके मिश्रित-स्वरूप; जिसे कालान्तर में 'खड़ीबोली' या 'हिन्दी' या फिर 'हिन्दवी' कहा गया, -इन सभी भाषाओं में रहीम ने उत्तमोत्तम रचनाएं की हैं।

हिन्दी में उनके विविध ग्रन्थ निम्नवत गिनाए जाते हैं - १. 'दोहावली' या 'रहीमसतसई' २. 'नगरशोभा' ३.'बरवैनायिकाभेद' ४. 'बरवै भक्तिपरक तथा स्फुट' ५. 'शृङ्गारसोरठ' ६. 'भक्तिपरक स्फुट पद' ७. 'मदनाष्टक' ८. 'शतरंज की चाल पर' ९. 'रासपञ्चाध्यायी' तथा १०. 'बारहमासा।' इनमें अन्तिम दो ग्रन्थों पूर्णतः अप्राप्य हैं और पहला अपूर्ण है।

संस्कृत में लिखी उनकी रचनाओं में प्रथम स्थान पर १. 'खेटकौतुकम्' रखा जाता है जो कि फलित-ज्योतिष का एक गौरव-ग्रन्थ है। २. 'द्वात्रिंशद्योगावली' उनके नाम से अधुना-पर्यन्त एक अज्ञात एवं दुर्लभ ग्रन्थ था और यह भी फलित ज्योतिष से ही संबन्ध रखता है। ३. 'गङ्गाष्टकम्' रहीम की प्रौढ़ संस्कृत रचनाओं में अन्यतम है। ४. 'संस्कृत-काव्य' के नाम से उनके द्वारा संस्कृत के विविध छन्दों में प्रणीत तथा भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधा के अलौकिक प्रेम के धरातल पर प्रस्तुत पद्यों को प्रस्तुत किया जाता है। यह पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं होता और आज इसके स्फुट; जिनमें कोई तारतम्यता नहीं, स्वतंत्र ९ पद प्राप्त होते हैं। इनके अलावा विविध देवी-देवता स्तुति-परक कतिपय पद्य भी प्राप्त होते हैं।

फारसी में उनके दो ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं। एक तो 'वाकेआत बाबरी' जो कि 'तुज़ुक-ए-बाबरी' (मूल तुर्की) का अनुवाद है और दूसरे उनके फारसी गजलों का संग्रह; दीवान। अरबी में उनके लिखे बहुत से पत्र उपलब्ध होते हैं जिन्हें अरबी-साहित्य में विशिष्ट गौरव प्राप्त है।

रुद्रकवि की काव्य-शैली :

'नवाबखानखानाचरितम्' के काव्यगत वैशिष्ट्य एवं उसकी उत्तमता अथवा अधमता को जांचने-परखने के लिए पाठक स्वतंत्र हैं और इस रचना के आधार पर श्रीरुद्रकवि की काव्यगत-प्रतिभा का निदर्शन भी पाठकों को प्राप्त हो जाएगा। कहना अनुचित नहीं होगा कि एकमात्र इसी चम्पू-ग्रन्थ की सुललित एवं प्रौढ़ भाषा-शैली, ओज एवं समास के अतिशय प्रयोग, सुगठित एवं सुललित काव्य (गद्य)-शैली, उत्प्रेक्षा-रूपक-परिकर-विरोधाभास-श्लेष आदि शाब्द एवं आर्थ-अलङ्कारों के विचित्र संगुम्फन; आदि अनेकानेक गुणों के कारण ही श्रीरुद्रकवि को बाणभट्ट सरीखे संस्कृत के उच्चकोटिक गद्यकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है। किन्तु दोनों ही गद्यकारों में जो एक उद्धरणीय अन्तर है, वह यह कि बाण स्वतन्त्र ग्रन्थकार थे और अपनी रचना से उन्हें किसी विकट राजनैतिक समस्या का हल नहीं ढूंढ़ना था या ऐसे किसी विकट एवं अत्यन्त गूढ़ राजनैतिक परिस्थिति का समाधान उन्हें नहीं प्राप्त करना था। जबकि रुद्रकवि ऐसे ही किसी राजनैतिक उलझन को अपनी रचना के द्वारा सुलझाने हेतु बाध्य थे। दरबारी-कवियों की रचनाओं में पाई जाने वाली जो सामान्य स्तुतिपरक-प्रवृत्ति इस काल अथवा धारा के कवियों की रचनाओं में देखी जाती है, निश्चय ही उसका प्रस्फुटन रुद्रकवि की प्रस्तुत रचना में भी हुआ है। हम चर्चा कर चुके हैं कि रुद्रकवि की इस प्रवृत्ति को समीक्षक अथवा आलोचक एक सिरे से खारिज नहीं कर सकते और उसका मूल कारण यह है कि इस ऐतिहासिक चम्पूकाव्य में जिस नायक के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है, वह कोई सामान्य और अज्ञात या अल्पज्ञात व्यक्ति नहीं अपितु मध्यकालीन भारतीय राजनैतिक-इतिहास का एक प्रमुख शासक, सेनापति, राजनीति-शास्त्री, योद्धा, कवि, ग्रन्थकार, अन्यान्य भाषाओं का साहित्यकार, अनुवादक तथा विश्रुत भाषा-वैज्ञानिक है जिसकी राजनैतिक कुशलता, प्रशासकीय क्षमता, वीरता, सेनापतित्व, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सूक्ष्माति सूक्ष्म विवरण समकालीन तथा आधुनिक ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा अन्यान्य ऐतिहासिक महत्त्व के सन्दर्भों में उपलब्ध है। और मध्यकालीन भारतीय इतिहास की 'हलचलों' उत्थान-पतन व विविध परिस्थितियों का जानकार कोई भी इतिहासकार बहुत ही अच्छी तरह से यह जानता है कि यही एकमात्र वह व्यक्ति है जिसकी चर्चा मात्र से मध्यकालीन भारतीय इतिहास का स्वयं 'इतिहास-भूगोल' सुव्यवस्थित हो जाता है नहीं तो अव्यवस्थित।

रुद्रकवि की काव्यशैली की समीक्षा के लिए 'नवाबखानखानाचरितम्' को हम विद्वत्-समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करते हैं किन्तु यहीं हम यह भी सूचित कर

दें कि इससे पूर्व इस महाकवि की काव्य-प्रतिभा और उसकी काव्य-शैली के सम्यक् निरूपण का एकमात्र आधार 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' ही था। बहुधा आज तक रुद्रकवि की काव्य-शैली और उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय इसी एक महाकाव्य की सहायता से प्राप्त किया जाता रहा है। यद्यपि उपर्युक्त महाकाव्य और चम्पू-काव्य को छोड़ संस्कृत के कुछ अन्य ग्रन्थ भी रुद्रकवि द्वारा प्रणीत हैं और जैसा कि हमने यतीन्द्र विमल चौधरी के साक्ष्यों से यह पहले ही बता दिया है कि ये ग्रन्थ प्रकाशित संस्करण के रूप में उपलब्ध भी हैं किन्तु उनकी अनुपलब्धता और दुर्लभता ने रुद्रकवि की काव्य-प्रतिभा और उनकी काव्य-शैली पर कुछ विशेष कार्य करने में बहुत बाधा पहुंचाई है। भविष्य में रुद्रकवि की इन रचनाओं के प्रकाश में आने पर निश्चय ही इस ओर कुछ विशेष सफलता प्राप्त की जा सकेगी। किन्तु उपलब्ध सामग्री की सहायता से जो कुछ भी इस प्रसङ्ग में कहा जा सकता है उसके अनुसार रुद्रकवि को एक सफल महाकवि के गौरवमय पद पर प्रतिष्ठित करने में किसी भी प्रकार का सङ्कोच नहीं किया जा सकता। महाकाव्य के लक्षणों के सन्दर्भ में देखें या संस्कृत-साहित्य के ख्यातनामा महाकवियों की काव्यशैली और उनकी काव्य-प्रतिभा को रुद्रकवि की काव्य-प्रतिभा और उनकी शैली के समक्ष रखकर देखें; दोनों ही स्थितियों में 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' की भाषा-शैली, अलङ्कार-प्रयोग, शब्द-लालित्य, अर्थ-गाम्भीर्य, शब्दार्थ-संगुम्फन, पदशय्या आदि काव्यगत विशेषताएं और प्रातः-मध्याह्न-सायं-नदी-पर्वत-नगर-ग्राम वर्णन-परक महाकाव्यीय लक्षणों का विनियोग, प्रत्येक दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य की कोटि में रखा सकता है और संस्कृत-साहित्य के सुविख्यात समीक्षकों ने इसे रखा भी है।

रुद्रकवि की काव्यशैली के सम्बन्ध में हम इस विषय पर विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि यह स्वतन्त्र प्रतिभा का विषय है और प्रतिभा-भेद के कारण इस प्रकार की कोई भी समीक्षा अपने निर्णय-भेद को भी प्राप्त हुआ करती है। परन्तु इस प्रसङ्ग में हम रुद्रकवि के कतिपय नवीन साहित्य-प्रयोगों की ओर सहृदय पाठकों और विद्वान् समीक्षकों का ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे। रुद्रकवि द्वारा इस प्रकार के नवीन साहित्य-प्रयोग में ध्यातव्य विन्दु है 'खानखानाचरितम्' का गद्यभाग। रुद्रकवि ने अपनी प्रस्तुत रचना को 'चम्पू' विधा के रूप में प्रस्तुत किया है और चम्पू के लिए आवश्यक है पद्यों के साथ ही समकाल में गद्यों में अपने वर्ण्य विषय को प्रस्तुत करना तथा दोनों की ही समानुपातिक मात्रा में कृति को समाप्त करना। इस रूप में रुद्रकवि ने अपने गद्यों के लिए एक अद्भुत मार्ग की तलाश की है और यह विचित्र संयोग है कि संस्कृत-साहित्य के विलक्षण साहित्य-सागर

में उन्हें अपना मनचाहा मार्ग मिल भी गया। रुद्रकवि ने अपने समग्र गद्यों को संस्कृत के पारम्परिक गद्यों की भांति प्रस्तुत नहीं किया है अपितु उनके गद्य; पद्यों की भांति ही सर्वथा गेय-प्रधान हैं और इसका कारण है उनके द्वारा गद्य-भेदों में तृतीय-कोटि के गद्य-भेद 'वृत्तगन्धि' में अपने गद्यों को लिखना।

संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के विद्यार्थियों तथा विद्वानों के लिए 'वृत्तगन्धि'-नामा गद्य-भेद कुछ अपरिचित नहीं है। यहाँ 'संस्कृत-गद्य' पर एक लघु टिप्पणी आवश्यक प्रतीत होती है। आचार्य विश्वनाथ महापात्र ने गद्य-स्वरूप तथा भेद के क्रम में अपने विचार निम्नवत् व्यक्त किए हैं —

वृत्तबन्ध्योज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकश्च चतुर्विधम्।।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तूर्यं चाल्पसमासकम्।।

इसके अनुसार 'वृत्तगन्धि'-नामा गद्य वहाँ होता है जहाँ गद्य में ही वृत्त अर्थात् छन्दों अथवा पद्यों के समान श्रुतिमाधुर्य का गन्ध अर्थात् प्रसार हो। इसके अनुसार ऐसे गद्यों में यद्यपि किसी निश्चित या अनिश्चित छन्द का समावेश नहीं किया जाता किन्तु कवि अपने गद्य हेतु ऐसी शब्दावली का प्रयोग करता है जिसमें पद्यों की श्रुतिमधुरता, अनुरणन, समानुपातिक वर्ण-मात्रा आदि का व्यवहार होता है। ऐसे में पद्य न होकर भी ये गद्य पद्यों के ही समान सुन्दर प्रतीत होते हैं। विश्वनाथ से बहुत पूर्व स्वयं अग्निपुराण ने भी 'वृत्तगन्धि'-गद्य भेद का निरूपण ठीक इसी प्रकार किया था —

अपादः पदसन्तानो गद्यं तदपि कथ्यते।
चूर्णकोत्कलिकावृत्तगन्धिभेदात्त्रिरूपकम्।।
अल्पाल्पविग्रहेनातिमृदुसंदर्भनिर्भरम्।
चूर्णकं नामतोदीर्घसमासोत्कलिका भवेत्।।
भवेन्मध्यमसंदर्भं नातिकुत्सितविग्रहम्।
वृत्तच्छायाहरं वृत्तगन्धिनैतत्किलोत्कटम्।।

अग्निपुराण ने 'वृत्तच्छायाहरम्' के रूप में वृत्तगन्धि-गद्य की स्वाभाविक एवं पारमार्थिक प्रकृति का निरूपण कर दिया है और इससे स्पष्ट है कि ऐसे गद्य में 'वृत्त' अर्थात् पद्यों की छाया रहा करती है अर्थात् रहते तो वे गद्य हैं किन्तु उनमें पद्यों की स्वाभाविक प्रकृति का समावेश बिना किसी छान्दस् नियम के परिपालन के ही किया जाता है।

'संस्कृत-गद्य' पर अब तक जितने भी विद्वानों ने कार्य किया, उनमें सबसे अधिक प्रामाणिक व शास्त्रीय अध्ययन पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने ही प्रस्तुत किया है। आज से ११२ वर्ष लगभग प्राचीन अपने एक लेख; 'गद्य-काव्य मीमांसा' जो कि नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था; में विविध गद्य-प्रकारों पर सूक्ष्म मनन-चिन्तन करते हुए व्यास जी ने 'वृत्तगन्धि'-गद्य के प्रकार का स्वरूप व्यवस्थित करते हुए लिखा है —

"वृत्तगन्धि वह गद्य कहलाता है जिसमें कुछ नियत मात्राओं के समूह की अथवा नियत वर्णों के समूह की आवृत्ति बराबर चले अथवा किसी रीति से भी ताल में हो। इसमें यदि प्रत्येक आवृत्ति में अनुप्रास हो तो अधिक मधुर होता है।"[१]

वृत्तगन्धि के उपर्युक्त स्वरूप तथा परिभाषा की कसौटी पर रखकर यदि रुद्रकवि के गद्यों को रखकर परिशीलन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि चम्पूकार ने अपने गद्यों को बहुत ही परिश्रम-पूर्वक और बहुत ही सोच-विचारकर, सावधानी से वृत्तगन्धि भेद के अन्तर्गत ही लिखे हैं।

ऊपर 'वृत्तगन्धि-गद्य-भेद' पर इतनी लम्बी परिचर्चा का एक प्रयोजन यह भी था कि विगत दशकों में संस्कृत-साहित्य के ही कतिपय विद्वानों ने रुद्रकवि के इन गद्य-खण्डों को संस्कृत-पद्य समझने की भूल की है और विशुद्ध गद्य-साहित्य को पद्य के अन्तर्गत समाहित कर दिया है।[२] जबकि यह नितान्त असङ्गत तथा भ्रमपूर्ण निरूपण है। विद्वानों के ऐसे किसी निरूपण का मूल कारण है रुद्रकवि के 'वृत्तगन्धि'-गद्य को संस्कृत-पिङ्गल परम्परा का 'दण्डक'-छन्द समझ

१. विषेश विवरण के लिए देखें : **'गद्य-काव्य-मीमांसा'** शीर्षक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी का लेख जो कि **नागरीप्रचारिणी पत्रिका**, प्रथम-वर्ष, प्रथम-भाग, जून-१८९६ ई. में प्रकाशित है। गद्य-काव्यों के उद्भव-विकास, इतिहास, स्वरूप तथा भेद आदि के लिए यह लेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। व्यास जी ने अपने इस लेख में एक बार फिर अपने उत्कट पाण्डित्य का लोहा मनवा लिया है और इस क्रम में हम देखते हैं कि उन्होंने गद्य के विविध भेद-प्रभेद करते हुए सम्पूर्ण गद्य के ४९६४१९८४०० से अधिक गद्य-भेदों का विवरण दिया है।

२. साहित्य-अकादमी, न. दिल्ली द्वारा प्रकाशित संस्कृत की वार्षिक शोध-पत्रिका 'संस्कृत-प्रतिभा' के १७ वें अङ्क (१९८८ ई.) में; जिसके सम्पादक विद्यानिवास मिश्र हैं, -में **'इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यः'** शीर्षक के अन्तर्गत डॉ. कपिलदेव पाण्डेय ने कतिपय दण्डकों को प्रस्तुत किया है। अनेकविध इन्हीं दण्डकों के बीच प्रस्तोता ने नवाबखानखानाचरितम् के एक वृत्तगन्धि-गद्य-खण्ड को दण्डक मान लिया है जो कि भ्रमपूर्ण है। आगे हमने चर्चा की है कि यह दण्डक नहीं वृत्तगन्धि है।

बैंठना। संस्कृत-साहित्य से परिचित समाज के लिए दण्डक कोई सर्वथा नवीन वस्तु नहीं है प्रत्युत् भावप्रवणता, अर्थ-गाम्भीर्य, विलक्षण शब्दार्थसंयोग, पदलालित्य आदि काव्यशैली के साथ ही श्रुति-माधुर्य तथा लयात्मकता के चलते काव्य की इस अनोखी विधा से इस साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी परिचित है।

यहाँ 'दण्डक'-छन्द पर भी कुछ चर्चा अपेक्षित है। संस्कृत-पिङ्गल परम्परा के कतिपय मानक-ग्रन्थों के अनुसार — २६ अक्षर से अधिक और अधिकतम ९९९ वर्णों तक प्रयोग में आने वाले इस विशालकाय छन्द के भी अनेकानेक प्रकार हुआ करते हैं। दण्डक के भी अनेकानेक भेदों में दो 'नगण' (। । ।) तथा सात 'रगण' (ऽ । ऽ) यदि एक पाद में हों तो ऐसा दण्डक 'चण्डवृष्टिप्रपात' नामक दण्डक का प्रकार हुआ करता है। आदिशङ्कराचार्य और कहीं-कहीं महाकवि कालिदास के नाम से प्राप्त श्रीश्यामलादण्डक; दण्डक के इसी वर्ग का उदाहरण है और विद्वत्समाज में इसका बहुत ही महत्त्व भी है —

जय जननि सुधासमुद्रान्तहृद्यन्मणिद्वीपसंरूढ़बिल्वाऽटवीमध्यकल्प-द्रुमाकल्पकादम्बकान्तारवासप्रिये, कृत्तिवासप्रिये ! सादरारब्धसङ्गीत-सम्भावनासम्भ्रमालोलनीपस्रगाबद्धचूलीसनाथत्रिके, सानुमत्पुत्रिके ! शेखरीभूतशीतांशुरेखामयूखावलीबद्धसुस्निग्धनीलालकश्रेणिशृङ्गारिते, लोकसंभाविते ! कामलीलाधनुःसन्निभभ्रूलतापुष्पसन्दोहसन्देहकृल्लोचने वाक्सुधासेचने ! चारुगोरोचनापङ्ककेलीललामाभिरामे, सुरामे रमे ! प्रोल्लसद्बालिकामौक्तिकश्रेणिकाचन्द्रिकामण्डलोद्भासिगण्डस्थलन्यस्त-कस्तूरिकापत्ररेखासमुद्भूतसौरभ्यसम्भ्रान्तभृङ्गाङ्गनागीतसान्द्रीभवन्मन्द्र-तन्त्रीस्वरे, सुस्वरे भास्वरे ! वल्लकीवादनप्रक्रियालोलतालीदलाबद्ध-ताटंकभूषाविशेषान्विते, सिद्धसम्मानिते ! दिव्यहालामदोद्वेलहेला-लसच्चक्षुरान्दोलनश्रीसमाक्षिप्तकर्णैकनीलोत्पले, पूरिताशेषलोकाभिवाञ्छाफले श्रीफले ! स्वेदबिन्दूल्लसत्फाललावण्यनिःष्यन्दसन्दोहसन्देहकृन्नासिकामौक्तिके, सर्वविश्वात्मिके कालिके ! मुग्धमन्दस्मितोदारवक्त्रस्फुरत्पूगकर्पूरताम्बूल-खण्डोत्करे, ज्ञानमुद्राकरे पद्मभास्वत्करे ! कुन्दपुष्पद्युतिस्निग्धदन्तावली-निर्मलालोककल्लोलसम्मेलनस्मेरशोणाधरे, चारुवीणाधरे पक्वविम्बाधरे !''

इसी प्रकार महाकवि भवभूति के 'मालतीमाधव' नामक प्रकरण के पांचवें अङ्क में कापालिकों की उक्ति में भी इसी छन्द में एक शिवस्तुति प्रस्तुत की गई है जिसे हम 'चण्डवृष्टिप्रपात' नामक दण्डक का उदाहरण मान सकते हैं। किन्तु विद्वानों ने प्रस्तुत चरितकाव्य में जिन दण्डकों की चर्चा की है वे दण्डक न होकर

वृत्तगन्धि गद्य के भेद-मात्र हैं और वृत्तगन्धि के स्वरूप का पीछे दिखा चुके हैं। उदाहरण के लिए हम प्रकृत चम्पूकाव्य से निम्नलिखित दो वृत्तगन्धि-गद्यों को प्रस्तुत करते हैं जिन्हें भ्रमवश दण्डक माना जाता रहा —

१. जय जय राजसमाजविभूषण विदलितदूषण गुणगणमन्दिर मन्मथसुन्दर चन्दनशीतलशीलवशीकृतदुर्गमदुर्गपरिग्रह विग्रहपण्डित दुर्जन-सज्जनरञ्जन राजविरोचन कमलविलोचन दुःखविमोचन परदलशोचन शोषितवैरियशोभरसागर परध(र)णिपतिकुञ्जरगञ्जनसिंहकिशोर ! कठोरकृपाणनखाग्रविदारितवैरिनराधिपमत्तमतङ्गजकुम्भसमुद्भूतकीर्तिकदम्बक-मौक्तिकहारविभूषितभूमिवधूघनपीनतरोदयभूधरचरमाचलमयकुचमण्डल वीरधुरन्धर चलति भवत्यरिपत्तानम् उत्तमतावकघोटकखुरतटपाटितभूमि-तलोत्थितधूलिसमूहमपोहितुमिव शत्रुकुरङ्गदृशः स्रवदञ्जनसङ्कुललोचनवारि किरन्तु परन्तु न (विदन्ति) पिच्छिलिते पथि कथमिव विन्ध्यमहीधरकानन-वीथिपलायनक(र्म) भवेदिति। किञ्च कुलाचलमण्डितभूतलभूषण भुजबल-निर्जितभूमिपते ! बलिशिविविक्रमकर्णसुपर्वमहीरुहतुल्यमते ! परदलभञ्जन कलिमलगञ्जन गुणिजनरञ्जन मर्मरते ! राजधुरन्धर भूमिपुरन्दर वैरिभगन्दर सकलकलाधर धन्यगते ! चतुरशिरोमणि ! परमकृपालय ! पालय जलधि-मेखलमवनीमण्डलमारविचन्द्रसमुद्रम् ।

२. जय जय चक्रवर्तिचक्रहीर घोरसङ्गरैकवीर धीरहीर दान(वीर) वैरिकीर्तिधूलिनीर वाजिभग्नसिन्धुतीर यानरंहसासमीर कीरसारिकादिगीत-नीतिपालनप्रतीत सर्वमेदिनीधुरीण वि(श्वर)क्षणप्रवीण बंग-राढ़-लाट-गौड-मेदपाट-खञ्जरीट-कान्यकुब्जदिव्यलोकमध्यलोकनागलोकगीयमानकीर्तिपूर पुण्डरीककर्णपूर राजमानदि(क्)कुरङ्गलोचनाविनोदमोदमानमानस ! क्षीतितनूपुर(?) दीनसाहिराज्यरत्न सत्फलापधानभासमानयत्न भो नवाब-खानखान राजहीर धीर जीव ! जीव !! मेदिनीन्द्र यावदिन्द्रमन्दाद्रितारका-समुद्रचन्द्रभास्करम् ।''

उपर्युक्त दो गद्यों के अलावा जो एक अन्य गद्य 'खानखानाचरितम्' में आया हुआ है उसे हम पारम्परिक गद्यों की श्रेणी में परिगणित न करते हुए दण्डक के एक प्रकार-भेद में सम्मिलित कर सकते हैं —

जय जय नृपचक्रचूडामणे सदाचारचातुर्यगम्भीरवारांनिधे विनिर्जित्य विश्वम्भरामण्डलं श्रीमता हेमसम्भारदानोत्सवे कल्पिते मेरुशैलव्ययाशङ्कया यद्यदाश्चर्यचर्याचमत्कार(म)भूत तदाकर्णयाकबरश्री-

सुत्राम[1]पुत्राग्न्यद्दीश(हज)हाँगि(गी)रद्वितीयप्रियत्राणा (?) गीर्वाणनाथो निवासाय चिन्ताविताने वितेने, तिरोधानहानादविश्रान्तमार्तण्डविम्बप्रकाशादहोयामिनीकाललेपभ्रमादङ्कनामण्डलीकान्तविश्लेषवैयाकुलीमुज्जिहीते तथा चन्द्रविम्बं भवद्वैरिवक्त्रोपमेयं तथा चिन्तया वीतशोभं पुरैवाभवत् करवश्रेणिरन्तर्भ्रम(द्)भृङ्गसन्दर्भदम्भेन किं दुःखशल्यं बरीभर्ति, चर्कर्ति चिन्तां चकोरावली, पञ्चबाणोऽपि चापं न सज्जीचरीकर्ति लज्जाकुलः, प्रेत-भूतावलीडाकिनीशाकिनीचक्रवेतालमालापिशाचादिनक्तञ्चरश्रेणयः क्वापि (या)ताः, तथा वैरिभूपालवद्भूरिघोरान्धकारोऽपि विन्ध्याद्रिगर्तेषु संलीयन्ते(ते) सूरयः कालनिर्णायकग्रन्थसन्दर्भमेके मुधा मन्वते, तन्वते केचन च स्थानिवद्धावतो यामिनीका(र्यमा)र्याः, तथा कोकवृन्दं घनानन्दमाविन्दन्ते, पद्मिनी बाढ़मामोदसन्दो(हमुद्गा)हते शात्रवक्षोणिभृत्कीर्तिवत्तारकापि नोज्जृम्भते, विश्वसन्तापघाताय धातापि भास्वद्भवत्कीर्तये चन्द्रिकाचारुसाम्राज्यपट्टिकाभेषकं नु मीमांसते, देवगन्धर्वसिद्धाप्सरोयक्षरक्षोमनुष्योरगेन्द्रादिजेगीयमानावदान! प्रभूतप्रताप-प्रभावप्रतीत प्रभो खानखान क्षमापाल साम्राज्यमाकलयाकल्पान्तम्।''

रुद्रकवि की काव्यशैली के प्रसङ्ग में दूसरा ध्यातव्य विन्दु है उनके द्वारा अपनी विविध रचनाओं में एक ही आशय या भाव के पद्यों को प्रस्तुत करना। इसके अनुसार जिस आशय या भाव का पद्य रुद्रकवि को विशेष प्रिय लगा उन्होंने उस पद्य को अपनी एक से अधिक रचना में प्रस्तुत कर दिया है। निम्नलिखित पद्य उनके 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' के अन्तर्गत प्रताप शाह के शौर्य तथा यशोवर्णन के प्रसङ्ग में पठित है —

पान्थान्पृच्छत्युदन्वानिति तटविहरद्राजहंसा रवैर्यं
सानन्दं क्षेमतः किं क्षितिमिह विजयी शास्ति शाहप्रतापः।
एतन्नाराच-धारा-दलित-रिपुवधू-दृक्पयःपूरि-भूरि-
स्फारीभूताम्बुधारी कलशभवमुनेर्निर्भयः संवसामि।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य २०/८९)

और इसी पद्य के आशय को किञ्चिन्मात्र शब्दावली के अन्तर से 'खानखानाचरितम्' में रहीम के शौर्य तथा उनकी कीर्ति के वर्णन प्रसङ्ग में देखें —

१. **'सुत्राम'** पद बहुत ही भ्रामक तथा अस्पष्ट है चौधरी जी ने इसे स्पष्ट करने का कोई यत्न नहीं किया है। मेरी समझ से इसे **'सुरत्राण'** (सुरत्राणपुत्रा..)' होना चाहिए जिसका अर्थ **'सुल्तान'** होगा और प्रसङ्गवश यह सार्थक भी होगा।

मार्गे पृच्छन्ति पान्थानिति पुलिनपतत्कूजितैः सिन्धवोऽयं
वीरश्रीखानखानक्षितिपतिरवनीं शास्ति कल्याणतः किम् ।
यस्योद्यत्खड्ग-धारा-दलित-रिपुवधू-दृक्पयःपूरिभूरि-
स्फारीभूतप्रवाहाश्चिरमिह जलधेः सङ्गसौख्यं भजामः ।।

इसी प्रकार 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' में प्रताप शाह के वर्णन-प्रसङ्ग में रुद्रकवि ने प्रताप की कीर्ति के विस्तार को बताने हेतु विकट उत्प्रेक्षा की सहायता से निम्नलिखित पद्य को प्रस्तुत किया है —

का त्वं कीर्तिः किमीयाः शिखिगिरिनृपतेः क्व प्रयास्यम्बुराशिं
किं कार्यं श्रीनिदेशः कथय कथमये तात सिन्धो जडात्मन् ।
गाम्भीर्यौदार्यघार्ष्ट्यप्रमुखगुणगणं मत्पतिं माऽनुकार्षीः
त्वत्क्रोधान्मत्सपत्नीसदनविबुधसान्मामसौ यत्करोति ।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य, २०/९४)

और इसी पद्य को खानखानाचरितम् में यथावत् रहीम की कीर्ति के वर्णन-प्रसङ्ग में भी प्रस्तुत किया गया है —

कीर्ते श्रीखानखानक्षितिपकुलमणेः क्व प्रयास्यम्बुराशिं
किं कार्यं श्रीनिदेशः कथय कथमये तात सिन्धो जडात्मन् ।
गाम्भीर्यादीनगण्यानतिविमलगुणान् मत्पतेर्माऽनुकार्षी-
स्त्वत्क्रोधान्मत्सपत्नी-सदन-विबुधसान्मामसौ यत्करोति ।।

खानखानाचरितम् के द्वितीय उल्लास में रहीम की अद्वितीय वीरता के निदर्शन हेतु निम्नलिखित पद्य को प्रस्तुत किया गया है —

भ्रूकोदण्डचलत्कटाक्षविशिखश्रेणीभिरेणीदृशः
सहाय्यस्य चिकीर्षया किमु निजप्राणेश्वराणां रणे ।
क्षोणीकाम-नवाव-वीरतिलकं दृष्ट्वा गवाक्षान्तरे
शृङ्गारेण भयानकेन युगपद्विन्दन्ति भावान्तरम् ।।

ठीक इसी प्रकार का भाव-बोधक एक पद्य 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' में प्रताप शाह की वीरता के निदर्शन में भी प्रस्तुत किया गया है । ऊपर जिन पद्यों में समानता प्रदर्शित है उनमें और प्रस्तुत पद्य में अन्तर इतना है कि प्रताप शाह की वीरता के निदर्शक पद्य की अपेक्षा रहीम की वीरता को प्रदर्शित करने वाले उपर्युक्त पद्य में रुद्रकवि की काव्य-शैली और उनकी काव्य-प्रतिभा पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक ही प्रतिभासित हुई है । प्रताप शाह की वीरता का निदर्शक वह पद्य है —

पीनोत्तुङ्गघनस्तनाः सुवदनाः सम्प्राप्य वातायनं
भ्रूकोदण्ड-चलत्कटाक्ष-विशिखश्रेणीभिरेणीदृशः ।
साहाय्यस्य चिकीर्षयेव कलये प्राणेश्वराणां तदा
कन्दर्पप्रतिमं प्रतापनृपतिं व्यालोकयाञ्चक्रिरे ।।

दोनों ही पद्यों की समीक्षा की जाए तो अर्थ-गाम्भीर्य और प्रतिपाद्य के याथातथ्य रूप में प्रतिपादन के दृष्टिकोण से 'खानखानाचरितम्' की प्रतिपादन-शैली और इसमें अभिव्यक्त रुद्रकवि की काव्य-प्रतिभा निश्चय ही प्रशंसनीय है, खासकर रहीम की वीरता वाले पद्य में शृङ्गार के साथ-साथ भयानक और दोनों के साथ ही अन्य भावान्तर तक की प्रतीति का प्रतिपादन और भी चमत्काराधायक बन पड़ा है। इसी प्रकार के अन्य भी कई पद्य इस प्रसङ्ग में उद्धरणीय हैं किन्तु हम इन्हें पूर्वोक्त रूप में नहीं पाते हैं अर्थात् उन पद्यों में उतनी समानता नहीं जितनी उपर्युक्त तीन पद्यों में प्राप्य है।

रुद्रकवि उच्चकोटिक साहित्यकार और रससिद्ध महाकवि थे और इसका निदर्शन उनकी कृतियों के अनुशीलन से भलीभांति हो जाता है। दरबारी कविता में आश्रयदाता का स्तुतिगान और तदर्थ कल्पना की ऊंची उड़ान विशेषतया देखने को मिलती है फिर भी अन्य दरबारी कवियों की अपेक्षा रुद्रकवि की काव्य-शैली पर स्वतंत्र रचनाधर्मिता और प्रयोगवादिता का जो प्रभाव दीख पड़ता है, वह सुतरां प्रशंसनीय है। समूचे 'खानखानाचरितम्' में कल्पना की ऊंची उड़ान एक विलक्षण साहित्याकाश में पहुंचा दीख पड़ता है। इस कल्पनातीत काव्यरूपी आकाशगङ्गा में भी कहीं छोटे-छोटे गद्यखण्ड तो कहीं विकट गद्यखंड, कहीं 'आर्या' जैसे छोटे छन्द तो कहीं 'स्रग्धरा' जैसे विशालकाय छन्द की निर्मल छटा, तारों सी तैरती जान पड़ती है। इस काव्याकाश का मनोहारी दृश्य तो तब उपस्थित होता है जब विकट गद्यखण्ड के बीच अचानक लयात्मकता का सन्निवेष लिये गेय पदावली वाले 'वृत्तगन्धि'-प्रकारक गद्यखण्ड उपस्थित हो जाते हैं और अपनी श्रुति-मधुरता के द्वारा इस काव्याकाश के मृदुनिःस्वन से सहृदय के सरस हृदय को प्रफुल्लित कर जाते हैं। यह मानी हुई बात है कि चम्पू के लिए गद्य एवं पद्य मिश्रित रचना करनी पड़ती है। किन्तु रुद्रकवि ने अपनी इस 'चम्पू'-रचना की सार्थकता के लिए जिन गद्य-खण्डों का निर्माण किया वे गद्य होकर भी गद्य नहीं रहे। वे 'वृत्त' अथवा छन्दों में निबद्ध पद्यों के समान आनन्द-दायक बन पड़े हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यदि रुद्रकवि ने पारम्परिक गद्यों की उस विधा में अपने गद्य लिखे होते और अपनी इस रचना को 'चम्पू' सिद्ध करने मात्र के लिए गद्य का प्रणयन करते

तो प्रस्तुत काव्य का कैसा स्वरूप या इसकी कैसी उदात्तता प्रकट होती किन्तु हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उस रूप में यह चम्पूकाव्य वर्तमान 'वृत्तगन्धि'-गद्यों के अभाव में वैसा मनोरम न बन पड़ता।

अस्तु, हम चर्चा कर चुके हैं कि रुद्रकवि दरबारी-कवि थे और अपने आश्रय-दाता के प्रीत्यर्थ उन्होंने कविताएं लिखी हैं। एक-दो नहीं अगत्या उनकी समग्र कृतियाँ ही अपने आश्रयदाता के प्रीत्यर्थ लिखी गई हैं। सबसे मजेदार बात यह कि उनकी ये समग्र कृतियाँ भी मात्र इतिहास-संबद्ध व्यक्तियों, शासकों तथा घटना-प्रधान वर्णनों पर प्रस्तुत हुई हैं। और इससे भी मजेदार तथ्य यह कि रुद्रकवि के ये सभी वर्ण्य-व्यक्तित्व प्रायः मुगल-दरबार से ही संबन्धित रहे हैं। इस रूप में रुद्रकवि के काव्यों से हमें सबसे अधिक जिस तथ्य की प्राप्ति हो सकती है वह है १६ वीं एवं १७ वीं सदी के इतिहास, खासकर मुगल-कालीन और उसमें भी अकबर से लेकर शाहजहाँ के काल तक के भारतीय एवं दक्षिण-भारतीय इतिहास का सुव्यवस्थित निरूपण। मुगलों की राज्य-नीति, कूटनीति, दक्षिण-भारत के अन्यान्य छोटे-मोटे राज्यों, गोलकुण्डा-बीजापुर-बेदूर-दक्कन-बुर्हाणपुर-बागुलान आदि राज्यों पर मुगलों के आक्रमण, इन पर विजय तथा इन राज्यों के साथ किए गए विविध प्रकार के सन्धि आदि का इतना प्रामाणिक यथार्थ वर्णन; जितना कि रुद्रकवि के चरित-प्रधान काव्यों में हो आया है, -अन्यत्र कहीं या किसी पुस्तक में नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसे स्पष्ट समझने की आवश्यकता है। इतिहास की वे पुस्तकें जो मुगलों के दौर में लिखी गईं हैं यद्यपि वे भी उसी प्रकार की तटस्थ भाव-भूमि तथा 'इतिहास' के याथातथ्य वर्णन के लिए ही पूर्ण ईमानदारी के साथ प्रणीत हुईं किन्तु आधुनिक कतिपय विद्वानों, समाज के एक वर्ग तथा बहुत से व्यक्तियों को कभी-कभी इन पर अविश्वास सा हो आता है अतः ऐसे समकालीन फारसी ऐतिह्य-ग्रन्थों के समानान्तर यदि रुद्रकवि के इन चरितप्रधान-काव्यों को रखकर पढ़ा जाए तो मध्यकालीन इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं, व्यक्तियों, युद्धों तथा मुगल-राजनीति एवं कूटनीति से संबन्धित परिदृश्यों का किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से रहित तथा भ्रम-रहित संप्रत्यय को प्राप्त किया जा सकता है।

अस्तु हम चर्चा कर रहे थे कि रुद्रकवि यथार्थतः दरबारी-कवि रहे हैं। इस रूप में पारम्परिक कवियों के राजवर्णन से रुद्रकवि के इस राजवर्णन को हम न तो किसी भी प्रकार न्यून ही कह सकते हैं और न ही किसी भी प्रकार का अतिवादी। अन्य दरबारी कवियों से इनकी तुलना के समय हमें विशेष सावधान रहना पड़ता है और वह इसलिए कि तब रुद्रकवि को हम कभी-कभी कितने ही

दरबारी-कवियों से उन्नीस पाते हैं। किन्तु तब भी यह नहीं कह सकते कि उन कवियों से रुद्रकवि की प्रतिभा कहीं भी घटकर है, हाँ यह अवश्य है कि स्वतन्त्र काव्य-शैली इसमें विशेष भूमिका का निर्वाह करती है और इस प्रसङ्ग में हम यदि 'नैषधीयचरितमहाकाव्यम्' के नायक राजा नल के अथवा दमयन्ती-स्वयंवर में आये हुए राजाओं के वर्णन और उसमें प्राप्त कल्पना-बाहुल्य की तुलना रुद्रकवि से करने बैठें तो निश्चय ही रुद्रकवि की कविता इसके सामने नहीं ठहरती क्योंकि इस प्रसङ्ग में श्रीहर्ष की काव्य-प्रतिभा विशेष पहुंच रखती है। यहाँ काव्य-प्रणयन के वास्तविक उद्देश्यों या प्रयोजनों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। स्वतन्त्र रचनाकार अपनी काव्य-प्रतिभा और इससे प्रतिभासित अपनी वर्णना-चातुरी तथा कल्पना-विचित्रता को चाहे तो अन्तरिक्ष के किसी सर्वथा अज्ञात लोक तक पहुंचा दे, किन्तु परतन्त्र कवि के पंख उतने सुदृढ़ रखे ही नहीं जाते कि वह अपनी काव्य-प्रतिभा को ऐसे किसी लोक तक की यात्रा करा सके और वह विवश हो उतने ही आकाश में विचरण करता रहता है जितने में उसके आश्रयदाता और उसके काव्य-विषयीभूत प्रतिपाद्य को आनन्द प्राप्त हो सके, या फिर वह चाहे। वैसे रुद्रकवि अपनी काव्य-प्रतिभा को इस अनन्त आकाश से भी ऊपर उड़ाने की क्षमता रखते हैं और किसी भी रससिद्ध महाकवि की सरस वाणी से अधिक रसधारा को प्रवाहित कर सकते हैं, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपनी ही काव्यप्रतिभा की प्रशंसा करते हुए कहा भी है —

निस्सारीयति सारिका पिककुलं रङ्कीयति व्याकुलं
हंसाली परमाकुलीयति शुकीमालाऽपि मूकीयति।
यामाकर्ण्य किलाधरीयतितरां सौधाधरी माधुरी
सेयं कापि सरस्वती रसवती रुद्रस्य विद्योतते।।

(राष्ट्रौढवंशमहाकाव्यम्, २०/९३)

किन्तु आश्रयदाता के अनेकानेक ज्ञात अज्ञात कारणों ने; जिनमें से एक प्रमुख कारण यह भी है कि इस काव्य की रचना से उनके आश्रयदाता को एक विकट एवं अत्यन्त जटिल राजनैतिक समस्या का 'सद्यः'-फलदायी हल भी प्राप्त करना था सो वह कल्पना के उस काल्पनिक, ऊंचे किञ्च झूठे आकाश तक नहीं उड़ सकते थे जिस पर श्रीहर्ष और बाणभट्ट बिना किसी आयास के ही तत्क्षण अपने विकट पंख फैलाए उड़ते दिखाई पड़ते हैं। दूसरे जिसका चरित लेकर वह बैठे हैं वह भी इतना प्रशंसा-प्रिय होता कि अपनी इस प्रकार और इस कोटि तक स्तुति तथा कीर्ति-गाथा को सुन लेता तो कोई बात थी, उसकी स्थिति तो यह है कि एक

बार गङ्ग कवि ने एक छप्पय लिख कर उसे समर्पित किया तो उस छप्पय के रचना-सौन्दर्य पर प्रसन्न होकर उसने गंग को ३६००००० रुपये पुरस्कार दे डाले। बिचारे गङ्ग कवि ठहरे दरिद्र ब्राह्मण कवि ! इतना रुपया उन्होंने कब देखा होगा, बहुत आश्चर्यचकित हुए, बहुत प्रशंसा की और देखा कि उनकी प्रशंसा का उन पर कोई विशेष असर भी नहीं। दूसरे जब वे पुरस्कार देने हेतु हाथ उठाते हैं तो जितना हाथ उठता जाता है, उतनी ही उनकी आंखें नीची होती जाती हैं। बिचारे ने पूछ ही लिया —

सीखे कहाँ नवाब जू ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठ्यौ त्यों त्यों नीचे नैन।।

बड़ी विनम्रता से रहीम ने गङ्ग के इस भ्रम का निवारण किया कि वह किसी को कुछ देते हैं —

देनहार कोउ और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरत ताते नीचे नैन।।

तो ऐसे किसी शासक के चरित को लिखते समय उसकी प्रशंसा के वर्णन के प्रसङ्ग में यह ध्यान रखना ही होगा कि स्तुतिपरकता अत्यन्त स्फुट और अतिवादी भी न हो, नहीं तो गजब भी हो सकता है। मुझे नहीं मालूम यह 'गजब' किस प्रकार का होगा किन्तु हो सकता है, यह सुनिश्चित है। अब क्यों सुनिश्चित है; इस तथ्य के जिज्ञासुओं को उनके पूर्ण व्यक्तित्व से परिचित होना पड़ेगा और उनके ऐसे किसी व्यक्तित्व के एक छोटे से प्रसङ्ग को हम स्वयं उन्हीं के एक दोहे में निम्नवत् पाते हैं —

ये रहीम फीकै दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यौं तिय आपनु कुच गहै, आप बड़ाई आपु।।

अतः ऐसे ही न जाने अन्य भी कितने कारणों ने रुद्रकवि की उस स्वतंत्र काव्य-प्रतिभा को उस ऊंचाई तक उड़ने पर पाबन्दी लगा दी।

रुद्रकवि की काव्य-शैली की समीक्षा व उसकी सम्यक् समालोचना हेतु हम विद्वानों और काव्यशास्त्र के अधिकारी आचार्यों के साथ ही समीक्षकों व आलोचक सुधी पाठकों को सादर आमन्त्रित कर इस विशालकाय भूमिका को यहीं समाप्त करते हैं। 'खानखानाचरितम्' को मूलरूप से सम्पादित कर उसे प्रकाशित करने का श्रेय स्वनामधन्य संस्कृत-सेवी एवं विश्वविश्रुत अनुसन्धाता डॉ. यतीन्द्र विमल चौधरी को है। प्रस्तुत प्रकाशन एवं अनुवाद के लिए उन्हीं के प्रकाशित

संस्करण का उपयोग किया गया है तदर्थ आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। इसी प्रकार डॉ. विनायक वामन करम्बेलकर आदि विद्वानों के प्रति भी इस क्रम में हार्दिक कृतज्ञता।

इस अनुवाद को इस रूप में प्रस्तुत करने में काशी के कई स्वनामधन्य संस्कृत-विद्वानों से मुझे सहायता प्राप्त हुई, जिनमें आचार्य डॉ. शिवराम शर्मा (प्राध्यापक, संस्कृत : मञ्च एवं कला सङ्काय, का.हि.वि.वि.) प्रमुख हैं। आप सबके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में "अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी" की निदेशिका डॉ. शुचिस्मिता पाण्डेय जी के प्रति तो सर्वात्मना धन्यवाद, साधुवाद एवं कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूं जिन्होंने संस्थान के उद्देश्यों के अनुरूप न केवल 'खानखानाचरितम्' अपितु ऐसी कितनी ही दुर्लभ कृतियों को कई रूपों में प्रकाशित करने का दृढ़ सङ्कल्प लिया है और इसके अनुरूप ऐसी कृतियों के प्रकाशन पर दत्तचित्त भी हैं। प्रस्तुत अनुवाद एवं इसका प्रकाशन आपके इसी शुभ-सङ्कल्प का एक लघुतम परिणाम है। संस्थान की "अज्ञात एवं दुर्लभ-कृति-प्रकाशन-माला" कीं यह प्रथम लघु पुष्पाञ्जलि भगवती गङ्गा को; स्वयं रहीम की इन्हीं पंक्तियों के साथ सादर समर्पित है —

सुरधुनि मुनिकन्ये तारयेः पुण्यवन्तं स तरति निजपुण्यैस्तत्र किन्ते महत्त्वम्।
यदिह यवनजातिं पापिनं मां पुनीषे तदिह तव महत्त्वं तन्महत्त्वं महत्त्वम्।।

देवप्रबोधिनी एकादशी,
संवत् २०६३ विक्रमी.

विनीत
अनुवादक

नवाबखानखानाचरितम्

नवाबखानखानाचरितम्

ग्रन्थ के निर्विघ्न समापन हेतु मङ्गलाचरण सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थकारों की परिपाटी **''समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्''** और भारतीय काव्य-प्रणयन के उचित सिद्धान्तों के परिपालन हेतु सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महाकवि श्रीरुद्र अपने इष्टदेव भगवान् श्री सूर्य को प्रणाम करते हैं। खानखाना के जिस ऐतिहासिक जीवन-चरित को वे काव्य में निबद्ध करने जा रहे हैं उसके अनुसार प्रतापी खानखाना के प्रताप के सम्यक् प्रतिपादन हेतु उनका सूर्य-नमस्कारात्मक यह मङ्गलाचरण बहुत ही उचित बन पड़ा है —

कमलमतुलशोभं रात्रिसङ्कोचभीतेः
इव शरणमुपेतं यः कदापि स्व(त्व) हस्तात्।
कथमपि न जहाति स्वाश्रितानन्दहेतुं
भवजलनिधिसेतुं भानुमन्तं भजे तम्।।

अन्न, जल, वायु, वर्षा आदि के माध्यम से संसार-रूपी सागर को पार करने में जो सेतु का कार्य करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार प्राणिमात्र का जीवन अन्न, जल, प्राणवायु, वर्षा आदि के ऊपर ही आश्रित है और ये सब सूर्य के प्रकाश पर अवलम्बित हैं इस कारण संसार-सागर को पार करने में सूर्य अथवा उसका प्रकाश सेतु हुआ) ऐसे सहस्ररश्मियों से मण्डित उन भगवान् सूर्य को मैं प्रणाम करता हूं जो अत्यन्त शोभा सम्पन्न कमल को मानो रात्रि-सङ्कोच के भय से अपनी शरण में आया हुआ मानकर और स्वयं की किरणों पर कमल के सौन्दर्य को आश्रित जानकर कभी-भी और कहीं-भी अपनी किरणों से उस कमल को अलग-थलग नहीं रखते।

टिप्पणी :

१. यहाँ पद्य में **'यः कदापि कथमपि कमलं न जहाति'** यह वाक्य

१. डॉ. करम्बेलकर ने नागपुर वाली प्रति में प्रथम उल्लास का प्रारम्भ जिस पद्य से सूचित किया है वह पद्य प्रस्तुत लंदन वाली प्रति में चतुर्थ-उल्लास का अन्तिम पद्य **'मन्ये विश्वकृता दिशामधिपता'** आदि है। किन्तु ग्रन्थ के मङ्गलाचारण के रूप में ऐसा पद्य उचित प्रतीत नहीं होता जबकि लंदन वाली इस प्रति का यह पद्य यहाँ मङ्गलाचरण के रूप में उचित प्रतीत होता है।

चिन्त्य है। यह लोक-प्रसिद्ध है कि सूर्य, कमल का साहचर्य; रात में छोड़ दिया करते हैं अतः कमल के फूल रात में मुरझा जाते हैं और दिन में पुनः सूर्य की किरणों के सम्पर्क में आ; खिल उठते हैं। किन्तु कवि के अनुसार सूर्य कमल को कहीं-भी और कभी-भी नहीं छोड़ता मानों वह कमल को रात्रि सङ्कोच के भय से अपने शरण में आया जानता है.. आदि। कवि के इस प्रकार के वाक्य-विन्यास का क्या रहस्य हो सकता है यह विचार करने योग्य है। काव्यतत्त्व-वेत्ताओं और सहृदयों के लिए इस पद्य में प्रतिभा-प्रयोग का पर्याप्त स्थान है। एक आशय यह भी हो सकता है — सूर्य कभी अस्त नहीं होते ! हाँ यह अवश्य है कि प्रथम गोलार्द्ध के सूर्य से विपरीत दिशा में होने पर उतने स्थान पर सूर्य की किरणें पहुंच नहीं पातीं और वहाँ रात हो जाया करती है अतः ऐसे स्थान पर होने वाले कमल के पुष्प रात को मुरझा जाया करते हैं; किन्तु इसमें सूर्य का कोई अपराध नहीं। **'सूर्यसहस्र-नामस्तोत्र'** में सूर्य को **'जगत्सेतु'** कहा गया है।

२. रुद्रकवि की प्रस्तुत उत्प्रेक्षा से न तो किसी विशेष काव्य-चमत्कार का ही सृजन हो सका है और न ही काव्यार्थ में किसी प्रकार का उत्कर्ष ही आ सका है, हाँ इसके विपरीत लोक एवं शास्त्र-विरुद्ध काव्यदोषों का अवकाश भले आ गया।

मायारन्तरि पार्थयन्तरि सुराधीशद्वि(द्दि)षां हन्तरि
त्रासत्रातरि कामदातरि दयादानव्रतस्थातरि।
पद्माभर्तरि पञ्चबाणपितरि क्षीरोदजामातरि
स्वात्मध्यातरि भक्तपातरि मनो भूयाद् बलभ्रातरि।।

योगमाया भगवती श्रीराधा के साथ रमण करने वाले, महासमर के बीच भ्रान्त एवं सांसारिक बन्धनों में जकड़े अर्जुन को गीता के दिव्य उपदेशों से नियन्त्रित करने वाले, इन्द्रादि देवताओं के शत्रुओं का संहार करने वाले, भवसागर के त्रास अथवा भय या बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाले, धर्म के अविरुद्ध कामतत्त्व को प्रदान करने वाले, जीवमात्र के प्रति दया-धर्म रखने वाले, अनाश्रित एवं विपन्नों को दान देने वाले तथा नियम-व्रतादि के पालक उच्चकोटिक मनुष्यों में वास करने वाले भगवती श्री महालक्ष्मी के पति, कामदेव के पिता, ... , अपनी ही आत्मा के ध्यान में मग्न रहने वाले तथा भक्तों की रक्षा करने वाले बलदेव के छोटे भाई श्रीकृष्ण में मेरा या हमारा मन लगा रहे॥

टिप्पणी :

सप्तम्यन्त इन पदों के मध्य **'क्षीरोदजामातरि'** से कवि क्या आशय हो सकता है यह प्रकट नहीं हो पाता। अनेकानेक पण्डितों से सहायता लेने के बावजूद

यह स्पष्ट नहीं हो सका कि इसका अर्थ क्या लगाया जाए। ईश्वर द्वारा स्वयं का स्वात्मध्यान प्रसिद्ध है। बहुधा इन्हें स्वात्म-ध्यान करते हुए दिखाया जाता है। **''स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार''**-कुमारसंभव।

....प्रतिपदेश(?) स्थितोऽपि रविरिव व्याप्तसकलभूमण्डलः प्रशमिताशेषद्विषदिन्धनोऽपि ज्वलत्प्रतापानलः आयतलोचनोऽपि सूक्ष्मदर्शनः सकलजगत्प्रासादशिखरशेखरीभूतकीर्तिमहाध्वजः प्रचण्डदोर्दण्डमण्डप-मण्डली (मण्डलीमण्डप)[१]-विश्रान्तजयश्रीविराजमानः किं बहुना सकल-सौभाग्यनिधिः श्रीनवाबखानखानाभिधभूपालः केन वर्णनीयः।

...भगवान सूर्य के समान सकल भूमण्डल में व्याप्त होकर विद्यमान रहने वाले, शत्रुरूपी समस्त इन्धन (लकड़ी-तिनका आदि) को जलाकर बुझा दिये जाने के बाद भी जो अपनी शूरता-वीरता आदि प्रताप के कारण धधकते हुये अग्नि के समान है, विशाल आँखों के रहते भी जो सूक्ष्म दर्शन वाला है; अर्थात् जिसकी दूरदृष्टि है, समग्र संसार-रूपी विशाल भवन या अट्टालिका के शिखर के अग्रभाग पर कीर्ति की महापताका (झण्डे) के समान शोभित अथवा समग्र संसार रूपी भवन के शिखर के अग्रभाग पर जिसकी कीर्ति-रूपी महापताका शोभित हो रही है, प्रचण्ड बाहु-रूपी मण्डप के वृत्त में विश्राम करने वाली जयश्री से सुशोभित; अर्थात् जिसकी विजयश्री स्वयं उसके बाहुओं के मण्डप के वृत्त में निवास किया करती है किञ्च जो स्वयं ही समस्त प्रकार के सौभाग्य की खान है; उस नवाब खानखाना राजाधिराज का अथवा उसके प्रताप या महत्त्व का वर्णन कौन ऐसा कवि, चारण या गायक है जो कर सकता हो। अर्थात् यह और इसका यशःशरीर; दोनों ही अवर्णनीय हैं।

जयत्येष जग(जय)त्येकश्चक्रवर्ती महारथः।
प्रतापैकनिधिः श्रीमान् खानखानाख्यभाष्करः।।

(श्लिष्ट पदों के प्रयोग के कारण सूर्य एवं खानखाना, दोनों के ही पक्षों में इस पद्य का अर्थ प्रयुक्त है) अत्यन्त देदीप्यमान तेज एवं प्रबल प्रताप ही एकमात्र निधि है जिसकी ऐसा यह श्री-ऐश्वर्य से युक्त, महान् रथों पर विचरण करने वाला अतः समग्र संसार का एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट् खानखाना नामक सूर्य ही इस जगत में सर्वोत्कर्ष-शाली है।

वाहोल्लेखित-वैरि-शोणित-पयः-संसिक्तसंग्रामभू-
र्निक्षिप्तेभ-विदीर्ण-कुम्भ-विगलन्मुक्ताख्य-बीजोद्गता।

१. डॉ. चौधरी यहाँ 'मण्डलीमण्डप' का पाठ शुद्ध मानते हैं किन्तु ऐसा मानने से भी पाठ शुद्ध नहीं माना जा सकता क्योंकि स्पष्ट अर्थ 'मण्डली' से ही प्राप्त होता है।

खानश्रीकमनीयकीर्तिलतिका शेषाहिमूला स्फुर-
नक्षत्रप्रसवा निशाकरफला(कला) गङ्गामरन्दस्रुतिः (स्तुतिः) ।।

विकट युद्ध में घोड़ों द्वारा जोती गई व शत्रुओं के रक्त से सींची (लथपथ) हुई संग्राम-भूमि पर फैली, दो पाट में फाड़ दिये गये मदमस्त हाथियों के मस्तक से गिरकर बिखरी हुई मोतियों से उत्पन्न इन खानखाना की कीर्ति-रूपी लता, जो कि श्री के समान कमनीय है; निश्चित ही इसकी नींव शेषनाग ही हैं और इसी शेषनाग पर यह पृथ्वी स्थिर रहा करती है। खानखाना की इस कीर्ति रूपी लता से उत्पन्न, स्फुरित होते हुए जो नक्षत्र समूह हैं वे मानों इस कीर्ति-लता के पुष्प एवं चन्द्रमा इसका फल है। शुभ्र वर्णों वाली गङ्गा; इस लता से बहने वाली एक प्रकार की निर्मल एवं स्वच्छ धारा है।

इदंप्रभृति नातिथी(थि)कृतसमानधर्मान्तरं (?)
प्रचण्डमहसाऽमुना विचरदेकने(त्रं) स्थितम्(?)।
चिरं किमपि सम्प्रति प्रबलखानखानप्रभोः
प्रतापनवभानुना समजनि द्वि(नद्वि)नेत्रं जगत् ।।

खानखाना के प्रबल प्रताप के वर्णन हेतु प्रस्तुत पद्य की अवतारणा की गई है। इसके अनुसार : अपने लिए अनुकूल होने वाले भी किसी दूसरे धर्म को जिसने आज तक अतिथि नहीं बनाया अर्थात् जिसने अनुकूल किन्तु स्वधर्म के विरुद्ध किसी दूसरे धर्म को स्वीकार नहीं किया और मात्र सूर्यरूपी आंखों वाला होने के कारण एकनेत्र होकर विचरण करता रहा, ऐसे एकनेत्र इस जगत अथवा संसार को अत्यन्त वीर खानखाना की प्रचण्ड आभा वाले इस प्रताप-रूपी नवीन सूर्य ने सदा के लिए दो नेत्रों वाला बना दिया। एक सूर्य तो पूर्व से ही वर्तमान था जो कि इस संसार का प्रथम नेत्र था। स्वयं खानखाना के प्रबल प्रताप (शौर्य) रूपी सूर्य के आ जाने से इस संसार में दो सूर्य हो गए और अब इस संसार की दो आंखें या दो नेत्र हो गए।

टिप्पणी :

'नातिथीकृतसमानधर्मान्तरं' का आशय यह है कि इस संसार ने अपने लिए अनुकूल किसी दूसरे धर्म का आश्रय आज तक नहीं लिया था; जो कि अन्यान्य कारणों से उचित वर्णन है। 'धर्मान्तरं' के स्थान पर 'घर्मान्तरं' का पाठ यदि हो तो अर्थावबोध और भी स्पष्ट होता है, यथा : आज तक किसी समान किन्तु दूसरे घर्म=धूप, गर्मी या सूर्य का आश्रय नहीं लिया है जिसने, उस सूर्य-मात्र-रूपी एकनेत्र वाले संसार को.. ।' यतीन्द्र विमल जी ने **'विचरदेकने स्थितम्'** इन दो पदों के

ीच पाठान्तर प्रस्तुत किया है जो कि 'त्र' या 'त्रं' है। 'विचरदेकने स्थितम्' का ोई स्पष्ट अर्थ प्रतीत नहीं होता अतः 'त्र' या 'त्रं' के विनियोग और इससे अर्थ ी प्राप्ति हेतु मैंने काशी के साहित्य-शास्त्र के प्रतिष्ठित आचार्य और कवि, डॉ. शेवराम शर्मा जी से सहायता ली तो उपरिवत् भावार्थ के रूप में अर्थ का अनुसन्धान किया गया। खानखाना की प्रचण्ड आभा वाले प्रताप-रूपी सूर्य ने संसार को दो त्रों वाला बना दिया का आशय यही है कि एक सूर्य तो प्रसिद्ध था ही, स्वयं खानखाना का प्रबल प्रताप-रूपी सूर्य ही इस संसार का दूसरा नेत्र हो गया। विराट् रुष अथवा संसार के सूर्य एवं चन्द्रमा के रूप में दो नेत्र प्रसिद्ध हैं अतः यहाँ शङ्का हीं होनी चाहिए कि जब दो नेत्र थे ही तो पुनः दूसरे नेत्र के रूप में रहीम के प्रताप ो क्यों उपस्थित किया गया ? चन्द्रमा का अस्तित्व सूर्य से ही है, सूर्य के अभाव ें चन्द्रमा की उस सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं। दूसरे रहीम के जिस प्रताप का र्णन किया जा रहा है उसकी तुलना चन्द्रमा से कुछ भी नहीं। साधर्म्य सूर्य से ी सम्भव है सो प्रथम नेत्र सूर्य के साथ-साथ दूसरे नेत्र के स्थान पर भी पहले की रह कोई सूर्य ही होना चाहिए था; सो रहीम के प्रबल प्रताप को उसके स्थान पर स्तुत कर संसार को द्वितीय नेत्र प्रदान किया गया।

इन्द्रः शक्त्या रुषाग्निः शमनकृदसिना(शिला) निर्ऋतिर्युद्धकाले
नैष्ठूर्येण प्रचेताः प्रहरणपयसा वाजिवेगेन वायुः।
अर्थप्राप्त्या कुबेरः प्रतिभटघटितक्रूरदृष्ट्या महेशः
सेवन्ते श्रीनवाबं हरिदधि(रधि)पतयो हन्त सामन्तकल्पाः।।

और इस नवाब खानखाना की आज्ञा में केवल भूलोकवासी राजे या हाराजे ही नहीं रहते अपितु इन्द्र आदि दशों दिक्पाल एवं अन्य देवी देवता भी सकी सेवा में सदा ही तत्पर रहा करते हैं। इन्द्र अपने वज्र, अग्नि अपनी शक्ति ोध, यम अपने तलवार, निर्ऋति जो कि साक्षात् मृत्यु या विनाश की देवी है; अपनी ैष्ठुरता, वरुण अपने जलरूपी शस्त्र, वायु अपने तीव्र गति, कुबेर जो कि संपत्ति ा देवता है अपनी निधि और महेश शत्रुपक्ष के उद्भट योद्धाओं का मर्दन करने ाली अपनी कठोर दृष्टि से इन नवाब खानखाना की सेवा में तैयार रहते हैं।

उल्लङ्घययेदपि पयोनिधिरेष बेलाम्
इन्दुर्दहेदपि चलेदपि काञ्चनाद्रिः।
श्रीखानखानकलिता ललिता कदाचिन्
न त्वन्यथा खलु भवेदभयङ्करोक्तिः।।

अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाला यह समुद्र अपनी सीमा भले ही तोड़ दे, चन्द्रमा भले ही जलाने लग जाए और सुमेरु पर्वत भी अपनी स्थिरता को भले ही छोड़ दे किन्तु इस खानखाना के प्रतिज्ञात जो कर्णप्रिय एवं ललित वचन हैं; वे कभी भी विपरीत नहीं हो सकते अर्थात् यह कभी भी वचन-विमुख नहीं हो सकता ।

खानश्रीकमनीयकीर्तिमतुलां लोकत्रय(त्रयं)व्यापिनीं
कैलाशेन महीभृता तुलयितुं धाताऽभवत् सोद्यमः ।
तत्पूर्त्यै गिरिशन्ततः शशिकलां पश्चात्तु मन्दाकिनीम्
आधायाऽप्यतुलेति नाभिनलिनं विष्णोर्विवेश ह्रिया ।।

इस खानखाना के यश एवं उसकी चातुर्दिक कीर्ति की महत्ता यह है कि एक बार — ब्रह्मा तीनों लोकों में व्याप्त खानखाना की अपार एवं शोभामयी विमल कीर्ति की तुलना पर्वतराज कैलाश के साथ करने को उद्यत हुए और कीर्ति के समक्ष कैलाश को ठहरता न देख उस तुलना की पूर्ति के लिए उन्होंने क्रमशः कैलाश-शायी भगवान् शिव, शिव के ललाट पर स्थित चन्द्रमा की सोलहवीं कला और भगवती गङ्गा के साथ भी खानखाना की उस विमल कीर्ति की तुलना की । किन्तु इनमें से किसी के भी नवाब की कीर्ति के समान न होने और यह जानकर कि खानखाना की कीर्ति अतुलनीय है, ब्रह्मा लज्जा के मारे भगवान् विष्णु के नाभिकमल में जा छिपे ।

धातः किं ननु तुल्यते हिमवता सार्धं यशः कस्य वा
श्रीखानेन्द्रमहीपतेर्वत भवान् व्यक्तोऽधुना(नो) वैदिकः ।
कस्माद् व्याप जगत्रयीमिदमसौ[१] कुत्रेह न ज्ञायते
धाता बालसरस्वतीवचनतो भग्नोद्यमोऽभूदतः ।।

इस प्रकार ब्रह्मा जी को खानखाना की उस अपार कीर्ति की तुलना करते और उसमें असफल होने के कारण लज्जित होते देख समीप खड़ी स्वल्प अवस्था वाली सरस्वती ने कौतुकता से पूछा — हे परमपिता ! यह आप कैलाश-पर्वत एवं भगवान् शिव आदि के साथ किसके यश की तुलना करने को उद्यत हो उठे हैं !' ब्रह्मा ने उत्तर दिया - 'नवाब खानखाना के ।' बालसुलभ चपलता के साथ सरस्वती ने इस पर हंसकर कहा कि - 'इससे तो आपका वैदिकत्व (जडत्व) और भी स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है !' तब ब्रह्माजी ने झेंपकर पूछा वो किस तरह ! तो

१. चौधरी जी ने 'जगत्रयीमिदमसौ' को शुद्ध नहीं किया है और ना ही कोई पाठ ही दिया है । 'कस्माद्' पद भी भ्रान्त है, अर्थावबोध के लिए 'यस्य' होना चाहिए ।

सरस्वती ने कहा - 'अरे आप यह कैसे नहीं समझ सके कि सम्पूर्ण जगत् जिसकी विमल यशोराशि से परिव्याप्त है वह यही खानखाना हैं और आप उन्हीं के यश की तुलना करने बैठ गए !' बाल-सरस्वती के इस प्रकार के वचनों को सुनकर ब्रह्मा और भी लज्जित हुए और इस तुलनात्मक कार्य से उनका उद्यम समाप्त हो गया।

टिप्पणी :

पद्य में तृतीय चरण के अन्तर्गत **'व्याप जगत्रयीमिदमसौ'** तक वाक्य एवं उनके पदार्थ चिन्तनीय हैं। 'व्याप' को आप् धातु लिट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन का प्रयोग नहीं माना जा सकता क्योंकि ब्रह्मा और सरस्वती के आलाप-संलाप के मध्य रहीम को इतना परोक्ष कर देना उचित नहीं होगा। व्युत्पत्ति-विशारद विद्वान् इस प्रयोग के आशय को समझने के लिए आमन्त्रित हैं। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को 'व्याप' के स्थान पर 'व्याप्य' पाठ का अनुमान होता है। वैसे चौधरी जी ने इसके किसी पाठान्तर को प्रस्तुत नहीं किया है। 'व्याप्य' पाठ हो तो इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा — **इदं** (पूर्व-परामर्शक यश का सर्वनाम विशेषण है) **यस्य यशो जगत्रयीं व्याप्य स्थितमसौ खानखाना त्वया कुत्र इति कस्मान् न ज्ञायते।'**

येनारातितमिस्रघर्म(धर्म)महसा पाणौ(पाणी) गृहीता युधि
प्रासूत प्रथितौ कृपाणलतिका कीर्तिप्रतापौ . यमौ।
सर्वोर्वी(षी)-पति-चक्र-चारु-मुकुटालङ्कार-चूडामणिः
खानक्षोणिपतिः क्षितौ विजयतामाचन्द्रसूर्यार्णवम्।।

अब खानखाना के उस पराक्रम और अद्भुत वीरता के विषय में भी सुनो कि — शत्रुरूपी अन्धकार में ताप-रूपी उत्सव अथवा तीक्ष्ण प्रकाश के समान आचरण करने वाले खानखाना के द्वारा समरभूमि में अपने हाथों जो तलवार धारण किया गया, उस तलवार ने उनकी दुर्धर्ष वीरता, अदम्य पराक्रम और अद्वितीय उत्साह के कारण नवाब के लिए कीर्ति और प्रताप नामक दो अविनाशी पदार्थों को, जुड़वां बच्चों के समान उत्पन्न किया। ऐसा यह; समस्त पृथ्वी का पति; राजाओं के मुकुटों के मध्य अलङ्कार अथवा चूडामणि के समान सर्वोपरि विराजमान रहने वाला नवाब खानखाना; सूर्य, चन्द्रमा और समुद्र की सत्ता पर्यन्त इस लोक में अमर हो और विजय प्राप्त करे।

टिप्पणी :

पद्य के प्रथम दो चरणों के समक्ष अन्तिम दो चरणों के पदार्थ काव्य-दोष को प्रस्तुत करते हैं। प्रथम दो चरणों में जिस विषय-वस्तु (प्रक्रम) का ग्रहण किया

गया अन्तिम दो चरणों में भी उसी प्रकार या उससे सम्बन्धित विषय-वस्तु (प्रक्रम) का ग्रहण करना चाहिए । यहाँ प्रथम दो चरणों के साक्षात् विपरीत रहीम की उत्कृष्टता का निरूपण करना प्रारम्भ कर दिया गया है ।

।। श्रीमन्नवाव(श्रीमन्वाव)खान(खान)चरिते प्रथम उल्लासः ।।

द्वितीय उल्लासः

श्रीमान् कल्पमहीरुहः किमवनौ किं वा स चिन्तामणिः
किं कर्णः किमु विक्रमः किमथवा भोजोऽवतीर्णः परः ।
इत्थं यत्र विलोकिते मतिमतां बुद्धिः समुज्जृम्भते
सोऽयं संप्रति खानखाननृपतिर्जीयात् सतां भूतये ।।

रहीम के व्यक्तित्व की विविधता को इस पद्य में दर्शाते हुए कहते हैं —

नवाब खानखाना को देखकर कितने ही मनुष्य इनके विषय में सम्भावना किया करते हैं कि क्या यह धरती पर साक्षात् कल्पवृक्ष हैं या मूर्तिमान् चिन्तामणि-रत्न; जिसके सामने इच्छा प्रकट करने मात्र से अभिलाषाएं पूर्ण हो जाया करती हैं ? क्या यह साक्षात् दानवीर कर्ण हैं अथवा साक्षात् विक्रमादित्य । या इस भूलोक पर पुनः दूसरा कोई भोज अवतार लेकर आया है ? इस प्रकार जिस नवाब को और उसके अलौकिक गुण, अद्वितीय दानशीलता को देखकर बुद्धिमानों की बुद्धि भी कई प्रकार की कल्पना करने लगती है और पार नहीं पाती ऐसा यह राजाधिराज रहीम विद्वानों, साहित्यकारों, रचनाधर्मियों और सत्पुरुषों की उन्नति के लिए दीर्घायुष्य को प्राप्त होवे ।

खानखाननवाबस्य गुणान् गण(गुण)यितुं विधिः ।
तारामिषेण तनुते सुधाबिन्दून् नभःपटे ।।

खानखाना नवाब के गुणों की गणना के लिए ही मानों विधि (ब्रह्मा) तारों के बहाने आकाशरूपी पट पर अमृत की बूंदों को फैला रहा है ।

टिप्पणी :

किसी राजा या नायक के गुणों की गणना हेतु तारों का, उन गुणों का मात्रक या मानदण्ड के रूपमें वर्णन करने की संस्कृत-कवियों की अपनी एक अलग प्रकार की परम्परा है । रुद्रकवि उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए रहीम के गुणों की गणना के समय ब्रह्मा द्वारा तारों को मात्रक के रूपमें प्रयोग करने का वर्णन कर

रहे हैं। ब्रह्मा रहीम के एक-एक गुणों को गिनते जाते हैं और आकाश-रूपी पट पर (रूपकालङ्कार) एक-एक तारे को अमृत की बूंदों के समान रखते जाते हैं। आशय यह कि समस्त आकाश रहीम के गुणों के मात्रक तारों से पटा पड़ा है।

मार्गे पृच्छन्ति पान्था(पन्था)निति पुलिनपतत्कूजितैः(ते) सिन्यवोऽयं
वीरश्रीखानखानक्षितिपतिरवनीं(नी) शास्ति कल्याणतः किम्।
यस्योद्यत्खड्ग-धारा-दलितरिपुवधूदृक्पयः(थः)पूरिभूरि(री)
स्फारीभूतप्रवाहाश्चिरमिह जलधेः सङ्गसौख्यं भजामः।।

अपने तटों पर विचरण करने वाले पक्षियों के कूजन के व्याज से स्वयं ये नदी के प्रवाह; अपने ही मार्ग से जाते हुए पथिकों से पूछते हैं (अथवा स्वयं नदियां पूछती हैं) कि — अरे ओ पथिकों ! जरा हमारी भी सुनते जाओ ! वह महान् वीर योद्धा जिसका नाम खानखाना है और इस जगत् का जो एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट् है; कुशल से तो है ! कल्याण-पूर्वक पृथ्वी का शासन तो कर रहा है ! (क्या कहा ! हम कौन हैं !) अरे ! हम उसी खानखाना की भयानक तलवार की धार से मारे गए शत्रु-रमणियों की आँखों के अश्रु-विन्दु हैं जो अपने प्रेमियों की स्मृति में बहाए गए और कालान्तर में एकत्रित हो; प्रवाह का रूप धारण कर; समुद्र में मिल आए हैं और अब तो युगों बीत रहे हैं कि हम यहाँ आनन्द से समुद्र-सङ्गम का सुख भोग रहे हैं !!!

टिप्पणी :

प्रस्तुत पद्य के प्रथम चरण का अन्तिम पद **'सिन्यवः'** विचारणीय है। करंबेलकर ने इस पद-प्रयोग को रहीम का विशेषण बताया है। इसके पीछे उनका तर्क यह है कि रहीम सिन्धु-प्रदेश के निवासी थे किन्तु यदि इस पद को रहीम का विशेषण मान लिया जाए तो एक आपत्ति यह होगी कि **'सिन्यवः'** के स्थान पर **'सिन्धौ भवः सैन्धवः'** सैन्धव का पाठ होना चाहिए। दूसरे **'किम् अवनीं कल्याणतः शास्ति ?'** का कर्ता इसी चरण के पूर्वार्द्ध में **'वीरश्रीखानखानक्षितिपः'** के रूप में आ चुका तो इसी कर्ता के लिए किसी 'सिन्धवः' विशेषण की आवश्यकता नहीं रह जाती। तीसरे यदि पूर्वोक्त पद को कर्ता-विशेषण के रूप में स्वीकार कर भी लिया जाए तो **'पान्थान् मार्गे पृच्छन्ति'** इस वाक्य का कर्ता क्या होगा ? यदि उत्तर चौथे चरण में प्रयुक्त .....**'स्फारीभूतप्रवाहाः'** के रूप में दिया जाता है तो आपत्ति यह होगी कि इस प्रकार समग्र पद्य की एकवाक्यता नहीं होगी और काव्य-नियमों के अनुरूप यथास्थान ही कर्ता को प्रस्तुत होना चाहिए। प्रथम चरण के प्रथम वाक्य

के कर्ता को चौथे चरण के एक नवीन वाक्य के कर्ता के रूप में ही नहीं प्रयुक्त करना चाहिए। जैसा कि **'सङ्गसौख्यं भजामः'** के कर्ता एवं **'पान्थान् पृच्छन्ति'** के कर्ता को .....**'स्फारीभूतप्रवाहाः'** के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अतः **'पान्थान् पृच्छन्ति'** के कर्ता के रूप में 'सिन्धवः' का ग्रहण करना चाहिए और यह सिन्धु पद नदी के अर्थ में स्वीकृत होना चाहिए। **'सिन्धुः'** शब्द नदी के लिए नदी के अर्थ में प्राचीन कोशकारों यथा अमरकोश द्वारा स्वीकृत है और कालिदास ने मेघदूत के पूर्वमेघ में सिन्धुः का नदी के अर्थ में प्रयोग भी किया है : **'वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः ।'**

श्रीखानखान क्षितिप प्रताता[1] भव्यैव सत्या भवतः प्रतिज्ञा ।
त्वं नूनमेकत्र मुधाप्रतिज्ञः प्रतिश्रुतादप्य(प्या)धिकप्रदाने ।।

पृथ्वीपति ..... हे खानखाना ! आपकी प्रतिज्ञा यदि सत्य होती है तो क्या आश्चर्य उसे तो सत्य होना ही है ! किन्तु आप एक स्थान पर निश्यच ही अपनी प्रतिज्ञा और वचन से विमुख हो जाते हैं जब किसीको कुछ देते समय प्रतिज्ञात अर्थ से भी अधिक दे देते हैं !

प्रतापस्ते वह्निस्तदनुमितिहेतुः प्रतिभटा-
यशस्तोमो धूमः प्रसरति नवाबक्षितिपते ।
यतः शत्रुश्रेणीहरिणनयनामण्डलदृशाम्
अजस्रं वाष्पाम्बुप्रसरविरतिर्नैव भवति ।।

हे नवाब खानखाना ! रणोपार्जित आपका प्रताप ही साध्यरूप अग्नि है जिसकी अनुमिति का हेतुभूत; शत्रुपक्ष के योद्धाओं के अपयश का समूह यह धूमराशि चारों ओर फैल रही है। इस धूमराशि के कारण ही मानों हरिणीयों के समान चञ्चल और विशाल नेत्रों वाली शत्रुपक्ष की नायिकाओं की आंखों से अनवरत निकलने वाली आंसुओं की धारा समाप्त नहीं हो रही है।

नवाव नृपकेतने(विडन) त्वयि कृतप्रयाणोद्यमे
किमद्भुतमितस्ततः(स्तव) क्षितिपमण्डली लीयते ।
भवत्कटक-घोटक-स्फुट-खुर-त्रुटद्धूरट-
द्रजस्ततिषु लीयते दिनकरोऽपि यत्कातरः ।।

हे नवाब खानखाना ! राजाओं के प्रतीक अथवा राजाओं के आश्रयस्थल तुम जब युद्ध हेतु प्रयाण करने को उद्यत होते हो तो; युद्धोद्यत तुम्हारे प्रयाण को

१. 'प्रताता' का क्या अर्थ है और किस अर्थ में प्रयुक्त है; - यह स्पष्ट नहीं होता।

सुनकर ही बड़े-बड़े राजे-महाराजे जो इधर-उधर छिप जाते हैं तो उसमें किस बात का आश्चर्य ! तुम्हारी विशाल सेना के असंख्य घोड़ों की पैनी खुरों से उखड़ी उपटी, धरती की विशाल धूलराशि के बवंडर में पड़कर तो स्वयं भगवान् सूर्य भी कातर होकर छिप जाते हैं, फिर ये बिचारे तो साधारण राजे-महाराजे और योद्धा ही हैं।

श्रीमद्वीरनवावसैन्यव(सैधव)खुरक्षुण्णां क्षितिं मूर्छितां
संवीक्ष्य प्रतिभूपतिप्रियतमाः(नमाः) सिञ्चन्ति(ति) नेत्राम्बुभिः।
लीला-कम्पित-कर्णताल-पवनैः संवीजयन्ति द्विपा
जानीमो दिवि धूलिधोरणिरियं छायार्थमुत्सर्पति ।।

दुर्धर्ष सेनापति और उद्भट वीर खानखाना के सैन्य-घोड़ों की खुरों से कुचली अतएव मूर्च्छित पड़ी पृथ्वी को देखकर शत्रु-राजाओं की प्रियतामायें अपने आंसुओं से इस पृथ्वी का अभिसिञ्चन कर रही हैं। पृथ्वी की ऐसी दशा देखकर ही मानों ये हाथी लीलापूर्वक अपने कानरूपी तालपत्रों की हवा से इसे ठंडी कर रहे हैं या पंखा कर रहे हैं और हम जानते हैं कि इन घोड़ों की खुरों से उपट पड़ी ये विशाल एवं अविच्छिन्न धूल-राशि आकाश में जाकर छाया प्रदान कर रही है।

भवत्कर-कृपाणिका-हत-विपक्षपक्षोच्छल-
च्छिरःकमल-सिंहिकासुत-सहस्र-शङ्काकुलः ।
सहस्रकिरणः स्फुरत्तुरग-टाप-टङ्कात्रुट-
द्धरातल-चलद्रजःपटल-पर्वते लीयते ।।

हे खानखाना नवाब ! आपके हाथों में पड़ी तलवार की धार से काटे गए शत्रु-वीरों के उछलते हुए शिरों को देखकर; अनेकानेक राहुओं की आशङ्का से सशङ्कित अतएव भयभीत यह सूर्य भी अब, आपके दौड़ते-उछलते घोड़ों की भयङ्कर टाप-टंका से टूट-टूटकर बिखर पड़े धरातल से उठती हुई धूलराशि के पर्वत में; जाकर छिप रहा है।

सुस्नातस्तरवारिवारिणि यशोधौताम्बरं धारयन्
सन्मन्त्रं कलयन् परास्यकमलैर्भूदेवतां पूजयन्।
जुह्वच्चैतदसून् प्रतापदहने(नि) त्वच्चण्डदो(दी)र्विक्रमः
शत्रुच्छत्र-(छत्रं)धरार्थ-दर्प-यशसां प्राणाहुती(ति)राददे ।।

हे खानखाना नवाब ! तुम्हारे प्रचण्ड भुजाओं का विक्रम; तलवारों के तेज धार-रूपी जल में स्नान कर, यशो-रूपी सफेद वस्त्रों को धारण कर, मृत्यु देवता

के मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ, शत्रुवीरों के सिर-रूपी कमल के फूलों से भूदेवता का पूजन कर रहा है तथा प्रताप-रूपी अग्नि में शत्रुपक्ष के छत्र, राज्य, कोष, दर्प, यश किञ्च प्राणों की आहुतियां दे रहा है ।

एताः सम्प्रति गर्भगौरवभराद्वीरावरोधाङ्गना(:)
कान्तारेषु पलायितुं वत कथं पद्भ्यां भवेयुः क्षमाः ।
इत्यालोच्य(च) नवाववीर ! भवतः संग्रामनादीभवत्-
भैरीभांकृतिभिः सखीभिरिव किं तद्गर्भपातः कृतः ।।

'शत्रु-वीरों की ये पत्नियां पूर्ण-गर्भ के गुरुतर भार से इस युद्ध के प्रारम्भ होते ही प्रसव हेतु जंगलों की ओर या भीषण वनों की ओर; जहाँ उनके प्रसव को कोई देख न सके, कैसे पैदल भाग सकेंगी' -सो हे नवाब खानखाना ! मानों उन गर्भ-पीडिताओं के इस दुःख को दूर करने के लिए ही मानों तुम्हारी सेना के द्वारा बजाए गए भेरी एवं मृदङ्ग आदि की भीषण ध्वनियों ने सखी के समान उन शत्रुओं की वीर-रमणियों के गर्भपात में तत्काल सहायता प्रदान की ।

पलायितजने भवन्निशितबाणनिर्मूलित-
प्रतीपनृपपत्तने पतितहारमुक्ताफले ।
न तिष्ठति नखोदरक्षपितकुम्भ(कुभ)मुक्ताफल-
द्विपारिवसतिभ्रमादपि किरातशातोदरी ।।

हे खानखाना नवाब ! शान पर तेज किये हुए आपके बाणों द्वारा निर्मूलित अर्थात् समूल नष्ट-भ्रष्ट शत्रुओं के नगर; जिसमें अनेकानेक कीमती हार और मोतियों की मालायें तो गिरी पड़ी हैं किन्तु उन्हें उठाने वाला वहाँ कोई नहीं ! क्योंकि वहाँ के सभी लोग या तो भाग गये या मार गिराये गये । ऐसे नगर में 'निश्चय ही यहाँ हाथियों के मस्तक को अपने नाखून से फाड़कर उनके मुक्ताफलों को बिखेर देने में सक्षम सिंह रहा करते हैं' -इस भ्रम से किसी किरात की पतली कमर वाली स्त्री भी एक क्षण नहीं ठहरती ।

भानुः प्रतापिभि(पभि)रुदारयशोभिरिन्दु-
स्तातः प्रजाभिररिभिः कुपितः कृतान्तः ।
कल्पद्रुमो गुणिजनैर्मदनोऽङ्गनाभिः
संवीक्ष्यते जगति भूपतिखानखानः ।।

भूलोक में इस खानखाना को; प्रतापी पुरुष सूर्य के समान, उदार यश वाले चन्द्रमा के समान, प्रजा (सामान्य जनता) पिता के समान, शत्रु कुपित यमराज के

समान, गुणिजन कल्पद्रुम के समान और सुन्दर कामिनियां; अनुराग के कारण कामदेव के समान देखा करती हैं।

यत्र च राजनि राजनीति(रजनी राजजनीतिति)चतुरे चतुरर्णवमेखल-मेदिनीमण्डलमखण्डं शासति विवादः षड्(षट्)दर्शनिषु, अविद्याप्राधान्यं पूर्वमीमांसायाम्, स्फोटाविर्भावो व्याकरणेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, महापा(महाप)तकोपपातकश्रवणं धर्मशास्त्रेषु, नयनाश्रूणि हरिकथाश्रवणेषु, छलजातिनिग्रहसंशय(संश)वितण्डाहेत्वाभासप्रयोगप्रमाणदित्रेधाव्यभिचारो लक्षणवाक्यपदकृत्येषु, मनसः परमाणुता गौतमीये, उत्प्रेक्षाक्षेपौ काव्यालङ्कारेषु, कूटयुद्धं महाभारते, भयं प्रथमप्रियसमागमनीयमान-(..गमनीयमाननवोढा..) नवोढ़ावनितान्तःकरणेषु, काठिन्यं कार्णाटिकी (कि)कुचमण्डलेषु, चापल्यं पाञ्चालीनयनाञ्चलेषु, मालिन्यं मालवीकुचाग्रेषु, मात्सर्यं मर(मरम)हटीषु, कापट्यं लाटी(लाटि)कुटिलकटाक्षेषु, कौटिल्यं केरलीकुन्तलकलापेषु, कार्श्यं काश्मीरीकटितटेषु, मान्द्यं माथुरीचलनचातु(चतु)रीषु.....

राजनीति चतुर जिस राजा के; चारों समुद्रों की करधनी से परिवेष्टित भूखण्ड पर शासन स्थापित करने पर — विवाद केवल आस्तिक दर्शनों में होता था (प्रजा में किसी बात को लेकर विवाद नहीं था), अविद्या की प्रधानता पूर्वमीमांसा में (प्रजा में कोई अशिक्षत नहीं था और सभी विद्या-सम्पन्न हुआ करते थे), स्फोट की चर्चा व्याकरण शास्त्र में (प्रजा में कभी किसी प्रकार के विस्फोट की चर्चा नहीं सुनी जाती थी), नास्तिकता केवल चार्वाकों में (प्रजा वेदों में विश्वास रखती थी और आस्तिक थी), महापातक और उपपातकों का श्रवण केवल धर्मशास्त्र में (जनसामान्य महापातक तथा उपपातक आदि पापों से रहित था), आंखों से आंसुओं का गिरना केवल भगवान् श्रीहरि की कथा सुनते समय (अकारण कोई प्रजावासी आंसुओं को नहीं गिराता था अर्थात् प्रजा को कोई दुःख नहीं था), छल-जाति-निग्रह-संशय-वितण्डा-हेत्वाभास-प्रयोग-प्रमाणादि तथा तीन प्रकार के व्यभिचार; लक्षण, वाक्य एवं पदकृत्य में (प्रजा में कोई किसी को छलता नहीं था, किसी का निग्रह नहीं होता, कहीं कोई व्यभिचार नहीं होता), मन का छोटा होना केवल गौतमीय न्यायशास्त्र में (प्रजा का हृदय बहुत विशाल था कोई छोटे मन वाला नहीं था), उत्प्रेक्षा और आक्षेप केवल काव्य-शास्त्र में (जन-सामान्य किसी पर अकारण किसी प्रकार का आक्षेप नहीं लगाता था), कूटयुद्ध केवल महाभारत में (कूट-युद्ध जन-सामान्य में प्रचलित नहीं था), किसी प्रकार का कोई भी भय केवल विवाह के बाद

प्रथम बार पति-समागम हेतु 'कोहबर' तक ले जाई जा रही नव-विवाहिता सुन्दरियों के अन्तःकरण में (जनता अन्य किसी प्रकार के भय से रहित थी), कठिनता कर्नाटक-देश की कामिनियों के स्तन-मण्डल में (प्रजा के व्यवहार में कठिनता नहीं देखी जाती थी), चपलता पाञ्चाल देश की बालाओं के चञ्चल नयन-प्रान्तों में (जनता धीर-गम्भीर थी, कहीं कोई अकारण और निरर्थक चपलता नहीं करता था), मलिनता मालव देश की सुन्दरियों के स्तनों के अग्रभाग में (प्रजाजन का हृदय, मन और व्यवहार मलिन नहीं था), ईर्ष्या मराठा-स्त्रियों में (प्रजावासी परस्पर ईर्ष्या नहीं करते थे), कपट लाट-प्रदेश की नवयौवनाओं के कुटिल कटाक्षों में (जन-सामान्य कपटपूर्ण आचरण नहीं करता था), कुटिलता केरल प्रदेश की ललनाओं के केश-कलापों में (प्रजा कुटिल नहीं थी), कृशता कश्मीर देश की युवतियों की कमर में (प्रजा में कोई कृशकाय नहीं था, सभी हृष्ट-पुष्ट थे), मन्दता मथुरा की अङ्गनाओं के लीलापूर्वक गमन में (प्रजा में कोई मन्दमति नहीं होता).....

दण्ड आभीरी(भिरी)कवरीकुसुमेषु, रागो गुर्जरीविम्बाधरेषु, धार्ष्ट्यं सौराष्ट्रीषु, नैशंक्यं स्वाधीनपतिकासु, चिन्ता उत्कासु, लोलुपता वासकसज्जासु, पश्चात्तापः कलहान्तरितासु, आग्रहो मानवतीषु, नैराश्यं विप्रलब्धासु, सन्तापः खण्डितासु, साहसमभिसारिकासु, दौर्बल्यं प्रोषितपतिकासु, पराधीनत्वम् अनुकूलपतिषु(त्वं मनुकूलपविसु), अनेकचित्ताराधकत्वं दक्षिणनायकेषु, कपटवादः शठनायकेषु, अपमानो धृष्टनायकेषु, द्विजिह्वता सर्पेषु, द्विजाघातः सुरतेषु, स्पर्धा चन्द्रकुरङ्ग-कामिनी(कामिकामिनी)वदननयनेषु, अग्रहस्त(अग्रहए)पीडनं कान्ताकुचेषु, रसनावधो रतिकलहेषु(रसनावधारेरतिकलहेषु), पाणि(णी)पीडनं विवाहेषु.....

दण्ड आभीर (अहीर) जाति की नवयौवना नायिकाओं के जूड़े में लगे फूलों में (प्रजा को दण्ड नहीं दिया जाता), राग गुजरात देश की कामिनियों के विम्ब फल के समान लाल अधरों में (जन-सामान्य किसी के प्रति अकारण कोई राग-द्वेष नहीं रखता था), धृष्टता सौराष्ट्र देश की नायिकाओं के सुरत-क्रियाओं में (अकारण कोई मानव किसी प्रकार की धृष्टता नहीं करता था), निःशङ्कता 'स्वाधीनपतिका'-नायिकाओं के प्रिय-सम्मिलन में (अन्यायपूर्ण कार्यों में कोई निःशङ्क नहीं था), किसी भी प्रकार की चिन्ता 'उत्कण्ठा'-नायिकाओं में (प्रजा सभी प्रकार की चिन्ता से मुक्त थी), लोलुपता या लोभ 'वासकसज्जा'-नायिकाओं में (प्रजा में किसी प्रकार

का कोई लोभ नहीं था), पश्चात्ताप 'कलहान्तरिता'-नायिकाओं में (जन-सामान्य किसी बात या विषय को लेकर अकारण पश्चात्ताप नहीं करता था), आग्रह कराने की प्रवृत्ति 'मानिनी'-नायिकाओं में (प्रजा में कोई किसी के कार्य के लिए आग्रह नहीं कराता था), निराशा प्रियतमों के द्वारा छली गई 'विप्रलब्धा'-नायिकाओं में (प्रजा में किसी प्रकार की कोई निराशा नहीं थी), शोक और सन्ताप 'खण्डिता'-नायिकाओं में (जन-सामान्य शोक और सन्ताप से रहित था), साहस की प्रवृत्ति 'अभिसारिका'-नायिकाओं में (प्रजा में साहस, डकैती, लूटमार आदि का प्रचलन नहीं था), दुर्बलता जिनके प्रिय विदेशादि को चले गये हों ऐसी 'प्रोषितपतिका'-नायिकाओं में (प्रजा दुर्बल नहीं थी), पराधीनता या परतन्त्रता 'अनुकूल'-नायकों अथवा पतियों में (प्रजा में कोई परतन्त्र या पराधीन नहीं था), अनेक चित्तों का समाराधन 'दक्षिण'-नायकों में (सामान्य रूप से पति अनेक स्त्री-गामी नहीं थे जिसके कारण उन्हें केवल अपनी प्रियतमाओं के चित्त का ही मात्र समाराधन करना पड़ता था), कपट का आश्रय लेना 'शठ'-नायकों में (प्रजा में किसी प्रकार का कपटपूर्ण आचरण नहीं था), अपमान 'धृष्ट'-नायकों में (प्रजा में किसी का अपमान नहीं होता था), दो जीभों का अथवा दो जीभों वाला होना सांपों में (प्रजा में कोई द्विजिह्व नहीं था अर्थात् दो बातों को कोई नहीं बोलता था), दांतों का काटना सुरत-क्रीडाओं में (आपस में कोई किसी को लड़ाई-झगड़े में दांत नहीं काटता), प्रतियोगिता का भाव चन्द्रमा के साथ नवयौवनाओं के मुख और हरिणियों के साथ नायिकाओं की आंखों में (कहीं मैं इससे आगे बढ़ जाऊं' परक ईर्ष्या-जनित प्रतियोगिता का भाव नहीं होता), हाथों का प्रहार कामिनियों के स्तनों पर (और कहीं हाथा-पाई नहीं होती), नीवि अथवा गांठों को खोलना रति-क्रियाओं में (प्रजा में कोई किसी के सामान या थैलों की गांठ नहीं खोलता), हाथों का पकड़ना विवाह के अवसर पर कन्यादान अथवा ग्रहण के समय (अकारण कोई किसी पर आरोप लगाकर किसी का हाथ नहीं पकड़ता था).....

वर्णसङ्करश्चित्रपटादिषु, कन्याधिरोहणं सूर्यादिग्रहेषु, खलसंसर्गो धान्येषु, सूचीभेदो रत्नेषु, चौर्यं श्रीहरिबालचरित्रेषु, मद(मदन)विकारः करी(रि)न्द्रेषु, वनचारः(वनचरः) कुरङ्गेषु, पशुहिंसा यागेषु(योगेषु), श्रुतिविलङ्घनं (श्रुतिविलंखनं) ललनानयनेषु, गात्रभेदः स्वप्नेषु, वैषम्यं (वशम्यं) मदनशरेषु, हृदयभेदो(भेदे) दाडिमीषु, शृङ्खला गिरिकपाटकरि-चरणेषु, बन्धश्चित्रकवित्वेषु, परीवादो वीणासु, मूर्छागमो गानेषु, कचग्रहः स्मरसमरेषु, दण्डश्छत्रेषु(षेषु), कम्पः पताकाञ्चलेषु, कलङ्कः(कलकः)

शशाङ्केषु, वृषोत्सर्गः पितृकार्येषु, दक्षिणावामकरणं दिङ्निश्चयेषु, कोशसङ्कोचः कमलेषु, मधुपत्वं भ्रमरेषु, सुरालयत्वं सुमेरौ, करवालनाशो योधेषु, अनङ्गत्वं मदने, तुरङ्गेषु काशाघातः, मुखरत्वं नूपुरेषु परं व्यवस्थितम्।

....वर्णों का परस्पर मिल-जुल कर एक हो जाना चित्रपट आदि चित्रकारी में (प्रजा में जाति-सङ्कीर्णता नहीं थी), कन्या-अधिरोहण सूर्य-चन्द्रमा आदि के ग्रहणों में (प्रजा में बलात् किसी कन्या का उपभोग नहीं किया जाता था), खल (भूसे का) संसर्ग धान की फसलों में (प्रजा में कोई किसी क्षुद्र तथा दुष्ट प्रकृति के लोगों के साथ सम्पर्क नहीं रखता), सूई-सूवे आदि से छेद करना रत्नों में (अन्य किसी प्रकार का अङ्गादि का छेदन प्रजा में नहीं था), चोरी बालकृष्ण की चरित्र-कथाओं में (अन्यत्र प्रजा में कहीं चोरी नहीं होती), मद का विकार उत्तम कोटि के हाथियों में (प्रजावासी जन किसी बात का घमण्ड नहीं करते), वनवास या वन में चरण करना हरिणों में (प्रजा दीन-हीन होकर वनों में विचरण नहीं करती), पशुओं की हिंसा यज्ञ आदि वैदिक कर्मकाण्डीय विधानों में (मांस-भक्षण हेतु पशुओं की बलि नहीं दी जाती), श्रुति (कानों) का उल्लङ्घन (अतिक्रमण) ललनाओं कै विशाल एवं चञ्चल नयनों में (अन्यत्र वेदों तथा उनकी आज्ञाओं का उल्लङ्घन नहीं किया जाता), अङ्ग-भङ्ग होना केवल स्वप्न में (किसी अपराध के दण्ड स्वरूप किसी का अङ्ग-च्छेदन नहीं किया जाता), विषमता कामदेव के बाणों में (अन्यत्र किसी प्रकार की कोई विषमता नहीं थी), हृदय का विदीर्ण होना अनार के फलों में (प्रजा में कोई किसी का हृदय नहीं तोड़ता), शृङ्खला केवल पर्वत, किवाड़ और हाथियों के पैरों में (अपराध के दण्ड स्वरूप किसी को जंजीरों से जकड़ा नहीं जाता), बन्ध या बन्धन चित्रकाव्यों की रचनाओं में (अपराधियों के अभाववश किसी को बांधा नहीं जाता था), परीवाद (स्वरभेद, कलङ्क या निन्दा) वीणा बजाने में (अन्यत्र किसी पर कलङ्क नहीं लगाया जाता), मूर्छा-(मूर्च्छना)-प्रयोग गायन में (प्रजा अन्य किसी दुःख शोक तथा दुर्बलता आदि कारणों से मूर्च्छित नहीं होती थी), केशग्रहण सुरत-युद्धों में (प्रजा में कोई केशा-केशी युद्ध नहीं होता), दण्ड छातों (छतरियों) में (प्रजा में अपराध के अभाव से किसी को दण्ड नहीं दिया जाता), कंपकंपाहट ध्वजा में (प्रजा में कोई किसी भय आदि से कांपता नहीं था), कलङ्क चन्द्रमा में (अन्यत्र किसी पर कोई कलङ्क नहीं होता), बैलों का उत्सर्ग पितरों की क्रियाओं में (मनोरञ्जन आदि के लिए बैलों को लड़ाया नहीं जाता), दक्षिण को वाम और वाम को दक्षिण करना दिशाओं के निश्चित ज्ञान करने में (प्रजा में सत्य को असत्य और असत्य को सत्य नहीं किया जाता), कोश का सङ्कोच या अभाव कमल के

फूलों में (प्रजा में द्रव्याभाव नहीं होता), मधुपान भंवरों में (प्रजा मदिरा का पान नहीं करती), सुरालय (मदिरालय और देवालय) का होना सुमेरु पर्वत पर (प्रजा में मदिरालय नहीं होते थे), तलवारों का नाश योद्धाओं में (अन्यत्र तलवार आदि शस्त्रों का नाश नहीं होता), बिना अङ्ग का होना या निरङ्ग होना कामदेव में (प्रजा में कोई अपङ्ग नहीं था), कोड़े की मार घोड़ों पर (अपराधियों के अभाव में किसी को कोड़े मे नहीं मारा जाता था) और मुखरता पायलों की घुंघरुओं में ही थी (अन्यत्र प्रजाजन व्यर्थ का प्रलाप करने वाले नहीं होते थे) न कि प्रजा में देखा जाता या सुना जाता था।

यस्य च मनसि धर्मेण, तोषे धनदेन, रोषे कृतान्तेन (कृतान्तेनषुन), प्रतापे तपनेन (पनेनम), रूपे मदनेन, करे कल्पद्रुमेण, वदने सरस्वतीप्रसादेन, बले मारुतेन, प्रज्ञायां सुराचार्येण, कीर्तौ चन्द्रिकासमुच्चयेन स्थितम्।

और जिस नवाब के मन में धर्म, संतोष में कुबेर, क्रोध में यमराज, प्रताप में सूर्य, रूप में कामदेव, हाथों में कल्पवृक्ष, मुख में सरस्वती, बल में वायु, बुद्धि में वृहस्पति और कीर्ति में चन्द्रमा की कलाएं विराजते (ती) हैं।

अथ पुनर्गद्यम्।

जय जय राजसमाजविभूषण विदलितदूषण गुणगणमन्दिर मन्मथ-सुन्दर(सुदर) चन्दनशीतलशीलवशीकृतदुर्गमदुर्गपरिग्रह विग्रहपण्डित दुर्जनसज्जनरञ्जन राजविरोचन कमलविलोचन दुःखविमोचन परदलशोचन शोषित(शोणित)वैरियशोभरसागर परध(र)णिपतिकुञ्जरगञ्जनसिंहकिशोर कठोरकृपाणनखाग्रविदारितवैरिनराधिपमत्तमतङ्गजकुम्भसमुद्धृतकीर्ति-कदम्बक(कवन्दक)मौक्तिकहारविभूषितभूमिवधूघनपीनतरोदयभूधरचरमाचलमय-कुच(कुंच)मण्डल वीरधुरन्धर.....

और हे राज-समाज के विभूषण ! समूल नष्ट कर दिया है दोषों को जिसने ऐसे विदलित दूषण ! गुण-समूहों के मन्दिर ! कामदेव के समान सुन्दर ! चन्दन के समान शीतल शील के द्वारा दुर्जनों के दुर्गम दुर्ग-रूपी हृदय पर भी अधिकार कर लेने वाले ! स्वरूप से पण्डित ! दुर्जन और सज्जन दोनों ही प्रकार के मानवों के चित्त के रञ्जक ! राजाओं के मध्य सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के समान भासित होने वाले ! कमल के समान नयनों वाले ! दुःखों के विमोचन ! शत्रु सेना को तहस-नहस कर देने वाले ! शत्रुराजाओं के यशःसमुद्र को सोख लेने वाले ! शत्रुराज-रूपी मदमस्त हाथियों को भी फाड़ देने में सक्षम सिंह-किशोर ! कठोर तलवार रूपी नखों के अग्रभाग से; शत्रुपक्षीय राज-रूपी मदमस्त हाथियों के दो

भागों (पाटों) में फाड़े गए मस्तक से निकाली गई कीर्ति-कदम्ब रूपी मुक्तामणियों (मोतियों) द्वारा बनाए गए हार से पृथ्वी-रूपी नायिका के अत्यन्त उन्नत एवं विशाल पर्वत के अग्रभाग (शिखरों) के समान स्तन-मण्डल को विभूषित करने वाले ! हे वीरों के अग्रणी.....

चलति भवत्यरिपत्तनम्(भवत्परिषज्जनम्) उत्तमतावकघोटकखुरतट[१]-पाटितभूमितलो(तरो)त्थितधूलिसमूहमपोहितुमिव शत्रुकुरङ्गदृशः स्रवदञ्जन-सङ्कुललोचनवारि किरन्तु परन्तु न (विदन्ति) पिच्छिलिते पथि कथमिव विन्ध्यमहीधरकाननवीथि(विथि)पलायनक(र्म) भवेदिति किञ्च कुलाचल-मण्डितभूतलभूषणभुजबलनिर्जितभूमिपते ! बलिशिविविक्रमकर्ण-सुपर्वमहीरुह तुल्यमते ! परदलभञ्जन ! कलिमलगञ्जन ! गुणिजनरञ्जन ! मर्मरते ! राजधुरन्धर ! भूमिपुरन्दर ! वैरिभगन्दर ! सकलकलाधर धन्यगते ! चतुरशिरोमणि ! परमकृपालय पालय जलधिमेखलमवनी-मण्डलमारविचन्द्रसमुद्रम् ।

आक्रमण हेतु शत्रु नगरों की ओर आपके ससैन्य प्रयाण करने पर आपकी सेना के मध्य उत्तम घोड़ों के खुरों से विदीर्ण भूमि-तल से उठी हुई उस विशाल धूलराशि को धोने के लिए ही मानो शत्रुओं की हरिणनयना नायिकायें काजल से मलिन आंसुओं की धारा को बहा रहीं हैं, फैला रही हैं । किन्तु वह नहीं जानतीं कि उनके इस रोने-धोने से वह मार्ग और भी फिसलने वाला हो जाता है सो उस मार्ग पर चलकर या दौड़कर उनके पति किस प्रकार विन्ध्य-पर्वत की कन्दराओं में भागने और प्राणों को बचाने रूपी कर्म को सम्पादित कर सकेंगे । और हे महान् कुल में उत्पन्न अएतव कुलरूपी पर्वत से मण्डित वसुधा के भूषण ! अपनी भुजाओं के बल से जीती गई पृथ्वी के पति ! और सत्पुरुषों के द्वारा बलि, शिवि, विक्रम, कर्ण, सुपर्व एवं सुमेरु पर्वत के समान गिने जाने वाले ! प्रतिपक्ष की सेना के विनाशक ! कलियुग के दोषों के निवारक ! गुणिजनों, सत्पुरुषों एवं रचनाधर्मियों के रञ्जक ! नर्म हास-परिहास में रत रहने वाले ! राजाओं में धुरन्धर ! इस वसुधा के पुरन्दर (इन्द्र) ! शत्रुओं की सम्पन्नता या समृद्धि का दारण करने वले अतएव वैरिभगन्दर ! सकल कलाओं के धारक ! हे धन्य गति वाले ! चतुरों के शिरोमणि और परम कृपा के आलय ! चारों समुद्रों की मेखला से परिवेष्टित इस पृथ्वी का तब तक पालन करो जब तक इस लोक में सूर्य, चन्द्रमा और समुद्रों की सत्ता विद्यमान है ।

अपि च मदन इव नागनारीभिः(नागरीभिः), तपन इव तपस्विभिः,

१. चौधरी जी ने यहाँ पर 'खुरखक' पद अधिक होने की सूचना दी है ।

स्पृहन् (?) इव मनस्विभिः, शमन इव शत्रुभिः, पवन इव पथिकैः, स्वजन इव सुहृज्जनैः(सुहृदजजनैः), जनक इव नागरीभिः(?), सनक इव पारमार्थिकैः, पार्थ (पार्थिव) इव धनुर्धरैः, सार्थ इव शरणार्थिभिः चिन्तामणिरिव याचकैः चूडामणिरिव पार्थिवैः, सुधाकर इव लोकचकोरैः, धाराधर इव सूरिमयूरैः, सागर इव धीरैः, पुरन्दर इव वीरैरवलोकितः ।

और यह खानखाना चतुर नागर-स्त्रियों के द्वारा कामदेव के समान, उग्र तपस्वियों के द्वारा सूर्य के समान, परम मनस्वियों के द्वारा स्पृहा के समान, शत्रुओं के द्वारा अग्नि के समान, श्रान्त पथिक के द्वारा वायु के समान, अपेक्षा रखने वाले स्वजन के द्वारा मित्र के समान, नगर-निवासियों के द्वारा पिता के समान, परमार्थ में लीन रहने वाले योगियों के द्वारा सनककुमार के समान, धनुष धारण करने वालों द्वारा अर्जुन के समान, शरणार्थियों के द्वारा धनवान् पुरुष के समान, याचकों के द्वारा चिन्तामणि रत्न के समान, राजाओं के द्वारा चक्रवर्ती सम्राट् के समान, सामान्य जनता-रूपी चकोर के द्वारा चन्द्रमा के समान, विद्वानों-रचनाधर्मियों और साहित्य-प्रेमी रूपी मयूरों के द्वारा वर्षा-योग्य मेघ के समान, धीरपुरुषों के द्वारा सागर के समान और वीरों के द्वारा पुरन्दर देवराज इन्द्र के समान देखा जाता है ।

तथा नातिमांसल(सकल)द्वात्रिंशदङ्गुलमित(मिन)मुखमण्डलं, सप्ताङ्गुलतनु(त)रनिशिताग्रकर्णयुगलं, प्रचुरायतमृदुतरकेशं, चामरित-षडधिकपञ्चाशङ्गुलमितकुञ्चितबहुतरपश्चिमपार्श्वभागं, पृथुतरपृष्ठमण्डितं (पृष्ठिमण्डित), चामरचारुचिकुरसुन्दरत्रिंशदङ्गुललाङ्गुलं (लाङ्गल), दृढ़वर्तुलसप्तसप्ताङ्गं, खुरमनोहरं, करादिककुदवधिचतुर्हस्ततोत्सेधं, लाङ्गूल-मूलाद्यापाङ्गावधिपञ्चहस्त(हस्तं) परिमितदैर्घ्य(दर्घ्य)मनर्घ्यस्वभावं, चण्डीश-कोदण्डमिवाखण्डगुणमण्डितं, श्रीराममार्गणमिव दूषणासहनशीलं, रत्नाकरमिव देवमणिभूषितं, गङ्गाप्रवाहमिव शोभमानशुभावर्तं(शुभावर्त), महापुरुषमिव सकलगतिवेदिनं, राजानमिव चामरविराजितं जवविजित-सुपर्णपवनमनसम्.....

और जो नवाब खानखाना अतिमांस के दोष से रहित ३२ अंगुल के नाप बराबर मुखमण्डल को धारण करता है, सात अङ्गुल परिमाण और अनिशित..... कर्णयुगल को धारण करता है, घने लम्बे एवं कोमल केशपाश को धारण करता है, ...मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के बाण के समान खर-दूषण (खानखाना के पक्ष में खलों एवं दोषों) को सहने में असमर्थ, रत्नाकर समुद्र के समान देवताओं एवं मणियों या कौस्तुभमणि (पक्ष में साधु पुरुषों, गुणीजनों, विद्वानों एवं

रचनाधर्मियों के संरक्षण-रूपी रत्न तथा अनेकानेक विद्या, गुण, विद्वत्सम्मान आदि रत्नों) से विभूषित है, गङ्गा के चक्करदार प्रवाह के समान अपने व्यक्तित्व से शोभा को प्राप्त होने वाला है, समस्त प्रकार की गतियों (विद्याओं) का ज्ञान रखने वाले महापुरुष के समान है, चंवर विराजित राजाओं के समान, अपनी गति के वेग से सुपर्ण, गरुढ़ पवन एवं मन पर भी विजय प्राप्त करने वाला है.....

टिप्पणी -

उपर्युक्त एवं इसी के अंश-भूत इसके बाद आए गद्य-खण्डों में खानखाना का वर्णन 'द्वितीय-विभक्ति' के अन्तर्गत किया गया है किन्तु द्वितीयान्त इन वाक्यों या पदों के किसी क्रिया का कोई आधान नहीं है। हम पीछे भी अपने इस अनुमान को प्रकट कर आए हैं कि इसके बाद या इसके पीछे के कुछ गद्यांश संभवतः चौधरी जी वाली प्रति में छोड़ दिए गए हैं और यह छूट उस पाण्डुलिपि के प्रतिलिपि-कार से हुई है। और इस प्रकार 'नवाबखानखानाचरितम्' की यह प्रति सर्वथा अपूर्ण ही रह जाती है। यहाँ हम द्वितीयान्त इन वाक्यों की क्रिया के अभाव में इन्हें प्रथमान्त कल्पित कर अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं।

उत्तमदेशीयम् अश्वराजम् आरूढ़स्तादृगनेकतुरगारूढ़महावीरपरिवार-विराजमानः सप्तस्थल(गण्डस्थल)गलदविरलमदजलमिलदलिकुलकोलाहलः किर्मी(कीर्मा)रितापरिमितमत्तमातङ्गसङ्गबृंहि(बृहित)तरयगर्वितहयहेषितरथ-चयचक्रचीत्कारगभीरभेरीभाङ्कारवाराङ्गनाचरणमणिनूपुरझङ्कारचतुरवैतालिक-जयजयकारप्रमुखकलकलबधिरीकृतदिङ्मण्डलः...

सिन्धु-देशीय उत्तम घोड़े पर विराजामन होकर और उसी प्रकार के घोड़ों पर सवार महाबली योद्धाओं के समूह में सम्मिलित होकर, (आमोद-प्रमोद व सैन्य यात्राओं में) — सप्तस्थल (मस्तक) से निरन्तर बहने वाले मदजल में मिलते हुए भंवरों की पंक्ति के कोलाहल; अनेकानेक चितकबरे मदमस्त हाथियों के झुण्ड की चिंघाड़ की तीव्रता; गर्व के कारण घोड़ों के हिनहिनाहट; रथों के पहियों के चीत्कार; सेना के भेरी-मृदङ्ग आदि वाद्ययन्त्रों के गम्भीर भाङ्कार; वेश्याओं के चरणों में पड़े नूपुरों की झङ्कार; स्तुति-गायन में चतुर वैतालिकों के जय-जयकार आदि प्रमुख कल-कल शब्दों से दिशाओं के समूह को भी बधिर कर देने वाला है.....

सित(शित)हरितपीतलोहितविचित्रसामन्तनृपध्वजवसनविलसत्काक-(?)मनोहरच्छत्रचामरमेघडम्बरसुन्दरभूपुरन्दरशाहिजागिरनुदीनमहमुदरत्नाकर सुधाकर इतस्ततो वसन्तोपशोभितघनतरमकरन्दविन्दुवन्दीकृतमिलिन्दवृन्द-

मेदुरमाकन्दमुखतरुवरलतानिकरपरिरम्भसंभ्रम(भ्रमण)लालसमलयसमीरसेवित-पुरोपवनानि, कमलकुलसमाकुलजलाशयपटलानि बहुकुल्यापालिता(नि) शालियवगोधूमादिहरितक्षेत्राणि च वीक्षमाणः सकौतुकं सकल-दिग्विजयकारी जयति श्रीनवाबखानखाना जगती(ति)पतिः ।

सामन्तों तथा बड़े-बड़े राजाओं के सफेद-हरे-पीले-लाल एवं अनेकानेक विचित्र वर्ण की ध्वजाओं के वस्त्रों की शोभा से सुशोभित होने के कारण पहाड़ी कौवे के समान छत्र-चामर आदि की सुन्दरता से मनोहर प्रतीत होता है, मेघों के समवाय के समान सुन्दर; भूलोक के इन्द्र शाह नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी के लिए रत्नाकर एवं अमृत के समान प्रिय करने वाला है ऐसा यह नवाब; —इधर उधर वसन्त की शोभा से उपशोभित अतएव अत्यन्त निबिड पराग-विन्दुओं के लोभ से बन्दी बनाये गये भ्रमर-समूह से भरे, फूलों के रस से प्राप्त मधु के स्रोत समेटे, विशाल वृक्ष एवं लता-समूहों के द्वारा परस्पर आलिङ्गित एवं आलिङ्गन को लालायित, मलयाचल पर्वत से उठी सुगन्धित हवाओं से सेवित और सुगन्धित नगरों एवं वनों को (आश्चर्य से देखने वाला), कमल-पुष्पों के विशाल समूहों से आच्छादित जलाशयों को और छोटी-छोटी नहरों के पानी से पाले या उगाये गये चावल (धान), जौ, गेंहू आदि के असंख्य हरे-भरे खेतों को आश्चर्य से देखने वाला यह पृथ्वी-पति नवाब खानखाना शोभित होता है; जिसने समस्त दिशाओं को जीत लिया है ।

टिप्पणी :

उपर्युक्त गद्य में 'आमोद-प्रमोद हेतु निकले खानखाना द्वारा अपने मित्र-राजाओं के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने' तथा 'स्वयं खानखाना के गुणों का' वर्णन एक साथ ही समकाल तथा समवाक्यों में किया गया है अतः अर्थानुसंधान में कुछ बाधा आती है ।

अथ पद्यम् :

कलिः कृतपदायते[१] सुरपदायते मेदिनी
सहस्रकिरणायते भुजयुगप्रतापोदयः ।
यशो हिमकरायते गुणगणोऽपि तारायते
सहस्रनयनायते नृपनवाववीराग्रणीः ।।

इस नवाब खानखाना का ही यह महत्त्व है कि इसके शासन करने पर कलियुग भी सतयुग के समान आचरण करता है, पृथ्वी भी स्वर्ग के समान हो जाती

१. मूल हस्तलेख में 'युगायते' का पाठ है और यह अर्थ सङ्गत भी है।

है, इसके बाजुओं के प्रताप का उदय; सूर्य के समान, यश हिमालय पर्वत के समान, गुणों का संमूह तारों के समान आचरण करता है और स्वयं वीरों का अग्रणी यह नवाब इन्द्र के समान आचरण करता है ।

टिप्पणी :

इस पद्य में कतिपय पाठान्तर ध्यातव्य हैं जिन्हें हम ऊपर प्रस्तुत नहीं कर सके - **कली, कृतयुगायते, (मेदि)-नि, तरायते ।**

कीर्ते(कीर्तिः) श्रीखानखानक्षितिपकुलमणेः क्व प्रयास्यम्बुराशिं
किं कार्यं श्रीनिदेशः कथय कथमये तात सिन्धो (तानसिह्यो) जडात्मन् ।
गाम्भीर्यादीनगण्यानतिविमलगुणान् मत्पते(सप्तते)र्माऽनुकार्षी-
स्त्वत्क्रोधान्मत्सपत्नीसदनविबुधसान्मामसौ यत्करोति ।।

अरी ओ राजाओं के कुलमणि श्रीनवाबखानखाना की कीर्ति ! यह तुम कहाँ चली जा रही हो ? समुद्र के पास ! कार्य क्या है ? लक्ष्मी का संदेश कहने ! अरी जरा हमें भी तो कह हम भी तो सुनें ? यही कहने कि हे जडात्मन् मेरे पिता समुद्र ! मेरे पति के गम्भीरता आदि अगणित विमल गुणों का अनुकरण मत करो जैसा कि तुम्हारे क्रोध के कारण यह मेरा पति खानखाना मुझे; मेरी ही सौत (सपत्नी) सरस्वती के घर में विबुधसात् (सरस्वती की दासी के समान) किये जा रहा है (और यदि तुमने उसके गुणों के अनुकरण के आधार पर ऐसा ही किया तो तुम जो रत्नाकर कहलाते हो और तुम्हारे घर में ही जो मैं भी उत्पन्न हुई हूं सो निश्चय ही इस अनुकरण के बाद तुम रत्नाकर नहीं विद्याकर कहलाने लगोगे और मैं तो सरस्वती बना ही दी गई हूं, मेरा क्या है !)।

टिप्पणी :

खानखाना के अतिशय विद्याप्रेम, विद्वानों को उनके उदार संरक्षण और स्वयं उनके विद्याभ्यास को प्रस्तुत करने हेतु अन्योक्ति के द्वारा तथ्यों को इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है ।

श्रीमत्खाननवाबसैन्यजलदे(धे) चञ्चत्कृपाणीतडित्-
दाम्नि च न्न (दम्नि छिन्न) रिपुप्रतापतपने नाराच(चि)धारामुचि ।
पूर्णा शोणितवाहिनी सुरवधू(सुखधु)कन्दर्पदावानलः
शान्तोऽभूद् विरराम वैरिवनितासीमन्तमार्गोदयः ।।

अत्यन्त तेजस्वी अतएव चमकती हुई तलवार-रूपी बिजली से युक्त मेघों

के समान तलवारों की धारा की मुसलाधार वर्षा करने वाले नवाब खानखाना के सैन्य-रूपी मेघों के द्वारा तलवारों की मुसलाधार वर्षा किये जाने पर शत्रुओं के प्रताप-रूपी सूर्य छिप गए, रक्त की नदियां पूर्ण हो गईं, देवताओं की स्त्रियों का कामजनित दावानल शान्त हो गया और शत्रुओं की पत्नियों की मांग (सिंदूर लगाने का स्थान) का सीधा मार्ग अवरुद्ध हो गया (मांग उजड़ गई)।

टिप्पणी :

खानखाना के अद्वितीय सेनापतित्व के निदर्शन के लिए इस पद्य को प्रस्तुत किया गया है। तीन सप्तम्यन्त पदों में दूसरे दो **'श्रीमत्खाननवाबसैन्यजलदे'** का विशेषण हैं। **'सीमन्तमार्गोदयः विरराम'** का सीधा आशय यह है कि शत्रुपत्नियां विधवा हो गईं। सेना पर जलद का, कृपाणी पर विद्युद्दाम का, प्रताप के ऊपर तपन का और कन्दर्प के ऊपर दावानल का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

श्रीखानखान - कलिकर्ण - नरेश्वरेण
विद्वज्जनादिह निवारितमादरेण।
दारिद्र्यमाकलयति स्म नितान्तभीतं
प्रत्यर्थि-वीर-धरणीपति-मण्डलानि।।

राजाधिराज श्रीखानखाना नवाब जो कि कलियुग के साक्षात् कर्ण हैं; के द्वारा अत्यन्त आदर पूर्वक विद्वानों, गुणियों, साहित्यकारों एवं रचनाधर्मियों से दूर कर दिये गये दारिद्र्य ने अत्यधिक भयभीत होकर; कि यह हमारा समूल नाश कर देगा, -वीर शत्रु-राजाओं के राज्य का आश्रय ग्रहण कर लिया है।

श्रीखानखान - नृप - केसरि - पुङ्गवेन
दारिद्र्य(दीरिद्ध्य)दन्तिनि हते गुणिना जनानाम्।
तत्कुम्भ-मण्डल-विदारण-तूर्ण(र्य) [1]निर्यत्-
सत्कीर्तिमौक्तिकचयेन दिशो विभान्ति(भाति) ।।

नवाब श्रीखानखाना रूपी राजसिंह के द्वारा गुणीजनों, विद्वानों तथा विद्या-जीवियों के दारिद्र्य-रूपी मदमस्त हाथी के मार दिए जाने पर उन हाथियों के मस्तक के विदारण से शीघ्रतापूर्वक निकलने वाले सत्कीर्ति-रूपी मुक्तामणियों की कान्ति से दशों दिशाएं चमक सी रही हैं।

टिप्पणी :

खानखाना की दानशीलता और विद्वानों के उदार संरक्षण को बताने हेतु

१. मूल-पाठ 'भूः' है 'भूर्य(र्ण) निर्यत्' के रूप में।

विलक्षण उत्प्रेक्षा के माध्यम से इस पद्य को प्रस्तुत किया गया है। नृप के ऊपर केसरी, दारिद्र्य के ऊपर हाथी, सत्कीर्ति के ऊपर मुक्तामणि का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

किं चित्रं(चित्र) वैरिललनानयनाञ्जनहारिणः।
श्रीखानखानखड्गस्य हरणं रिपुसम्पदा[1]।।

जिन वीरवर नवाब खानखाना की तलवार ने, पति की मृत्यु के कारण तथा अनवरत आंसुओं की धारा बहाने के कारण शत्रुवीरों की पत्नियों की आंखों के काजल-तक का हरण कर लिया उसी तलवार ने यदि उन शत्रुवीरों की धन-सम्पत्ति का भी हरण कर लिया तो इसमें किस बात का आश्चर्य है।

भ्रूकोदण्डचलत्कटाक्षविशिख(खी)श्रेणीभिरेणीदृशः
सहाय्यस्य चिकीर्षया किमु निजप्राणेश्वराणां रणे।
क्षोणीकामनवाववीरतिलकं दृष्ट्वा गवाक्षान्तरे(क्षान्ते)
शृङ्गारेण भयानकेन युगपद्विन्दन्ति(विदन्ति) भावान्तरम्।।

अपने भ्रूरूपी धनुष से चलने वाले कटाक्ष-रूपी बाणों की वर्षा के द्वारा समरभूमि में अपने प्राणप्रिय प्रियतमों की सहायता करने की इच्छा से शत्रुवीरों की हरिणनयना स्त्रियां उस समरभूमि की ओर आकृष्ट तो होती हैं, किन्तु अपने निवास-भवन की खिड़कियों से वीराग्रणी नवाब खानखाना को देखकर अपनी ओर से शृङ्गार एवं खानखाना की ओर से भयानक रसों के आस्वाद के कारण, किञ्च दोनों की ही तारतम्यता के कारण मानों विलक्षण भाव को प्राप्त होती हैं।

टिप्पणी :

खानखाना की अद्भुत वीरता प्रदर्शित करने हेतु इस पद्य की अवतारणा की गई है। समर-भूमि में अपने पतियों को असहाय देख उनकी पत्नियां अपने पति की सहायता करने की इच्छा से अपने भ्रू-रूपी धनुष से कटाक्ष-रूपी बाणों की वर्षा करने को प्रस्तुत होना चाहती हैं। यहाँ भ्रू-कटाक्षादि का प्रयोग शृङ्गार का हेतु है। किन्तु वीर खानखाना को देखते ही उनमें शृङ्गार का भाव उत्पन्न हो जाता है जबकि खानखाना उनके प्रियतमों के विनाश में लगा हुआ होता है अतः पत्नियां शृङ्गार और भयानक दोनों ही रसों से मिश्रित किसी भावान्तर को प्राप्त हो जाती हैं।

नाना - देशीय - नानाविध - गज - तुरगाद्योपहारानपारान्
नित्यं पश्यन्नृपाणां मुकुटमणिरुचि(रूची)स्फारिताङ्घ्रिप्रभाणाम्।

१. सम्पदा के स्थान पर यहाँ 'सम्पदाम्' की आवश्यकता है।

उर्वीमाक्रम्य घर्म(धर्म)द्युतिरिव सकलामास्थितश्चक्रवर्ती
वीरश्रीखानखाना जगति विजयतां यावदर्केन्दुविम्बम् ।।

राजाओं के द्वारा अहमहमिका पूर्वक प्रणाम करते समय उनके मुकुटों में संलग्न मणियों की कान्ति के कारण कान्तिमान् पैरों वाला, नाना देश और राज्य के राजाओं के द्वारा लाए गए अनेकानेक हाथी, घोड़े आदि उपहार को नित्य देखने वाला समस्त पृथ्वी पर धर्म की प्रभा के समान चमकने वाला यह वीर; चक्रवर्ती सम्राट् नवाब खानखाना इस लोक में तब तक विजय प्राप्त करता रहे जब तक सूर्य और चन्द्रमा के विम्ब प्रतिभासित हो रहे हैं ।

।। इतिश्रीमत्प्रतापशाहोद्योजित्रुद्रकवीन्द्रविरचिते प्रबन्धे द्वितीय उल्लासः ।।

तृतीय उल्लासः

[1]विद्वन्मण्डलकल्पपादपवनं विद्योति वाग्देवता-
सङ्केतायतनं नितान्तकमलालीलाविलासायनम् ।
सर्वो पश्यति[2] चक्रभाग्यसदनं भूमण्डलीमण्डनं
कीर्तेः केलिनिकेतनं विजयते श्रीखानखाना नृपः ।।

इस खानखाना को यह लोक; विद्वानों की मण्डली के लिए कल्पवृक्ष के अत्यन्त शोभा सम्पन्न वन, सरस्वती के निवासस्थान, प्रचुर लक्ष्मी के लीलापूर्ण विलास-गृह, सौभाग्यचक्र के घर, पृथ्वी के आभूषण और कीर्ति के क्रीडागृह के समान देखता है । लोक के द्वारा तथा-सम्भावित यह खानखाना सर्वोत्कर्षशाली है ।

खानश्रीप्रबलप्रतापशिखिनो निःशेष(निषेय)मेधायते
शत्रूणां पटली तदीयमयशो जानामि धूमायते ।
मार्तण्डांशु(डाशु)लसत्कृपाणलतिका ज्वालाकलापायते
दारिद्र्यप्रसरः समग्रविदुषां सद्यः पतङ्गायते ।।

खानखाना की प्रबल प्रताप-रूपी अग्नि इंधन के समान आचरण कर रही है जिनके लपटों में पड़कर शत्रुवीरों का समूह और उनका अपयश धुएं के समान उड़े जा रहे हैं । सूर्य की प्रचण्ड किरणों के समान तेज धारा से सुशोभित तलवार-रूपी लता निश्चय ही दहकती हुई ज्वाला समूह के समान आचरण कर रही है जिसमें पड़; सुधीजनों, विद्वानों और विद्याजीवियों का दारिद्र्य; पतङ्ग के समान भस्मसात् हो रहे हैं ।

१. नागपुर वाली प्रति में भी यह पद्य तीसरे उल्लास का पहला पद्य ही है ।
२. उपर्युक्त प्रति में तीसरे चरण का प्रथमार्द्ध 'सर्वोर्वीपतिचक्रभाग्यसदनं' है ।

क्षोणीमण्डन(मण्डल)खानखाननृपतेः पाणिः पटीरद्रुम-
स्तस्मिन्निर्गतकोश(खड्ग)मिषतो निर्मुक्तकुम्भीनसः ।
तत्पाणिः कथमन्यथार्थिजनतासन्तापहारी(रि) तथा
खड्गोऽपि प्रतिभूमिपालनिकरप्राणानिलाशी भवेत् ।।

पृथ्वीपति नवाब खानखान के हाथ चन्दन के वृक्ष हैं और उन हाथों में; कोश (म्यान) से बाहर निकल आए करवाल के व्याज से मानों विषैला सांप ही बाहर आ गया है । यही कारण है कि खानखाना का चन्दनवृक्ष-रूपी हाथ याचना करने वाली जनता के सन्ताप का हरण करने रूपी अपने धर्म से पीछे नहीं हटता तो उन्हीं चन्दन-वृक्ष रूपी हाथों में तलवार के व्याज से निकल आया यह विषैला सांप भी शत्रुपक्षीय वीरराज-समूह के प्राण-रूपी वायु को पीने से पीछे कैसे हटे !

टिप्पणी :

खानखाना की अदम्य वीरता और उनकी लोकोत्तर दानशीलता को एकसाथ बताने हेतु उनके उन्मुक्त हाथ की उत्प्रेक्षा चंदन से और भीषण तलवार की, विषैले सांप से की गई है । 'कुंभीनस' माने विषैले सांप का प्रयोग 'उत्तररामचरितम्' (२/२९) में **'उद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुंभीनसाः''** में और **'पाटीर'** माने चंदन का प्रयोग 'भामिनीविलास' (१/७४) **'वहति विषधरान् पाटीरजन्मा'** में देखिये ।

यो युद्धे जात(जत)मानः सहचररमितो नित्यमीनध्वजश्री-
र्माकन्दाशी मतश्रीरखिलगुणिजनैर्मन्यते नम्यते च ।
ग्रामा यं न त्यजन्ति श्रितगजगमनं यस्य देवो(दवो) न वामः
सोऽयं श्रीखानखान त्वमिव तव रिपुस्तत्र मोहो विशेषः ।।

युद्ध के क्षणों में जो अत्यधिक मान-सम्मान को प्राप्त करता है, अन्य मित्रों के साथ रमण करता है, नित्य ही कामदेव की शोभा (सर'-मछली के प्रतीक से सुशोभित ध्वज) से सुशोभित रहता है, माकन्द (मकरन्द) का उपभोग करता है और समस्त गुणी-जनों के द्वारा सम्मानित और प्रणाम किया जाता है, अतिशय प्रेम के कारण; हाथी के समान चाल चलने वाले जिसको विद्वत्समाज कभी नहीं छोड़ता और जिसके देवता (भाग्य) भी विपरीत नहीं हैं, वह यही श्रीखानखाना नवाब है जिसके समान इसके शत्रु भी हैं और इन पर इसका विशेष मोह रहता है ।

यदस्त्रधाराधरदर्शनेन प्रत्यर्थिपृथ्वीपतिराजहंसाः ।
दिशः श्रयन्ते युधि कांदिशीकाः श्रीखानखानानृपतिस्स जीयात् ।।

जिसके अस्त्र-शस्त्र-रूपी धाराधर (मेघ) के दर्शन से 'किस दिशा की ओर भागूं या किस दिशा का आश्रय ग्रहण करूं' - इस प्रकार के कातर वचन बोलने वाले अतएव भयभीत शत्रुपक्ष के राज-रूपी राजहंस, युद्ध के समय दिशाओं का आश्रय ले लेते हैं ऐसा यह राजराजेश्वर नवाब खानखाना दीर्घ आयु को प्राप्त होवे।

टिप्पणी :

'कांदिशीकाः' का अर्थ है आत्मसुरक्षा हेतु किसी निश्चित दिशा की ओर भागने या आश्रय लेने में किंकर्तव्यविमूढ़। 'कांदिशीकाः' का इसी अर्थ में प्रयोग देखिए पंचतंत्र-१/२ और भामिनीविलास-२/१७८.

श्रीखानखानस्य भयान्न मन्ये किञ्चिद्वरं वस्तु वसुन्धरायाम्।
यदेकमाश्रित्य विमुक्तसङ्गाः सर्वेऽरयो दिक्तटमाश्रयन्ते।।

नवाब खानखाना के भय के कारण संसार की कोई भी वस्तु अच्छी या सुख देने वाली नहीं हो सकती कारण कि एक मात्र राज्य-रूपी वस्तु को प्राप्त करने के कारण इसके सभी शत्रु अपने घर, परिवार, मित्र आदि स्वजनों से वियुक्त होकर दिशाओं के कोनों में जाकर रहा करते हैं।

जय जय नृपचक्रचूडामणे! सदाचारचातुर्यगम्भीरवारांनिधे! विनिर्जित्य विश्वम्भरामण्डलं श्रीमता हेमसम्भारदानोत्सवे कल्पिते मेरुशैलव्ययाशङ्क्या यद् यदाश्चर्चचर्याचमत्कार(म)भूत्[१] तदाकर्णयाकबर-श्रीसूत्रामपुत्राग्न्यमुद्दीशा(हज)हाँगिरद्वितीयप्रियत्राणा(?) गीर्वाणनाथो (न्मथो) निवासाय चिन्ताविताने वितेने, तिरोधानहानादविश्रान्तमार्तण्डविम्ब-प्र(स)काशादहो यामिनीकाललेपभ्रमादङ्गनामण्डली कान्तविश्लेष-वैयाकुलीमुज्जिहीते तथा चन्द्रविम्बं भव(भदे)द्वैरिवक्त्रोपमेयं तथा चिन्तया वीतशोभं पुरैवा(पुरेवो)भवत्...

राजाओं के चूडामणि हे राजाधिराज ! सदाचरण की चतुरता में गम्भीर समुद्र के समान; हे नवाब खानखाना ! समस्त विश्वम्भरा पृथ्वी के मण्डल को जीतकर आपके द्वारा जो सुवर्ण-दान रूपी उत्सव मनाया गया उस समय सुमेरु पर्वत को भी दान में दे देने एवं उसके भी व्यय होने की आशङ्का से जो आश्चर्य की चर्या और चमत्कार घटित हुए उसको सुनें ! सुलतान जहाँगीर है द्वितीय प्राण जिसका ऐसे सम्राट् अकबर एवं अन्यान्य राजा-महाराजाओं के साथ देवी-देवता भी अपने निवास की चिन्ता के वितान में फंस गये ! सूर्य के अस्त न होने और

१. चमत्कार पद नित्य नपुसंक शब्द है किन्तु कविप्रयोग के आग्रह के कारण इसे शुद्ध मानना चाहिए। अन्यथा हमने इसे नुपंसकान्त ही प्रयुक्त किया है.

अविश्रान्त सूर्य के प्रकाश से रात्रि के बीत जाने सम्बन्धी भ्रम के कारण अङ्गनाओं के समूह ने अपने प्राणप्रिय प्रियतमों से वियोग की व्याकुलता को छोड़ दी ! आपके शत्रुओं के मलिन मुख के समान उपमेय चन्द्रमा; 'अब कभी भी मेरे ऐश्वर्य का उदय नहीं होगा और मैं उदित नहीं होऊंगा' इस प्रकार की चिन्ता के कारण अपनी शोभा को पहले ही खो बैठा..

....[1]करवश्रेणि(श्रेणी)रन्तर्भ्रम(द्)भृङ्गसन्दर्भदम्भेन किं दुःखशल्यं बरीभर्ति, चर्कर्ति चिन्तां चकोरावली, पञ्चबाणोऽपि चापं न सज्जी(ज्जि) चरीकर्ति लज्जाकुलः प्रेतभूतावलीडाकिनीशाकिनीचक्रवेतालमाला-पिशाचादिनक्तञ्चरश्रेणयः क्वापि (या)ताः, तथा वैरिभूपालवद्भूरि-घोरान्धकारोऽपि विन्ध्याद्रिगर्तेषु संलीयन्ते (ते), सूरयः कालनिर्णायकग्रन्थ-सन्दर्भमेके मुधा मन्वते, तन्वते केचन च (र) स्थानिवद्धावतो यामिनीका-(र्यमा)र्याः[2], तथा कोकवृन्दं घनानन्दमाविन्दन्ते(दन्ते), पद्मिनी(पदिवी) बाढ़मामोदसन्दो(हमुद्गा)हते शात्रवक्षोणिभृत्कीर्तिवत्तार(तार)कापि नोज्जृम्भते, विश्वसन्तापघाताय धातापि(दि) भास्वद्भवत्कीर्तये चन्द्रिकाचारु-साम्राज्यपट्टिकाभेषकं (पट्टाभिषेकं) नु[3] मीमांसते, देवगन्धर्व-सिद्धाप्सरोयक्षरक्षो मनुष्योरगेन्द्रादिजेगीयमानावदान प्रभूतप्रतापप्रभावप्रतीत प्रभो खानखान क्षमापाल साम्राज्यमाकलयाकल्पान्तम् (माकालयाकपातं) ।

---

१. 'करव' से क्या अभिप्रेत है यह पता नहीं चल पाता । डा. चौधरी ने इसका कोई पाठान्तर या स्वसम्मत समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। वैसे यदि **'करव'** को **'कैरवम्'** का समस्त पद प्रयोग कैरव के रूप में मान लिया जाये तो इसका समाधान हो सकता है। **'के जले रौतीति केरवो हंसस्तस्य प्रियं केरवं'** या कैरवं जिसका अर्थ श्वेत कुमुद का फूल होता है और यह चन्द्रोदय पर ही खिलता है - **'चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालं''** (भर्तृहरि २/७३) अतः चन्द्रमा का एक विशेषण **कुमुदबांधवः** है और चन्द्रमा की चांदनी का एक नाम कैरवी भी । प्रस्तुत पाठ में चन्द्रोदय के न होने का ही प्रसङ्ग है सो कैरव पाठ ही उचित जान पड़ता है।

२. शुद्ध पाठ के अभाव में यह पूरा वाक्य ही अस्पष्ट है। कुछ भी अर्थ लगाना मुश्किल होता है तथापि 'आर्याः' पद को कर्ता मानकर कुछ अर्थ लगाने का प्रयास किया गया है किन्तु 'आर्याः' पद के भी कई अर्थ होने के कारण सही अर्थ आ पाया या नहीं यह निर्धारण करना विद्वानों का कार्य है।

३. मूल पाठ में 'नु' को प्रस्तुत किया गया है जो कि असंबद्ध है। इससे किस अर्थ की प्रतीति होगी; डा. चौधरी कोई सूचना नहीं देते। 'नु' के स्थान पर 'न' जिसका अर्थ 'नहीं' होगा ही यहाँ अभिप्रेत है और इसी अर्थ की अपेक्षा भी इस पंक्ति को है।

.....और यह चन्द्रमा चूंकि अब उदित नहीं होगा अतः अपने प्रिय श्वेत कुमुद के फूलों की श्रेणी के अन्दर विचरण करने वाले भंवरों के व्याज (भ्रमर-रूपी सुई) से पाखण्ड पूर्वक दुःखरूपी घाव को बार-बार भर रहा है (घाव को सी रहा है)। चकोर-पक्षियों का समूह बार-बार चिन्ता में डूबे जा रहा है। लज्जा से व्याकुल कामदेव भी अपने सहायक मित्र चन्द्रमा की इस दशा के कारण अपने बाण को सुसज्जित नहीं कर रहा है। भूत-प्रेतों का समूह व डाकिनी-शाकिनी-वेताल-पिशाच आदि रात्रि को विचरण करने वाली भयङ्कर योनियां अन्धकार के अभाव में जाने कहाँ चली गई हैं। ऐसा लगता है मानो शत्रुपक्ष के राजाओं के समान असहाय घनघोर अन्धकार ने भी विन्ध्य-पर्वत की कन्दराओं में जाकर शरण ले ली है। ज्योतिर्विज्ञान के पण्डित और विद्वान्; दिनों के इतने लम्बे होने के कारणों को काल-निर्णायक ग्रन्थों में मोहवश ढूंढ़ रहे हैं। आर्य-जन स्थानिवद्भाव से रात्रि-कालीन कार्यों को विस्तार दे रहे हैं। चक्रवाक स्थायी संयोग-सुख की कल्पना-मात्र से प्रगाढ़ आनन्द को प्राप्त कर प्रसन्न हो रहे हैं। कमलिनियां आनन्द-सन्दोह को प्राप्त हो रहीं हैं। शत्रु-राजाओं की मलिन कीर्ति की भांति मलिन तारे भी किसी प्रकार का हलचल नहीं कर रहे। विश्व-सन्ताप के नाश हेतु और उससे मिलने वाली अक्षय एवं कान्तिमयी कीर्ति से मुख मोड़; ब्रह्मा भी चन्द्रिका के स्निग्ध कोमल एवं शीतल साम्राज्य पर चन्द्रमा के पट्ट-अभिषेक की अवहेलना कर रहे हैं। इस प्रकार हे खानखाना ! देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, अप्सरा, राक्षस, मनुष्य, सर्प तथा इन्द्रादि देवों के द्वारा जिसके अवदानों के गीत बारबार गाये जाते हैं; अपने विलक्षण प्रताप के प्रभाव से प्रतीत होने वाले हे भगवती विश्वम्भरा के संपोषक प्रभो खानखानः ! आकल्पान्त साम्राज्यों को प्राप्त करो, उन पर शासन करो।

जय जय चक्रवर्ति(ती)चक्रहीर घोरसङ्गरैकवीर धीरहीर दान(वीर) वैरिकीर्तिधूलिनीर ! वाजिभग्नसिन्धुतीर यानरंहसासमीर कीरसारिकादिं-गीत ! नीतिपालनप्रतीत ! सर्वमेदिनीधुरीण ! वि(श्वर)क्षणप्रवीण ! वङ्ग-राढ़-गौड-मेदपाट-खञ्जरीट-कान्यकुब्ज-कीर-सिन्धु-सूरसेन-सत्रपार-मल्ल-वाल-(वालवाम)-चोल-मालवादिनैकदेशदानशूर ! दिव्यलोक-मध्यलोक-नागलोक-गीयमानकीर्तिपूर ! पुण्डरीककर्णपूर ! राजमानदि(क्)-कुरङ्गलोचनाविनोदमोदमानमानस ! क्षीतितनूपुर[१] (?) दीनसाहि-

१. 'क्षीतिनूपुर' का आशय क्या है यह स्पष्ट नहीं है। चौधरी जी ने प्रश्नचिह्न लगा तो दिया किन्तु कोई समाधानपरक पाठ नहीं प्रस्तुत किया है। मुझे यहाँ 'क्षितिनूपुर' पाठ अधिक सङ्गत प्रतीत होता है। क्षिति अर्थात् पृथ्वी और पूर्ण अर्थ पृथ्वी के पैरों में पड़े नूपुर के समान।

राज्यरत्न ! सत्फलापधान[१] भासमानयत्न ! भो नवाव खानखान ! राजहीर ! धीर ! जीव !! जीव !!! मेदिनीन्द्र यावदिन्द्रमन्दराद्रितारका-समुद्रचन्द्रभास्करम् ।

जय जय चक्रवर्ती सम्राटों के शिरोमणि, भयंकर युद्धों के एकमात्र वीर, धीरपुरुषों के पुरोधा, दान-वीर, शत्रुओं की कीर्तिरूपी धूलि को पखारने वाले नीर, सैन्य-घोड़ों के द्वारा समुद्र के तट को भी छिन्न-भिन्न कर देने वाले, यान की तीव्र गति के कारण वायु के समान गति वाले, शुक-सारिका (मैना) आदि पक्षियों के द्वारा कीर्ति और स्तुति का गान किये जाने वाले, नीतिमार्ग का पालन करने के कारण प्रसिद्ध, सभी राजाओं के अग्रभाक्, विश्व की रक्षा करने में प्रवीण, बंग-राढ़-गौड-पाट-मेदपाट-खंजरीट-कान्यकुब्ज-कश्मीर-सिन्धु-सूरसेन-सत्रपार(?)-मल्लवाल-चोल-मालवा आदि अनेक देशों को दान दे देने वाले, अनवरत गाई जाने वाली अपनी कीर्ति से दिव्यलोक-मध्यलोक तथा नागलोक को भी गुञ्जायमान कर देने वाले, कमलपुष्प के आभूषण से सुसज्जित कानों वाले, शोभा सम्पन्न दिशा रूपी हरिणनयना नायिकाओं के विनोद से आनन्दित मन वाले.....:, पृथ्वी-रूपी नायिका के पैरों में पड़े नूपुर के समान दीनसाहि अर्थात् अकबर-शाह के साम्राज्य के रत्न, सत्फलों के धार्मिक अनुष्ठान में संलग्न रहने वाले अतः भासमान यत्न के समान हे नवाब खानखाना ! राजाओं के शिरोमणि ! धीर धरणीपति ! जब तक संसार में इन्द्र, मन्दराचल पर्वत, ग्रह-नक्षत्र, समुद्र, चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता है तब तक जीवित रहो ! दीर्घायुष्य प्राप्त करो !!!

टिप्पणी :

उपर्युक्त खानखाना की प्रशंसा-परक स्तुति में कतिपय ऐतिहासिक स्थानों, नगरों तथा प्रदेशों के अत्यन्त प्राचीन अभिधान प्रयुक्त हुये हैं जो लोकप्रचार की दृष्टि से बहुधा वर्तमान साहित्य-समाज और विद्वत्समाज में अज्ञात या अल्पज्ञात हैं। अतः इन अल्पज्ञात स्थानों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दूसरे इस प्रयोजन से भी प्रस्तुत कर दिया जाता है कि रुद्रकवि द्वारा इस ग्रन्थ-रचना के समय अर्थात् ई. सन् १६०९ तक खानखाना का प्रभुत्व और प्रताप किञ्च उनका शासन, इन प्रदेशों

१. 'सत्फलापधान' भ्रान्त पाठ है। इस पूर्ण पद में उपसर्ग उप् है या अप्; इसका निर्णय मूल पाठ से नहीं होता। अप् स्वीकार करने में अर्थ प्रतीति नहीं होती और उप् मान लेने से यह विवाद समाप्त हो जाता है। उपधान का एक अर्थ धार्मिक अनुष्ठान भी होता है (देखिये आप्टे का संस्कृत-हिन्दी कोष पृ. २०५) अतः इसके अनेक अर्थों में इसे ही स्वीकार कर इसका अर्थ व्यवस्थित किया गया है।

तक स्थापित हो चुका था। जैसा कि इन प्रदेशों के नाम-स्मरण के बाद ग्रन्थकार कहता है **'नैकदेशदानशूर'** सो इसके दो अर्थ हो सकते हैं एक तो ऐसे अनेक देशों को दान कर देने में आगे रहने वाला, दूसरे ऐसे अनेक देशों में दान देने में आगे रहने वाला। अब यहाँ दूसरे अर्थ को मानें तो यह मानना पड़ेगा कि रहीम घूम-घूम कर दान दिये फिरते थे। विकल्प हो सकता है कि इन प्रदेशों के निवासी रहीम से खूब दान, मान, सम्मान प्राप्त करते रहे होंगे। किन्तु पहले अर्थ को मानने से ही ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल अर्थानुसन्धान हो सकता है। राज्यों को जीतने के बाद बहुधा उन्हें मुगल-साम्राज्य का अङ्ग बना लिया जाता और उन राज्यों पर वहाँ के मूल अथवा उसके वंश के किसी योग्य को बिठा दिया जाता था। अतः 'खानखाना ने इन राज्यों को जीत कर पुनः उन्हीं के शासकों को दे दिया' इस अर्थ को बताने के लिए देशों का दान कर दिया कहना, किसी कवि के लिये आश्चर्य या बड़ी बात नहीं। अस्तु, ये देश या प्रदेश निम्नवत् हैं —

१. **राढ़ :** प्राचीन एवं मध्यकालीन (सेनवंशीय राजाओं के) भारत में बंगाल के चार प्रमुख प्रान्तों; वरेंद्र, बागरा, बङ्ग और राढ़ में से एक है। कुछ विद्वानों ने जैन-ग्रन्थ 'आयरङ्गसुत्त' में उल्लिखित लाढ़ नामक प्रदेश का अभिज्ञान बाढ़ से किया है किन्तु इतिहासकार इससे सहमत नहीं।

(देखिये भंडारकर द्वारा संपादित : Ashok Inscriptions, edited by Bndarkar, page-37.

२. **लाट :** दक्षिण गुजरात का प्राचीन नाम जिसका गुप्त-अभिलेखों में 'लाट' के रूप में ही उल्लेख प्राप्त है।

३. **गौड :** बंगाल, प्राचीन लक्ष्मणावती या लखनौती का मध्ययुगीन नाम जिसमें नौवीं दसवीं शती में पाल और बारहवीं शती में सेन नरेशों का आधिपत्य था। उपलब्ध साक्ष्यों एवं इतिहासकारों के अनुसार ई. सन् १५७५ में अकबर के सूबेदार (इसका नाम अज्ञात है) ने गौड के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर अपनी राजधानी पांडुआ से हटाकर गौड में बनाई। मुगलकालीन स्थापत्य के अप्रतिम उदाहरण कतिपय मकबरों और भवनों के अवशेष अब भी गौड के इस प्राचीन खंडहर बन चुके नगर में बचे हैं।

४. **पाट :** यह पाटन का संक्षिप्त रूप है और मुगल-कालीन इतिहास में चार पाटन प्रसिद्ध हैं रहे हैं - **क.** अन्हलवाड़, **ख.** सोमनाथ, **ग.** पाटल और **घ.** देवपाटन। किन्तु इनमें पहला *अन्हलवाड़* ही रुद्रकवि का अभिप्रेत है क्योंकि यह वही पाटन है जहाँ रहीम के पिता की हत्या हुई थी और

कालान्तर में वहाँ की जागीर भी रहीम को प्राप्त हुई थी; रहीम यहाँ के नहीं समग्र गुजरात के राज्यपाल बना दिए गए थे सो अन्य पाटन की कल्पना यहाँ अप्रासङ्गिक है। प्राचीन गुजरात की इस राजधानी की स्थापना चावड़ वंश के नरेश *वनराज* या *बंदाज* ने ई. सन् ७४६ में की थी। वर्तमान में यह एक छोटा सा कस्बा है जो *महसाणा* से २५ मील दूर है। विशेष जानकारी के लिए देखिये : 'ऐतिहासिक स्थानावली, पृष्ठ : २४-२५।

५. **कीर :** आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश (पृ.-२७८) के अनुसार यह *कश्मीर* है जबकि पुरातात्त्विक साक्ष्यों के अनुसार कीर वर्तमान *कांगड़ा (पूर्व पंजाब)* के आसपास का प्रदेश था जिसे *'अल्हणदेवी अभिलेख'* के अनुसार कलचुरी नरेश कर्णदेव (१०४१-१०७३ ई.) ने जीता था। विशेष विवरण हेतु देखिये Epigraphica Indica, vol.-2, page-11.

६. **सूरसेन :** अथवा शूरसेन; जिसकी राजधानी मथुरा थी और इसका नामकरण लवणासुर के वध के बाद दशरथ के सबसे छोटे पुत्र शत्रुघ्न ने अपने पुत्र शूरसेन के नाम पर किया था। मुगल-काल में यह अकबरी-साम्राज्य का हिस्सा बन चुका था।

७. **मल्लवाल :** मल्ल का नाम तो विदित है किन्तु मल्लवाल की स्थिति सन्देहास्पद है। रामायण और महाभारत के बाद बौद्ध-ग्रन्थ *'अंगुत्तरनिकाय'* में मल्ल-जनपद का उत्तरी भारत के सोलह जनपदों में उल्लेख है। *'महापरिनिव्वाणसुत्त'* में इस जनपद की दो राजधानियों का वर्णन है *कुशावती (कुशीनगर)* और *पावा*। किन्तु *चिन्तामणि विनायक वैद्य* ने मल्लराष्ट्र को महाराष्ट्र के रूप में ग्रहण किया है।

इनके अलावा मेदपाट, खंजरीट एवं सत्रपार, ये स्थान या नगर अभी तक अज्ञात या अल्पज्ञात हैं जिनका विवरण प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को अनेकानेक इतिहास एवं पुरातात्त्विक सन्दर्भ की पुस्तकों में भी प्राप्त नहीं हुआ। अन्य नगर या स्थान या प्रदेश प्रायः प्रचलित ही हैं। इन सभी नगरों पर कभी मुगल-साम्राज्य का आधिपत्य था और इस आधिपत्य की नींव में थे महान् मुगल-सम्राट् खानखाना अब्दुर्रहीम खां 'रहीम।'

जयति मधुरमूर्तिर्विश्व(विश्व)विख्यातकीर्तिः
समरहतविपक्षः सर्वविद्यासु दक्षः।
वितरणजितकर्णः पालिताशेषवर्णः
सकलनृपतिहीरः खानखानाख्यवीरः।।

रणभूमि में मार गिराया है शत्रुओं को जिसने, सभी प्रकार की विद्याओं में दक्ष, दान देने में कर्ण को भी जीत लेने वाला, समस्त प्रजा जिसमें अनेक वर्ण के लोग आते हैं; का पालन करने वाला, रमणीय रूप एवं स्वरूप का स्वामी, समग्र विश्व में विख्यात कीर्ति वाला और समस्त चक्रवर्ती सम्राटों का शिरोमणि यह खानखाना नवाब सबसे उत्कृष्ट है।

सप्तर्षिद्युतिभूसुरप्रियकरः सप्ताश्वसेवापरः
सप्तद्वीपविहारिकीर्तिनिकरः सप्ताङ्गराज्ये(जे)श्वरः।
सप्ताम्भोनिधि(विधि)भूषितक्षितिपतिः सप्तस्वरज्ञानवान्
सप्तार्चिप्रतिमः(मा) क्षितौ विजयते श्रीखानखानानृपः॥

सप्तर्षि नामक नक्षत्र-पुञ्ज की प्रभा के समान सुन्दर और मित्र-राजाओं का उपकारी, सूर्य का उपासक अथवा सात घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथ में गमन करने वाला, सात द्वीपों या समस्त जगतीतल में प्रसिद्ध यश वाला, सप्ताङ्ग राज्य का स्वामी, सातों समुद्र से सुसज्जित पृथ्वी का पति, सङ्गीत के सातों स्वरों का ज्ञाता व प्रयोक्ता और अग्नि के समान तेजस्वी नवाब खानखाना पृथ्वी पर सुशोभित होता है।

नवाव - नृपतेरटत्कटक - घोटक - प्रोत्कट-
स्फुटत्खुरतटत्रु(तृ)टद्धरणिपृष्ठरेणूत्कटः।
झटंकि (?) तटिनीविटः स्फुटविपाटनप्रो(प्र)द्धटः[१]
सुरैः स्वतटिनीनटत्कटकवाटपाटच्चरः॥

नवाब खानखाना के विचरण करने वाले सैन्य-घोड़ों के द्वारा अत्यधिक छलांग लगाये जाने के कारण उनके खुरतटों से चकनाचूर हुई पृथ्वी से उठते हुए भीषण धूलसमूह को देवताओं ने अपनी नदी आकाश-गङ्गा या भगवती मन्दाकिनी के इर्द-गिर्द तथा तट पर; कटक = राजधानी के वाट = घिरे हुए भूभाग के लुटेरों के समान गिरते[२] हुए देखा। खानखाना के घोड़ों के खुरतट से उपट पड़े ये विशाल धूम-समूह निश्चय ही नदियों के उपपति (जार) हैं।

१. 'स्फुटविपाटनप्रोद्धटः' में प्रयुक्त समास स्पष्ट नहीं होता। 'रेणूत्कटः' का विशेषण मान लिए जाने पर भी यह स्पष्ट नहीं होता।

२. नट्धातु का यहाँ गिरने संबन्धी ही अर्थ सङ्गत जान पड़ता है। नृत्य अथवा नाटक के अर्थ में इस धातु के अर्थ को लेने पर धूलसमूह के नाचने का आशय स्पष्ट नहीं होगा। अब गिरने के अर्थ में दो दो नट् धातु का प्रयोग केवल भ्वादि गण में उपलब्ध हैं, **'णट्' 'नट्' भ्वादि. नृत्तै, नतावित्यन्ये। हिंसायामित्येके। 'णट्' 'नट्' नतौ**। दोनों के ही रूप नटति नटतः नटन्ति के समान चलेंगे। विशेष विवरण हेतु देखिए : धातुरत्नाकर, भाग-१, में नट्धातु के विभिन्न रूप।

टिप्पणी :

प्रस्तुत पद्य में रुद्रकवि ने टकार के अनुप्रास संयोजन पर इतना अधिक बल दे दिया है कि पद्य में प्रयुक्त पदों एवं धातुओं का सटीक अर्थ लगना कठिन हो गया है। इस पद्य में सबसे अधिक विचारणीय विन्दु है इस पद्य की क्रिया जो कि इसमें या तो है नहीं या है तो वह तीसरे चरण के प्रथम पद के रूप में उपलब्ध 'झटंकि' को छोड़ कोई दूसरा हो नहीं सकता। अब 'झटंकि' का रहस्य यह है कि बहुत माथा-पच्ची करने के बाद और अनेकानेक विद्वानों और कवियों से राय-विमर्श के बाद भी यह नहीं ज्ञात हो सका कि यह सुबन्त है या तिङन्त। एक तो 'झ'-वर्ण से प्रारम्भ होने वाले धातु ही अत्यल्प हैं (झट्-संघाते, झम्-अदने, झर्च्-परिभाषणे तर्जने वा, झर्झ्-परिभाषणे, झष्-हिंसायाम्, झष्-आदानसंवरणयोः, झृ-जरसि जरावयोहानौ) और जो हैं भी तो तिङन्त या सुबन्त कहीं भी उन धातुओं का यह झटंकि रूप नहीं बनता। तीसरे चरण में जहाँ यह 'झटंकि' पद दिया गया है, ध्यान रखना चाहिए कि एकमात्र यही स्थान और पृथ्वी छन्द की मात्रा या गण के लिये भी एकमात्र यही स्थल है जहाँ क्रियापद को कवि प्रस्तुत कर सकता है दूसरे वह इस पद्य में किसी भी स्थल पर अपनी क्रिया को प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसा भी नहीं मानना चाहिए कि क्रिया का अध्यहार ही कवि को विवक्षित है। यदि ऐसा होता तो उसने चतुर्थ चरण में 'सुरैः' के रूपमें इस अखण्ड वाक्य का कर्ता और उस कर्ता का आत्मीय सम्बन्ध बोधक 'स्वतटिनी-नटत्कटक.... आदि प्रयोग नहीं किया होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'झटंकि' किसी क्रिया का विकृत रूप है जो कि प्रतिलिपिकार की असावधानी से आ गया है। क्रिया के अनुमान में एक सहायक हेतु यह है कि इस छन्द के नियम के अनुसार जहाँ 'झटंकि' का प्रयोग किया गया वहाँ। ऽ। अर्थात् लघु-गुरु-लघु मात्रा वाले तीन वर्ण अर्थात् जगण में समाप्त होने वाली किसी क्रिया को होना चाहिए और ऐसी क्रियाएं लुङ् लकार के कर्मवाच्य में ही सम्भव हैं, यथा : एतत्कार्यं मया अकारि, अमानि, अपाठि, अलेखि, अबोधि इत्यादि। विद्वानों और विदग्ध सहृदयों से निवेदन है कि वे इस प्रकार की क्रिया का अन्वेषण कर लेंगे और इन पंक्तियों के लेखक को इस कार्य में असफल होने के अपराध को क्षमा करेंगे।

श्रीमद्भूप - समूह - भूषणमणिर्भूदेवचिन्तामणिः
सं(स)ग्रामार्णवतारणैकतरणिस्तेजोहुताशारणिः(भूताशारणि)।
लक्ष्मीकीर्तिवदान्यतैकसरणिर्वाग्वल्लरी सारणि-
र्जीयाद्वैरि(द्वीर)तमिस्त्रवासरमणिः श्रीखानखाना गुणी ।।

श्रीयुत् राजाओं के समूह-आभूषणों में चिन्तामणि के समान, भीषण-संग्रामरूपी समुद्र को पार कराने में एकमात्र नाव के समान, तेजस्वियों के मध्य देवताओं के प्रिय शमीवृक्ष की लकड़ी के समान; जो स्वयं आग उत्पन्न करने की शक्ति रखता है, धन-सम्पत्ति, कीर्ति और दानशीलता का एकमात्र सीधा मार्ग अर्थात् आश्रय-स्थल, सरस्वती-रूपी लता को पुष्पित एवं पल्लवित करने वाली छोटी नदी के समान और शत्रु-रूपी अन्धकार को विध्वंस करने में जो सूर्य के समान है ऐसा यह गुणी श्रीनवाब खानखाना जीता रहे।

आशापर्णविराजितं ग्रहगणप्रालेयलेशाञ्चितं
दिक्कुम्भिभ्रमरावलीवलयितं गङ्गामरन्दाद्भुतम्।
हेमक्ष्माधरकर्णिकं(के) परिलसत्सूर्येन्दुहंसद्वयं
यावद् भूमिसरोरुहं विजयते त्वं वीर तावज्जय।।

दिशा रूपी पत्तों पर स्थित, सौरमण्डल एवं प्रालेयलेश=हिम के टुकड़ों से अञ्चित= व्यवस्थित, दिग्गजों के मस्तक से निकलने वाले मद के चारों ओर परिभ्रमण करने वाले भंवरों की पंक्ति से घिरा हुआ, गङ्गा-रूपी पुष्प-रस से भी अद्भुत, सुमेरु पर्वत (रूपी कर्णफूल) से सुशोभित कानों वाले, सूर्य और चन्द्रमा रूपी दो हंसों के विहार से शोभायमान पृथ्वी के सरोवर जब तक अस्तित्त्व में हैं; हे खानखाना वीर ! तब तक तुम विजय एवं उन्नति प्राप्त करते रहो।

टिप्पणी :

१. खानखाना की उन्नति एवं उसके ऐश्वर्य के बढ़ते रहने की आकांक्षा से कवि ने अपनी ओर से उसे आशीष दिये हैं। २. उन्नति के बढ़ने सम्बन्धी अवधि का मांन भूमि और उस पर स्थित सरोवर हैं। ३. 'भूमिसरोरुहं' विशेष्य है और बाकी सब नपुंसकान्त पद विशेषण किन्तु कोई-कोई विशेषण केवल भूमि के पक्ष में सटीक अच्छे लगते हैं तो कोई-कोई केवल सरोरुह के। यथा 'हेमक्ष्माधरकर्णिकं' अर्थात् सुमेरुपर्वत-रूपी कर्णफूल से सुशोभित कानों वाली' यह विशेषण भूमि के लिए अच्छा बन पड़ा है किन्तु कवि ने नपुंसक में प्रयुक्त कर इसे 'सरोरुहं' का विशेषण बना दिया है जिसके लिए वह बाध्य था। इसी प्रकार 'परिलसत्सूर्येन्दुहंसद्वयं' यह विशेषण 'सरोरुहं' के लिये ही अच्छा लगता है, भूमि के लिए नहीं क्योंकि समग्र भूमि को यदि सरोवर मान लें तो सूर्य और चन्द्रमा उस सरोवर के हंस होकर अलौकिक सुन्दरता का आधान करेंगे। ४. 'अञ्चितं' का एक अर्थ व्यवस्थित भी है, यथा - **'अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः'**..... आदि (रघुवंश ७/१०)।।

वीराखण्डल-खानखान-जगतीभर्तुर्गुणैर्गुम्फिता
सान्द्रामोद-मिलत्प्रताप - नृपति - प्रेमामृतस्यन्दिनी ।
विद्वन्मण्डल-चञ्चरीक-परिषच्चेतश्चमत्कारिणी
वाक्सन्तानकमालिका मतिमतां कण्ठे विभूषायताम् ।।

दुर्धर्ष वीरों के मध्य इन्द्र के समान प्रतीत होने वाला यह खानखाना जो कि समग्र विश्वम्भरा भगवती धरती का स्वामी है; -के उदार गुणों से गुम्फित, प्रगाढ़ आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण, राजाधिराज 'प्रताप' के प्रेम रूपी अमृत को प्रवाहित करने वाली, विद्वन्मण्डली-रूपी भ्रमर-समूह के हृदय को चमत्कृत करने वाली यह इन्द्र के स्वर्गीय पांच वृक्षों में से एक 'सन्तानक'-वृक्ष के फूलों की माला के समान प्रस्तुत 'नवाबखानखानाचरितम्' नाम की रचना विद्वानों, सुरभारती-उपासकों के कण्ठों को सदा ही विभूषित करती रहे ।

टिप्पणी :

खानखाना और महाराज प्रताप के पारस्परिक प्रेम-पूर्ण सम्बन्धों को प्रदर्शित करते हुए प्रस्तुत रचना की पूर्णता को सूचित करने हेतु इस पद्य की रचना की गई है । 'नवाबखानखानाचरितम्' नामक चम्पू-रचना पर 'सन्तानकमाला' का आरोप किया गया है । 'सन्तानक' के मायने इन्द्र के स्वर्गीय पांच वृक्षों में से किसी एक वृक्ष के फूल से है जिसका साहित्यिक प्रयोग कवियों ने खूब किया है, उदारहणार्थ **'सन्तानकतरुच्छायासुप्तविद्याधराध्वगम्'** कुमारसम्भवम्-६/४६, **'सन्तानकाकीर्णमहारथं तत्'** वहीं ७/३ और देखिये शिशुपालवधम्-६/६.

शाके क्ष्माग्नितिथौ सौम्ये वैशाखे शुक्लपक्षतौ ।
चरित्रं खानखानस्य वर्णितं रुद्रसूरिणा ।।[१]

क्ष्मा=१, अग्नि=३ एवं तिथि=१५ 'अङ्कानां वामतो गतिः' के सिद्धान्त पर सब मिलाकर १५३१ शक संवत् (ईसवी सन् १६०९-१६१०) के वैशाख शुक्ल के सोमवार को रुद्र नामा कवि ने नवाब खानखाना के चरित्र का वर्णन किया ।

।। श्रीशालामयूराद्रिपुरन्दरप्रतापशाहोद्योजितरुद्रकवीन्द्रविरचिते
तृतीय उल्लासः ।।

---

१. नियमतः ग्रन्थ-रचना काल का उल्लेख अन्तिम उल्लास की अन्तिम पुष्पिका में होना चाहिए किन्तु यहाँ तृतीय उल्लास के अन्त में ही इस प्रकार के उल्लेख का आशय यह है कि संभवतः लन्दन वाली प्रति के प्रतिलिपिकार को ऐसा ही कोई हस्तलेख प्राप्त हुआ था जिसमें यह उल्लेख इसी उल्लास में आ गया ।

चतुर्थ उल्लासः

त्वद्दोर्दण्डबलोपजीविकतया त्वामेव यो नाथते
त्वत्कल्याणपरम्पराश्रवणजां तुष्टिं चिरं योऽश्नुते ।[१]
दूरस्थोऽपि च यस्तवैव परतः प्रख्यातिमाभाषते
सोऽयं नार्हतु खानखान भवतः प्रीतिं प्रतापः कथम् ।।

हे नवाब खानखाना ! आपके बाहु-रूपी दण्ड के बल के उपजीवी होने के कारण जो आपसे ही प्रार्थना करता है, आपके कल्याणपरक स्वभाव एवं उसकी परम्परा की कीर्ति को सुनने से उत्पन्न हुई तुष्टि का ही जो चिरकाल तक आस्वाद करता है, अत्यन्त दूर देश में रहता हुआ भी परोक्ष में जो आपके ही यश का गुण-गान करता रहता है ऐसा वह 'प्रताप' आपकी प्रीति, आपके सौमनस्य, आपकी उदारता एवं आपकी कृपा को क्यों न प्राप्त करे ।

टिप्पणी –

इस पद्य का मूल पाठ निम्नवत् है - त्वदोर्दण्ड..., जीवकलया..., नार्थते..., श्रवणतां..., नार्हर्तु... ।

पूर्व(पूर्व) वीरपदेषु पुत्रपदवीमारोपितः श्रीमता
यच्चाकव्वरशाहपार्थिवमणेरन्नं(रण्णे) पुनर्भक्षितम् ।
सोऽयं तेन मुदा नवावचरणान् प्रीतः प्रतापः पुनः
यत्तत्सम्प्रति खानखाननृपते योग्यं तदेवाचर ।।

हे वीर ! श्रीमान् के द्वारा पहले तो यह 'प्रताप' पुत्र के पद पर प्रतिष्ठित किया गया और उसके बाद तो इसने अकबर बादशाह का नमक तक खाया है । इस कारण ही यह आपका स्वामिभक्त प्रताप पुनः प्रसन्नतापूर्वक आप नवाब के चरणों में प्रस्तुत है ।' अब ऐसा जानकर हे राजाधिराज खानखाना ! जैसा अनुकूल (योग्य) जान पड़े वैसा ही करें अर्थात् जिससे प्रताप का कल्याण हो और यश भी बना रहे वैसा ही करें ।

सकलगुणपरीक्षणैकसीमा नरपतिमण्डलवदनैकधामा ।
जयति जगति गीयमाननामा गिरिवनराजनवाव खानखाना ।।

सभी प्रकार के गुणों की परीक्षा के एकमात्र कसौटी, अनेकानेक राजाओं

१. मूल हस्तलेख में 'पुष्टिं सियोश्नते' पाठ है किन्तु संबद्ध अर्थ उपरिवत् ही आएगा ।

के द्वारा वन्दित एवं स्तुत चरित्र वाले, समग्र संसार में विख्यात एवं कीर्तित नाम वाले, पर्वतों एवं वनों के भी स्वामी यह नवाब खानखाना सर्वोत्कर्षशाली हैं।

टिप्पणी :

नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित 'नवाबखानखानाचरितम्' के कतिपय पद्यों के मध्य इसे भी प्रस्तुत किया गया है। यहाँ इस पद्य के अन्तिम समग्र चरण का पाठ इस प्रकार है : **'गरिबनवाज़ नवाब खानखाना'** इससे उपर्युक्त अन्तिम चरण के अर्थ में आंशिक परिवर्तन आ जाता है। गरीबनवाज के माने गरीबों पर दयादृष्टि रखने वाले से है और नवाब खानखाना तो पद्य का उद्देश्य ही है जिसके अन्य चरण विधेय हैं।

बलिनृपबन्धनविष्णुर्जिष्णुः श्रीखानखानायम्।
अम्बर-शम्बरमदनौ तनयौ मीरजीयली च दाराबौ।।

यह नवाब खानखाना ! राजा बलि को बांध लेने वाले भगवान् विष्णु को भी जीतने में सक्षम हैं जिनके आकाश एव पर्वत के समान विशाल किञ्च गम्भीर तथा कामदेव के समान सुन्दर मीरजी यलीच (मिर्जा इलीच) और दाराब खां नामक दो पुत्र हैं।

वीरश्रीजंहगीरसाहमदने[1] प्रौढ़प्रतापोदयत्-
क्षुभ्यद्दक्षिण - दिक्कुरङ्गनयना - संसर्गसक्तात्मनि।
क्षोणीमण्डल-खानखान-धरणीपाले तदीयाम्बर-
व्याक्षेपाय करं वितन्वति[2] तया सानं(द)या भूयते।।

वीर जहाँगीर बादशाह के बढ़ते हुए प्रबल प्रताप के कारण हरिण के समान चञ्चल आंखों वाली क्षुब्ध दक्षिणदिशा-रूपी नायिका का चित्त तुम्हीं में आसक्त है ! ऐसे हे दक्षिणदिक्पति ! राजाधिराज खानखाना ! तुम्हारे द्वारा, (उस क्षुब्ध दक्षिण-

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रस्तुत पाठ इससे भिन्न है और वहाँ 'साहमदन' और प्रौढ़प्रतापोदय-क्षु'... के बीच समास है अर्थात् प्रथम एवं द्वितीय चरण एक ही समस्त पद हैं। इस प्रकार के पाठ से अर्थ का अनुसन्धान ठीक ठीक हो जाता है अतः भावार्थ की प्रस्तुति में चौधरी जी के पाठ को आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर करंबेलकर के पाठ के आधार पर अर्थ प्रस्तुत किया गया है।

२. व्याक्षेपाय 'करम्बिते' का क्या आशय है यह पता नहीं चलता। इसके स्थान पर नागपुर वाली प्रति में 'व्याक्षेपाय करं वितन्वति तया सानन्दया भूयते''·पाठ है जो कि अर्थानुसन्धान की दृष्टि से ठीक है।

नायिका का पति नियुक्त कर दिये जाने के कारण) (संभोग; दक्षिण के नियमन तथा उपभोग हेतु) उसके वस्त्रों को खींचने के लिए तुम्हारे द्वारा हाथ बढ़ाए जाने पर अब वह आनन्दित हो रही है ।

टिप्पणी :

नागरीप्रचारिणी पत्रिका में करम्बेलकर ने इस पद्य के प्रथम दो चरणों को समस्त पद के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि अर्थानुसन्धान की दृष्टि से शुद्ध है । चौधरी जी के पाठ से सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती क्योंकि उनके पाठ में जो 'वीरश्रीजहंगीरसाहमदने' में सप्तमी एकवचन का प्रयोग है वह किसका विशेषण बने सो भ्रान्ति है । त्वयि का विशेषण; जैसा कि अन्य सभी सप्तम्यन्त पद उसके विशेषण हैं, -नहीं माना जा सकता क्योंकि खानखाना के साथ वीर श्री जहंगीरसाह के 'मदन' से क्या आशय सिद्ध होगा । समस्त पद मान लेने से अर्थानुसन्धान यूं होगा **''जहंगीरसाहश्चासौ मदनश्च जहंगीरसाहमदनः, वीरश्चासौ श्रीजहंगीर-साहमदनश्च वीरश्रीजहंगीरसाहमदनस्तस्य प्रौढ़श्चासौ प्रतापश्च प्रौढ़प्रतापस्तस्य उदयस्तेन क्षुभ्यन्ती दक्षिणदिक्.....** इत्यादि और यह समस्त पद विशेषण होगा **'त्वयि'** का जिसका एक विशेषण **'क्षोणीमण्डलखानखानधरणी-पाले'** भी है और दोनों विशेषण दोनों ही शासकों से अन्वित नहीं हो सकता, ऐसी पद्य की मर्यादा और मांग है ।

मन्ये विश्वकृता दिशामधिपता त्वय्येव संस्थापिता
यस्माज्जिष्णुरसि प्रभो शुचिरसि त्वं धर्मराजोऽप्यसि ।
राजन् पुण्यजनोऽसि विश्वजनताधारः प्रचेता जगत्
प्राणस्त्वं धनदो महेश्वर इह श्रीखानखान प्रभो ।।

हे खानखाना ! मानो विश्व का निर्माण करने वाले ब्रह्मा जी ने सतस्त दिशाओं का आधिपत्य तुम्हें ही प्रदान कर दिया । देखो न दशों दिक्पालों की शक्ति और सामर्थ्य तुममें कैसे प्राप्त हुए जाते हैं — तुम इन्द्र के समान विजयशील हो ! अग्नि के समान पवित्र हो ! धर्म का पालन करने के कारण साक्षात् धर्मराज हो ! हे राजन् पुण्यकर्मा तुमही साक्षात् यमराज हो ! विश्व-जनता के आधारभूत निर्ऋति हो ! तुम्हीं वरुण हो ! जगत् के प्राणस्वरूप तुम्हीं वायु हो ! धन-सम्पत्ति के प्रदाता तुम्हीं कुबेर और समस्त जनता पर शुभ-दृष्टि रखने वाले हे प्रभो खानखाना इस लोक के महेश भी तुम्हीं हो ।

।। इति श्रीरुद्रकविविरचिते नवाबखानखानाचरिते चतुर्थ उल्लासः।।

।। इति नवाबखानखानाचरिताभिधं चम्पूकाव्यं समाप्तिमगात् ।।

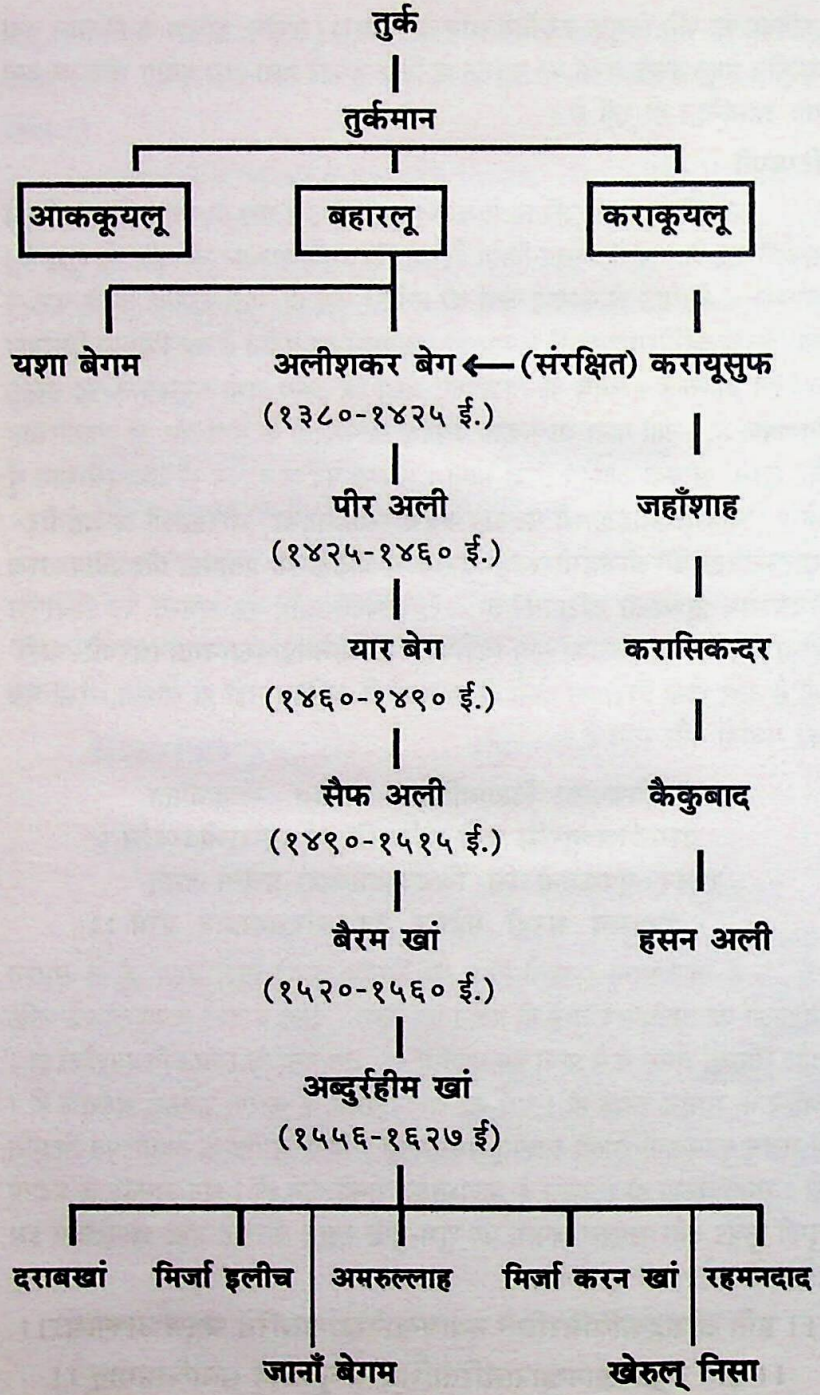
तुर्क
तुर्कमान
आककूयलू
बहारलू
काराकूयलू
यशा बेगम
अलीशकर बेग
(१३८०-१४२५ ई.)
(संरक्षित) करायूसुफ
पीर अली
(१४२५-१४६० ई.)
जहाँशाह
यार बेग
(१४६०-१४९० ई.)
करासिकन्दर
सैफ अली
(१४९०-१५१५ ई.)
कैकुबाद
बैरम खां
(१५२०-१५६० ई.)
हसन अली
अब्दुर्रहीम खां
(१५५६-१६२७ ई)
दराबखां
मिर्जा इलीच
अमरुल्लाह
मिर्जा करन खां
रहमनदाद
जानाँ बेगम
खेरुल् निसा

खानखानाचरितम् में आए ऐतिहासिक व्यक्ति, लेखक एवं स्थान आदि की अनुक्रमणिका

अकबर २८,२५,४०,४९-५१,३१,
अजरबेज़ान ४६.
अनन्त १२,
अन्हलवाड ३१.
अनीशी शमलू ८४.
अबुल फज़ल २६,
अब्दुल बाकी नहाबन्दी ५१-५२,८४,
अभिमन्यु-कवि ७८-७९.
अम्बिकादत्त व्यास ८७.
अमरुल्लाह ५३.
अमीर उफीउद्दीन हैदर राफेई ८४.
अमीर खुसरो शाह ४८.
अमीर तैमूर (लंग) ४७-४८.
अलाकुलि-कवि ७६.
अलीशकर बेग़ ४६.
अवधबिहारी पाण्डेय ३५-३६,
अहमदाबाद ५०,५४.
अह्मद ३३.
आककूयलू ४६,
आरमीनिया ४६.
इन्द्रजीत (ओरछा-नरेश) ६७.
इस्फहानी ८४.
उमर शेख़ ४७.
उर्फी ४५.
एल. पी. शर्मा ३५.
ऑफ्रेक्ट ५
औरंगजेब १८,
कपिलदेव पाण्डेय, डॉ. ८८.
करन खां (मिर्जा) ५२.
कर्णदेव ३२
कराकूयलू ४६,
करायूसुफ ४६-४७.
कर्पूरग्राम ३३.
कृष्णदैवज्ञ ६५.
काशानी ८४.
काशीराम ६७.
काशी सब्जीवारी ८४.
किशोरीलाल गुप्त ७९-
कीर ३२.
केशव १२.
केशवदास, महाकवि ६७-६८.
ख़्वाजा अब्दुल मलिक ५०.
ख़्वाजा सैदय उफी ८४.
खानदेश १९,३२,
खेरुल्निसा ५२.
गणेश देवालय २४,
गाजी खां बदख़्शी ५०.
गोपीनाथ कविराज ७.
गोलकुण्डा ९४.
गौड ३१
गङ्ग महाकवि ५६,७१-७४,९५.
गंगानाथ झा ७.
गङ्गावती ३३.
चंगेज खां ४८.

चन्दोर १८,
चाँदबीबी ३६-३७,४४,६२,
चिंतामणिविनायक वैद्य ३२.
चिद्रूप-संन्यासी ८०.
जमाल खां ४९.
जगन्नाथ त्रिशूली ६६,
जगन्नाथ, पण्डितराज ४२,६७,
जगमल सिसोदिया ६९.
जहाँगीर २५-२६,४१,८०.
जाना बेग़म ५२.
जाड़ा-आसकरन ६९.
जूज़ी खां ४८.
जे. एल. मेहता ३५.
तबरेज ४७.
ताम्रध्वज १८,
तारा-कवि ७७-७८.
ताराचन्द्र, डॉ. ७
त्रिम्बक १८.
त्रिविक्रम भट्ट ८.
दण्डी ८.
दतिया २८.
दलाल, सी. डी. २७.
दाखिली ८४.
दानियाल १६,४१,५२.
दाराब खां ५२.
दुर्गावती २१.
देनूर ४६.
धायिट ३२.
नकछेदी तिवारी ८०.
नजीरी ४५.
नन्दुरबार ३२.
नगेन्द्र नाथ बसु, डॉ. १८,
नरहरि (महापात्र) ७६.
महात्मा नरहरिदास ८०.
नागपुर ५-६.
नादौत-युद्ध ५४.
नारायण शाह १२,२१-४१.
नासिक १८,
निजामपुर २८.
नेजाराम (बांधव-नरेश) ७६.
नेरपुर ३२.
पाट ३१.
पार्थनगर १३.
पारवद ३२-३३.
पांडुआ ३१.
पी. के. गोडे ७.
पीर अली ४७.
पुण्यस्तम्भ (पूना) ३३.
पुन्ताम्बा ३६.
प्रताप शाह १२,२४-२५,४२.
प्रसिद्ध-कवि ७०-७१.
फतह उल्लाह शीराजी ५५-५७.
फरग़ाना ४८.
बगदाद ४७.
बदख़्शाँ ४७.
बरार-युद्ध ५५.
बलदेव उपाध्याय ८.
बहारलू ४६.
बाण-कवि ८३.
बाणभट्ट ८,८५,९५.
बागुला २०.
बागुलान १३,१८-१९.
बाबर ४८-४९.
बाबा जम्बूर ४९.

बिल्वपुर ३३.
बिहारीलाल, महाकवि ७ ९ - ८०.
बुर्हाण निजाम शाह ३१,३६,४४,६२.
बेदूर २८.
बैरम खां खानखाना ४८.
ब्रजरत्नदास, बाबू २५.
भण्डारकर ३१
भवभूति ८९.
भेरजी २५.
भैरवसेन २१.
भर्तृहरि ८.
मण्डन-कवि ६९-७०.
मयूरगिरि १८.
मयूरध्वज, राजा १८.
मल्लवाल ३२.
महमूद मिर्जा ४७.
महसाणा ३२.
महाबत खां ५२.
महाराणा उदय सिंह ४४.
महाराणा प्रताप ४४,६०,६९.
महाराणा सांगा ४९.
माघ ८.
मानसिंह ६०,७६.
मायाशङ्कर याज्ञिक ६३,७४-७५.
मालेगांव १८.
माह बानो बेगम ५१,५५.
माहम अनगा ५१.
मियां बजीहुद्दीन मु. दब्बानी ५०.
मिर्जा अजीज कोका ५१.
मिर्जा खां ५०.
मिर्जा एरच ५३.
मिर्जा सफरुद्दीन हुसैन २२.
मीर ३२.
मीर अमीनुद्दीन ५२.
मीर मुगीस माहबी हमदानी ८४.
मुकुन्द-कवि ७८.
मुजफ्फर ६१.
मुबारक खां लोहानी ४९.
मुराद ३१-३३,
मुल्ला इमाद तारकी ५०.
मुल्ला मुहम्मद अमीन ५०.
मुल्ला मुहम्मद रज़ा नबी ८४.
मुल्ला हयाती जीलानी ८४.
मुहम्मद अमीन दीवाना ४९.
मुहम्मद खां शेबानी उज़बक ४८.
मुहम्मद दव्वानी ५०.
मुसाम घाटी १८.
मुंशी देवीप्रसाद ४६,४९,५१.
यशवन्त खुशाल देशपांडे ५.
यतीन्द्रविमल चौधरी ६५,९६.
यदुनाथ सरकार १९,२१,२८.
यार बेग ४७-४८.
याज्ञिक-बन्धु ५६.
रमई पाठक ८३.
रहमानदाद ५२.
राढ़ ३१
रामदास, बाबा ४९.
राधापुरी ३३.
राहुल सांकृत्यायन ५०.
लक्ष्मणावती (लखनौती) ३१.
लक्ष्मीनारायण मैथिल ७९.
लाट ३१.
लोकनाथ सिलाकारी ८०,

वनराज	३२	समरकन्द	४७-४८.
वासुदेव द्विवेदी शास्त्री	१.	समरबहादुर सिंह	६४.
विराट	३४.	सरखेज-युद्ध	५४.
विनायकवामन करंबेलकर	३,९६.	सरयूप्रसाद जायसवाल	७४,७६.
विद्याधर महाजन	३५.	सरोजकार	७०,७५,७७,७९.
विद्यानिवास मिश्र, आचार्य	८८.	सहस्रलिङ्ग तालाब	४९.
विश्वनाथ महामात्र	८७.	सामरी	८४.
वीरसेन	२१.	साल्हेर	१८,
वीरमसेन	२१.	सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव	१८,३६
शङ्कराचार्य	८९.	सी. कु. राजा, डॉ.	७.
शबान	४८.	सुल्तान अहमद	४७.
शहबाज खां	३२,६०.	सुल्तानपुर	१८.
शालागिरि	१८-२१.	सुल्तान हुसेन मिरजा	४७.
शालामयूराद्रि	१२.	सूरत	१८.
शाहजहाँ	१६,४१.	सूरजमल, महाकवि	५६,७४.
शाहनवाज खां	५२.	सूरदास	४९.
शाहपुर	६२.	सूर्य दैवज्ञ	१३.
शिवराम शर्मा, डॉ.	९७.	सेफ अली	४८.
शुचिस्मिता पाण्डेय, डॉ.	९७.	सोमनाथ	३१.
शूरसेन	३२.	हमदान	४६.
शेख सादी	४५.	हरदत्त शर्मा	७.
शेवटी	३६.	हरिनाथ-कवि	७५.
श्रीहर्ष, महाकवि	९५.	हसन खां मेवाती	४९.
सच्चिदानन्द भट्टाचार्य	३५.	हिसारशादमां	४७.
सताना	१८.	हुमायूँ	४९.
सन्त-कवि	७५.	ज्ञानराज	१३.

टिप्पणी —

इस अनुक्रमणिका में उन्हीं व्यक्ति, लेखक तथा स्थान आदि का विवरण दिया गया है जो एक से अधिक बार आए हैं किन्तु अत्यधिक बार प्रयुक्त व्यक्ति, लेखक अथवा स्थानों का विवरण इस अनुक्रमणिका में नहीं है। (बोल्ड) मोटे अक्षरों में दी गयी संख्याएं मूल खानखानाचरितम् में आए ऐतिहासिक व्यक्ति एवं स्थान आदि के नामों को दर्शाते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

कोश-ग्रन्थ

१. आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण १९८९ ई.
२. ऐतिहासिक स्थानावली, लेखक : विजयेन्द्र कुमार माथुर, प्रकाशक : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण १९९० ई.
३. हिन्दी विश्वकोश, भाग : १-५, संपादक : डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु, कलकत्ता, १९३५ ई.
४. हिन्दी विश्वकोश, भाग-४ एवं ५, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रधान संपादक : रामप्रसाद त्रिपाठी, पुनर्मुद्रित संस्करण सं. २०५९ विक्रमी.
५. भारतीय इतिहास कोश, मूल लेखक : सच्चिदानन्द भट्टाचार्य, प्रकाशक : उ. प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ-१ तृतीय संस्करण २००१ ईस्वी.
६. महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश, (मराठी) भाग-१८, पूना.
७. मध्ययुगीन चरित्र कोश, (मराठी) सम्पादक : सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, पूना.

इतिहास-ग्रन्थ

१. Akbarnama, by Abul Fazla Allami, translated by Henry Wevariz, published from Asiatic society of Bengal, Calcutta, in 3 parts.
२. Ain-i-Akbari, by Abul Fazla, translated by H. Blochmann, pub. from Asiatic society of Bengal, Calcutta, 2nd Edition 1927.
३. Masir-i-Rahimi, by Abul Baqi Nahabandi, published from Asiatic society of Bengal Calcutta, in 4 parts.
४. Muntakhabu-t-tawa'rikh, by Mullah Abdul Qadir Badaoni, Part-1, translated by Surgeon-Lieut-Colonel G. Ranking, 1895, Part-2, trans. by W. H. Lowe, 1924, and Part-3, translated by Captain T. Wolseley Haig, Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1899.
५. Fathullah Shirazi {A sixteenth century Indian scientist} published from National Institute of sciences of India, 1968.
६. Contributions of Muslims to Sanskrit learning, by Dr. J. B. Choudhury. publisehd from Pracyavani, Calcutta, 1954.
७. Muslim petronage to Sanskrit learning, by Dr. J. B. Choudhury, published from Pracyavani, Calcutta, 1941.

८. History of Aurangzeb, by sir Jadunath Sarkar, pub. from Oriental Longman Ltd. 1st edition 1972.

९. अकबरी दरबार, मूल फारसी लेखक : मौलाना मुहम्मद हुसेन आजाद, हिन्दी अनुवादक : डॉ. रामचन्द्र वर्मा, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, २०२४ वि. सं.

१०. जहाँगीरनामा, अनुवादक : बाबू व्रजरत्न दास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, द्वितीय संस्करण, सं. २०४७ विक्रमी.

११. मआसिरुल उमरा, भाग : १-२, लेखक : नवाब समसामुद्दौल्ला शाहनवाज खां शहीद खवाफी औरंगाबादी, अनुवादक : बाबू व्रजरत्नदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, नवीन संस्करण २०४९ विक्रमी संवत्.

१२. खानखानानामा, लेखक : मुंशी देवीप्रसाद, प्रकाशक : भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता, प्रथम संस्करण १९०२ ईस्वी.

१३. सूरदास का जीवन-चरित, मुंशी देवीप्रसाद. प्रकाशक-प्रकाशन वर्ष-अज्ञात.

१४. वंशभाष्कर, लेखक : सूरजमल, श्री कृष्णसिंह की 'उदधिमन्थिनी व्याख्या' के साथ, प्रकाशक : प्रताप-प्रेस, जोधपुर, १९०० ईस्वी.

१५. उत्तर-मध्यकालीन भारत, लेखक - अवधबिहारी पाण्डेय, प्रकाशँक - सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९८३ ई.

१६. मध्यकालीन भारत का वृहद् इतिहास, लेखक - जे. एल. मेहता, प्रकाशक - जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९७ ई.

१७. मध्यकालीन भारत, लेखक - एल. पी. शर्मा, प्रकाशक - लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, इलाहाबाद, सप्तम संस्करण १९८७ ई.

१८. मध्यकालीन भारत, लेखक - विद्याधर महाजन, प्रकाशक - एस. चन्द एण्ड कम्पनी प्रा. लि. नई दिल्ली, अष्टम संस्करण १९८८ ई.

१९. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक : बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक : शारदा निकेतन, वाराणसी.

२०. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, लेखक : बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक : उपरिवत्.

२१. शिवसिंह सरोज, लेखक - शिवसिंह सेंगर, संपादक - डॉ. किशोरीलाल गुप्त, प्रकाशक - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९७० ई.

२२. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, लेखक - डॉ. छविनाथ त्रिपाठी, प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २०२१ वि. सं.

२३. Rashtroudhavamsha Mahakavyam, by Rudrakavi, Edited by Embar Krishnamachariya, Introduction by C. D. Dalal, published from Gaekwad oriental series-5, 1917 A.D.

रहीम-ग्रन्थावली एवं रहीम-साहित्य संग्रह :

१. रहिमनविनोद, सम्पादक : पण्डित अयोध्या प्रसाद शर्मा 'विशारद', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९८४ वि.सं.

२. रहिमनचन्द्रिका, सम्पादक : पण्डित रामनाथलाल सुमन, भार्गव पुस्तकालय, काशी, प्रथम संस्करण १९८० वि. सं.

३. रहीमरत्नावली, सम्पादक : पण्डित मायाशङ्कर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, काशी संवत १९८५ वि.। 'टिप्पणीकार' से संबन्धित प्रति : - साहित्य सेवा सदन, काशी, तृतीय संस्करण शक १८७९ संवत्.

४. रहीमरत्नाकर, सम्पादक : पण्डित सूर्यनारायण त्रिपाठी, वेंकटेश्वर छापखाना, मुंबई, प्रथम संस्करण १९५८ वि. सं.

५. रहिमनशतक, सम्पादक : पण्डित सूर्यनारायण त्रिपाठी, खेमराज कृष्णदास, मुंबई, प्रथम संस्करण १९५२ वि. सं.

६. रहिमनशतक, सम्पादक : लाला भगवान दीन, साहित्य भूषण कार्यालय, काशी, प्रथम संस्करण १९८३ वि. सं.

७. रहीम, सम्पादक : पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर प्रयाग, १९७८ वि.सं.

८. रहिमनविलास, संपादक : बाबू व्रजरत्नदास, प्रकाशक : अज्ञात.

९. रहीमग्रन्थावली, सम्पादक : पण्डित विद्यानिवास मिश्र, प्रकाशक : वाणी-प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९९ ईस्वी.

१०. रहिमनशतक, सम्पादक : पण्डित शिवशङ्कर मिश्र 'विशारद', रामदयाल अगरवाला, प्रयाग, ईस्वी सन् १९२७.

११. रहिमनलालित्य, सम्पादक : पण्डित अनन्तशरण ओझा, रामलाल वर्मा प्रोपाइटर, प्रथम संस्करण १९८४ वि. सं.

१२. रहीम के दोहे, सम्पादक : पण्डित रामेश्वर दयाल दुबे, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति; वर्धा, प्रथम संस्करण १९४४ ई.

१३. रहिमन-सुधा, सम्पादक : अनूपलाल मण्डल, सरस्वती भण्डार, पटना, प्रथम संस्करण १९८५ वि. सं.

१४. रहीम कवितावली, सम्पादक : पण्डित सुरेन्द्रनाथ तिवारी, नवलकिशोर छापखाना, लखनऊ, संस्करण १९२६ ई.

१५. बरवैनायिका भेद, सम्पादक : पण्डित नकछेदी तिवारी, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्रथम संस्करण १८९२ ई.

१६. रहीम साहित्य की भूमिका, लेखक : डॉ. बमबम सिंह नीलकमल, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-४, वि. सं. २०३६.

१७. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, लेखक : डॉ. सरयूप्रसाद जायसवाल, प्रकाशक : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, वि. सं. २००७.

१८. अब्दुर्रहीम खानखाना, लेखक : डॉ. समरबहादुर सिंह, प्रकाशक : साहित्य-सदन, चिरगांव, झांसी, वि. सं. २०१८

मूल संस्कृत उद्धरण

१. उत्तररामचरितम्, भवभूति, संपादक - जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण १९६३ ई.

२. भामिनीविलास, पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्याभवन, काशी.

३. पञ्चतन्त्र, विष्णु शर्मा, प्रकाशक - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९८५ ई.

पत्र-पत्रिकाएं —

— नागरीप्रचारिणी पत्रिका, केशवस्मृति-अङ्क, संवत् २००८. **ख.** वर्ष-४५, अङ्क-४, माघ, संवत् १९९७. **ग.** एप्रिल-जून २००६ ई.

— सुधा (मासिक-पत्रिका) वर्ष-९, खण्ड-२, संख्या-३, एप्रिल-१९३६ ई.

— माधुरी, (मासिक-पत्रिका) पौष, संवत् १९८४ वि. **ख.** वर्ष-३, खण्ड-२, संख्या-२, मार्च १९२५. **ग.** ई. वर्ष-५, खण्ड-२, संख्या-२, मार्च १९२७ ई. **घ.** वर्ष-६, खण्ड-२, संख्या-६, जुलाई १९२८ ई.

— सरस्वती (मासिक-पत्रिका), वर्ष-११, संख्या-८, अगस्त १९१० ई. **ख.** वर्ष-१२, संख्या-१, जनवरी १९११ ई. **ग.** वर्ष-१२, संख्या-५, मार्च १९११ ई. **घ.** वर्ष-२७, खण्ड-१, संख्या-२, फरवरी १९२६ ई. **ङ.** वर्ष-५७, खण्ड-२, संख्या-१, जुलाई १९५६ ई. **च.** वर्ष-५८, खण्ड-१, संख्या-१, जनवरी १९५७ ई.

— गङ्गा (मासिक-पत्रिका), चैत्र संवत् १९९२ वि.

— साहित्य-सन्देश, दिसम्बर-१९६३.

— धर्मयुग (साप्ताहिक), वर्ष-२१, अङ्क-९, १ मार्च १९७० ई.

— स्वतंत्र भारत, ३०/१०/१९५५ ई.

— कल्याण कल्पतरु, भाग-११, संख्या-५, मई १९४५ ईस्वी.

— सम्मेलन (त्रैमासिक-पत्रिका), भाग-१०, अङ्क-२, भाद्रपद संवत् १९७९ वि.

❑❑❑

नई दिल्ली (निजामुद्दीन) स्थित रहीम के मकबरे में रहीम की समाधि
नई दिल्ली (निजामुद्दीन) स्थित रहीम के मकबरे का बाहरी - दृश्य

ISBN 978-81-906145-1-1